स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें
तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा
संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

अपभ्रंश ग्रन्थाङ्क १

इस ग्रन्थमालामें प्राकृत संस्कृत अपभ्रंश, हिन्दी कन्नड तामिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक पौराणिक साहित्यिक और ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन और उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन होगा। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ शिलालेख-संग्रह विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित होंगे।

ग्रन्थमाला सम्पादक
डॉ० हीरालाल जैन
एम ए डी लिट्
डॉ० आ० ने० उपाध्ये
एम ए डी लिट्

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड
वाराणसी

• मुद्रक •
बाबूलाल जैन फागुल्ल, सन्मति मुद्रणालय दुर्गाकुण्ड रोड वाराणसी

स्थापनाब्द
फाल्गुन कृष्ण ९
वीर नि २४७०

विक्रम सं २०००
१८ फरवरी सन् १९४४

JÑĀNAPĪTH MŪRTIDEVĪ JAIN GRANTHMĀLĀ
Apabhransha Grantha No. 1

PAUMCHHRIU

of

KAVIRĀJA SVAYAMBHŪDEVE

Vol. I

WITH

HINDĪ TRĀNSLATION

Translated by

Devendra Kumar Jain M.A., Sahityacharya

Published by

Bhāratīya Jnānapītha Kāshī

Bharatiya Jnana-Pitha Kashi

FOUNDED BY

SETH SHANTI PRASAD JAIN

In Memory of his late Benevolent Mother

SHRI MURTI DEVI

BHARATIYA JNANA-PITHA MURTI DEVI
JAIN GRANTHAMALA

Apabhransh Granatha No. 1

In this Granthamala critically edited Jain agamic philosophical, pauranic, literary historical and other original texts available in prakrit, sanskrit, apabhransha, hindi kannada and tamil etc., will be published in their respective languages with their translations in modern languages

AND

Catalogues of Jain Bhandaras, inscriptions, studies of competent scholarts & popular jain literature will also be published

General Editor	Publisher
Dr. Hiralal Jain, M.A.D Litt.	Ayodhya Prasad Goyaliya
Dr. A.N. Upadhye M.A.D Litt.	Secy Bharatiya Jnanpitha
	Durgakund Road Varanasi

Founded on Phalguna Krishna 9 Vira Sam. 2470

Vikrama Samvat 2000
18th Feb 1944

"अपनी उमंग का"

"जिसके बिना यह संभव न था"

—देवेन्द्रकुमार

प्राथमिक वक्तव्य

महाकवि स्वयम्भू और उनकी दो विशाल अपभ्रंश रचनाओं— पउमचरिउ और हरिवंश-पुराणके सम्बन्धमें बहुत कुछ लिखा जा चुका है। इनका सर्व-प्रथम परिचय— 'Svayambhu and his two poems in Apabhramsa by H L. Jain (Nagpur University Journal vol I, 193) द्वारा प्रकाशित हुआ था। कविके एक ग्रन्थ-सम्पादक मनोरंजन कर उसका उपलब्ध भाग डॉ एच डी वेलणकरने सम्पादित कर प्रकाशित कराया (ब रा ए० सो० जर्नल १९३५ और १९३६)। तत्पश्चात् सन् १९४ में प्रो मधुसूदन मोदीका "चतुर्मुख स्वयम्भू अने त्रिभुवन स्वयम्भू" शीर्षक लेख भारतीय विद्या अंक २-३ में प्रकाशित हुआ जिसमें लेखकने कविके नामके सम्बन्धमें नयी भ्रान्ति की है। सन् १९४२ में प नाथूराम प्रेमीका 'महाकवि स्वयम्भू और त्रिभुवन स्वयंभू' लेख उनकी 'जैन साहित्य और इतिहास' नामक पुस्तकमें सम्पादन प्रकट हुआ। तत्पश्चात् सन् १९४५ में पं राहुल सांकृत्यायनका 'हिन्दी काव्यधारा' ग्रन्थ प्रकाशित हुआ जिसमें कवि की रचनाके काव्यात्मक अवतरण भी उद्धृत हुए। भारतीय विद्या-भवन बम्बई से डॉ एच सी भयाणी द्वारा सम्पादित होकर कविका पउमचरिउ प्रकाशित होना प्रारम्भ हो गया है और अब तक उसके दो भाग निकल चुके हैं। अतएव प्रस्तुत रचना सम्बन्धी विशेष जानकारी के लिए यह सब साहित्य देखने योग्य है। कविका दूसरा महाकाव्य हरिवंशपुराण अभी सम्पादन-प्रकाशनकी बाट जोह रहा है।

पउमचरिउ

प्रस्तुत प्रकाशनमें डॉ. देवेन्द्रकुमारने डॉ. भयाणी द्वारा सम्पादित पाठको लेकर उसका हिन्दी अनुवाद दिया है। इस विषयमें अनुवादकने अपने वक्तव्यमें कुछ आवश्यक बातें भी कह दी हैं। उन्होंने जो परिश्रम किया है वह स्तुत्य है। तथापि जैसा उन्होंने निवेदन किया है।

"इतने बड़े कठिन काव्यका पहली बारमें सर्वांग-सुन्दर और शुद्ध अनुवाद हो जाना संभव नहीं। अतएव स्वाभाविक है कि विद्वान् पाठकोंको इसमें अनेक दूषण दिखाई दें। इन्हें वे क्षमा करेंगे और अनुवादक व प्रकाशकको उनकी सूचना देनेकी कृपा करेंगे।

डॉ. देवेन्द्रकुमारजी तथा भारतीय ज्ञानपीठके प्रयाससे अपभ्रंश भाषाके आदि महाकविकी यह विशाल रचना हिन्दी पाठकोंके सम्मुख उपस्थित हो रही है इसके लिए वे दोनों ही हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

हीरालाल जैन

१७-२-५८] आ० ने० उपाध्ये

प्रधान सम्पादक

दो शब्द

'पउमचरिउ' के अनुवादका काम मैंने जुलाई ५१ में स्वीकार किया था। उन दिनों मैं अल्मोड़ाके हिन्दी कालेजमें अध्यापक था जहाँ न तो विद्वानोंसे सम्पर्क संभव था और न अन्य संदर्भ ग्रन्थ उपलब्ध थे। पउमचरिउ मेरे सम्मुख था और मैं उसके। दोनोंके बीच यदि कुछ और था तो चारों ओर बिखरा हुआ हिमाचलका सौन्दर्य। वह कवियोंको प्रेरणादायक हो सकता हो पर उनके अनुवादकोंको नहीं। अनुवाद करनेमें मुझे लगा कि ऐसा शाब्दिक अनुवाद भाषार्थियोंका अच्छा उपाय है। दो-एक बार इधर उधर लिखा पढ़ी की पर आशाजनक उत्तर नहीं मिला। ले देकर १९५१ के अन्त तक मैंने पूरा अनुवाद सम्पादन प्रकाशनके लिए भेज दिया। लेकिन ५५-५६में वह अनुवाद इधर उधर भटकता रहा एक-दो बार मेरे पास भी आया। अब ले-देकर वह प्रकाशमें आ रहा है।

जहाँ तक मुझे ज्ञात है यह अपभ्रंश महाकाव्यका पहला हिन्दी अनुवाद है। और अनुवाद भी ऐसे ग्रन्थका जो अपभ्रंश साहित्यका आदि काव्य कहा जाता है यह एक विचित्र साम्य है कि संस्कृतकी तरह अपभ्रंश काव्यका प्रारम्भ रामकथासे ही हुआ। प्राकृत काव्यका शायद ऐसा ही उद्गम हो 'राम भारतीय जनमानसकी अभिव्यक्तिका शाश्वत माध्यम रहे हैं देशमें जब कोई नया विचार सम्प्रदाय या धारा आई, तो उसने रामकथाके पट पर ही अपनेको अंकित किया। रामकथा पुरानी भले रही पर उसकी ओटमें छिपती हुई नवीनता साहित्यके माध्यमसे जनजीवन तक पहुँचती रही। ऐसी रचनाका अनुवाद प्रकाशित करना 'ज्ञानपीठ' के नामको सार्थक बनाता है।

अपभ्रंश और हिन्दी साहित्यका एक तुच्छ अध्येता होनेके नाते मेरा अनुभव यह है कि हिन्दी-जगत्में अपभ्रंशकी रुचि बढ़ रही है। पर उसकी प्रामाणिक जानकारी कम हो पा रही है। कोर्सके विद्वान् भी भयङ्कर भूलें कर रहे हैं इसका कारण अनुवादोंका न होना है। उदाहरण के लिए राहुलजीने अपनी हिन्दी काव्यधारामें पउमचरिउके कुछ अवतरण देते हुए, कामावस्थाओंके वर्णनका एक प्रसंग 'राम' के सिर मढ़ दिया है। वास्तवमें वह सीताके भाई भामण्डलकी कामावस्थाओंका वर्णन है जैन रामायणके अनुसार भामण्डल सीताका भाई था। बचपनमें उसे विद्याधर उठा ले गया। बादमें नारदने सीताका पटचित्र उसे दिखाया और वह उसके रूप पर आसक्त हो उठा। कवि स्वयंभूने उसकी कामावस्थाओंका वर्णन किया है राहुलजीने उन्हें रामकी कामावस्था समझ लिया। बादमें श्रीपरशुराम चतुर्वेदी डा. त्रिलोकनारायण आदि लेखकोंने इस गलत वाक्यका अवतरण देकर हिन्दीके पाठकोंको स्वयंभूके बारेमें एकदम भ्रान्त और गलत जानकारी दी है। डा. कोछड़की थीसिस 'अपभ्रंश-साहित्य' में कई नाम तक गलत हैं जैसे मइयास दादाका नाम उन्होंने मैनाक कर दिया है और धक्कडका धनपाल। धनपाल 'भविसयत्तकहा' का लेखक है न कि वाचक। इन सब भ्रान्तियों का एक मात्र कारण अपभ्रंश पुस्तकोंके प्रामाणिक अनुवादोंका न होना है। प्रमुख मूलग्रन्थको पढ़नेकी क्षमता सबकी नहीं होती और जो योग्य हैं भी उन्हें इतना अवकाश नहीं मिल पाता। इसलिए अपभ्रंश साहित्यके रसास्वादन और सही मूल्यांकनके लिए—उसके अच्छे अनुवादकी बहुत आवश्यकता है। यह सन्तोषकी बात है कि ज्ञानपीठने इसकी पूर्तिके लिए पग बढ़ाया है आशा करता हूँ कि यह पग रुक न कर बढ़ता ही चला जायगा।

पउमचरिउ और कवि स्वयंभूपर सबसे पहले डा. पी. डी.

पुणे में की थी । उसके बाद मुनि जिनविजयजीके ध्यान आकृष्ट करने पर पण्डित नाथूरामजी प्रेमीने जुलाई १९२३ के 'जैन साहित्य संशोधक' में छपे अपने लेख 'महाकवि पुष्पदन्त और उनका महापुराण" में पउमचरिउकी चर्चा की थी । उसके बाद श्रीराहुलजीने १९४५ में हिन्दी काव्यधारामें स्वयंभूके बारेमें निम्नपंक्तियाँ लिखीं 'हमारे इसी युगमें नहीं हिन्दी कविताके पाँचों युगोंके जितने कवियोंको हमने यहाँ संगृहीत किया है उनमें यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि स्वयम्भू सबसे बड़ा कवि है। वस्तुतः वह भारतके एक दर्जन अमर कवियोंमें से एक था। आश्चर्य और क्षोभ दोनों होता है कि लोगोंने कैसे ऐसे महान् कविको भुला देना चाहा।" इससे स्पष्ट है कि हिन्दी जगत्का ध्यान न केवल अपभ्रंश साहित्यके प्रति आकृष्ट हुआ है पर उसमें अनुसंधान भी हो रहा है। महाकवि स्वयम्भूका 'पउमचरिउ' डा० एच० सी० भायाणी द्वारा सम्पादित होकर दो खण्डोंमें प्रकाशित हो चुका है एक खण्ड बाकी है प्रस्तुत अनुवादका एक आधार यही है हो सकता है अनुवादमें भूलें हों। यह असम्भव भी नहीं। क्योंकि इतने बड़े कठिन काव्यका पहली बारमें सर्वांगसुन्दर और शुद्ध अनुवाद हो जाना सम्भव नहीं। पर इसका अर्थ यह नहीं कि इसमें सुन्दरता या शुद्धता है ही नहीं। मेरा कहनेका अभिप्राय यह है कि मैंने अपने सीमित साधनोंमें अनुवादको खरा बनानेमें कसर नहीं की फिर भी कहीं कोई त्रुटि या अर्थविभ्रम प्रमाद हो तो उसके लिए दोष मुझे मुक्तकर दिया जाय कविको नहीं। इसके बाद भी यदि कोई मुझपर रुष्ट हो जायें तो उनके प्रति मैं महाकविके शब्दोंमें यह कहना चाहूँगा 'जइ एम विरुसइ" को वि खलु तहो हत्थुत्थल्लउ लेउ छुडु'। तीसरा खण्ड छपा नहीं। छपते ही उसका भी अनुवाद हो जायगा। कविकी जीवनी और साहित्य परिचय दूसरे पृष्ठोंमें दिया जा रहा है। इस कार्यमें मुझे मा० प० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री का

हीरालाल जैन और बाबू लक्ष्मीचन्द्र जैन एम ए से जो सहायता और प्रेरणा मिली उसके लिए, उनके प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। ज्ञानपीठ—मेरे अभिनन्दनका वास्तविक पात्र तभी होगा जब वह 'अपभ्रंश साहित्य' के प्रकाशन आलोचना और सम्पादनमें उतना ही उत्साह दिखाएगा कि जितना संस्कृत और प्राकृत साहित्यके उद्धारमें देखा जा रहा है। अन्तमें मैं [illegible] पत्नीके प्रति भी अपनी ममतामयी श्रद्धा प्रकट करना चाहता हूँ, क्योंकि यह अनुवाद और अपनी थीसिस मैंने वस्तुतः उसीके अंचल में बैठकर पूरी की।

होल्कर महाविद्यालय इन्दौर
१९-१-५७ } —देवेन्द्रकुमार जैन

महाकवि स्वयम्भू

स्वयम्भू पहले अपभ्रंश कवि हैं जिनका समूचा साहित्य उपलब्ध है। कथा और भाव-संवेदनाकी दृष्टिसे भी वे एक प्रौढ़ शिल्पी सिद्ध हुए हैं। उनकी कृतियाँ प्राकृत काव्यधारा और मध्यकालीन हिन्दी काव्य धाराके बीचकी एक अनिवार्य पीठिका हैं। उन्होंने दक्षिण भारत और उत्तर भारतकी सीमाभूमिमें रहकर काव्यसाधना की। यह अन्तिम तथ्य उनके साहित्यको केवल उत्तर भारतकी आर्य भाषाओंके साहित्यसे जोड़ता ही नहीं, बल्कि अनार्य भाषाओंके साहित्यसे भी समानता रखता है।

कर्नाटकके एक साहित्यिक घरानेके पिता मारुत देव और माँ पद्मिनी की सन्तान थे स्वयम्भू। इस घरानेमें तीन पीढ़ियोंसे साहित्य-साधना की परम्परा चली आ रही थी। कवि स्वयम्भूने दो विवाह किये। कविने 'पउमचरिउ' के अयोध्याकाण्ड और विद्याधर काण्डके अन्तमें इन दोनों पत्नियोंका उल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है कि उनकी पत्नियाँ पढ़ी-लिखी ही नहीं, साहित्य-साधनामें अपने कवि पतिकी सहायिका भी थीं। एक विकृत पंक्तिके आधारपर श्री नाथूरामजी प्रेमीने कविकी तीसरी पत्नीका भी अनुमान किया है। पर यह केवल अनुमान है। क्योंकि यदि कविकी तीसरी पत्नी होती तो वह अवश्य दो की तरह तीसरीका भी उल्लेख करता या पुत्र ही अपनी माँ को अपने काव्यमें सराहके एक पद्य चढ़ाये बिना नहीं रहता। त्रिभुवनकी उक्तिसे ज्ञात पड़ता है कि कविके कई पुत्रों और शिष्योंमेंसे त्रिभुवन ही एक ऐसा था जिसने उत्तराधिकारके रूपमें पिताकी साहित्य-परम्परा पायी थी। शेष लोग

जनके पीछे पीछे। इसमें सन्देह नहीं कि कविका पारिवारिक जीवन सुखी और सम्पन्न था। आश्रयदाता और समाजके प्रमुख सदस्योंमें उनकी अच्छी ख्याति थी। कवि पुष्पदन्तकी तरह वह उग्र और एकान्त प्रेमी नहीं थे। पुष्पदन्तकी अपेक्षा उनकी उक्तियोंमें निराशा और कटुताके स्वरूप कम ही हैं। कविने अपने जन्म और स्थानके सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखा। उनके पुत्रने भी नहीं। फिर भी पउमचरिउमें आचार्य रविषेणका उल्लेख है। इनका समय ई ७०० है। स्वयम्भूका उल्लेख अपभ्रंशकवि पुष्पदन्तने किया है उनका समय ९५९ ई के लगभग है। फिर अपनी रचना 'रिट्ठणेमिचरिउ' में कविने आ जिनसेन का उल्लेख किया है। उनका समय ७८३ ई है। ऐसा जान पड़ता है कि जिनसेन स्वयम्भूसे कुछ ही समय पहले हुए। अतः कविका समय ई ७०० से ७८३ के बीच कभी समझना चाहिए। इस तथ्यके आधार पर उन्हें हम आठवीं सदीके प्रथम चरणका मान सकते हैं। जन्म और जीवनकी तरह उनकी मृत्युके विषयमें भी कोई उल्लेख नहीं मिलता।

कवि स्वयम्भू किस प्रदेशके मूल निवासी थे यह भी एक विवाद का प्रश्न है। 'पउमचरिउ' का सन्धियोंकी पुष्पिकाओंसे इतना ही विदित होता है कि किसी धनञ्जय नामके व्यक्तिकी प्रार्थनापर कविने 'पउमचरिउ' की रचना की। परन्तु 'रिट्ठणेमि चरिउ' की रचना करते समय कवि 'धवलिया' के संरक्षणमें था। उनका पुत्र त्रिभुवन 'वंदइया' के आश्रममें था। इससे अधिक जानकारी अपने संरक्षकोंके सम्बन्धमें कविने नहीं दी। पर नामोंसे वे सब दक्षिणवासी प्रतीत होते हैं। स्वयम्भू कविको कर्नाटकका होना चाहिए। इस सम्बन्धमें 'पउमचरिउ' की भूमिकामें डॉ भायाणीने कुछ तर्क दिये हैं। उनका कहना है कि कविने (रि ने च ११।८।५) पाँच पाण्डवों द्रौपदी और कुन्तीकी

उपमा गोदावरीके सात मुखोंसे दी है। यह दक्षिणवासीके लिए ही सम्भव है (२) कविने मासका क्रम चैतसे फागुन तक माना है यह दक्षिणमें ही प्रचलित है। (३) गोदावरीका जो वर्णन कविने किया है वह एक प्रत्यक्षदर्शी ही कर सकता है। फिर भी वह कविको कर्नाटकमें विदर्भसे प्रवासित मानते हैं। क्योंकि ७वीं सदीसे राष्ट्रकूट कालमें बरार और कर्नाटकमें राजनैतिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध उत्तरोत्तर बढ़ता गया (पृ ११ राष्ट्रकूटाज़ ऐण्ड देअर टाइम्स डॉ आल्तेकर)। प्रेमीजी भी यही मानते हैं। परन्तु राहुलजी की सूझ और भी लम्बी है। हिन्दी काव्य-धारा' में उन्होंने बताया है कि स्वयम्भू कन्नौजके थे और राष्ट्रकूट राजा ध्रुवके अमात्य सामन्त रयडा धनञ्जयके साथ वह दक्षिण गये। ध्रुवने कन्नौजपर आक्रमण किया था। पर यह निर्मूल कल्पना है। ऐसे प्रमाणके अभावमें उन्हें उत्तर भारतीय मानना ठीक नहीं। दक्षिण भारतके इतिहाससे सिद्ध है कि वहाँके लेखक आर्य-भाषाओंमें साहित्य रचना करते रहे हैं। अधिकांश संस्कृत प्राकृत साहित्य दक्षिण-वासी जैन आचार्यों द्वारा किया गया है कविने समुद्रके अर्थमें 'माम' शब्दका प्रयोग किया है मामाका ससुर होना दक्षिण भारतमें ही सम्भव है उत्तर भारतमें नहीं। हम यह कह सकते हैं कि स्वयम्भू पर उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिणकी संस्कृतिका असर अधिक है। यदि वह ठेठ कन्नौज के होते तो यह सब इतने जल्दी कैसे सम्भव हो गया! अधिकसे अधिक उन्हें विदर्भका मान लेने पर भी इतना निश्चित है कि कविके पूर्वज कई पीढ़ियाँ पहले कर्नाटकमें बस चुके होंगे।

अपने सम्प्रदाय या गुरु परम्पराके विषयमें कवि सर्वथा मौन हैं। परन्तु पुष्पदन्तके महापुराणकी टीकामें लिखा है सयंभू पद्धडी बद्धकर्ता आपली संघीय —अतः प्रेमीजी और डॉ भायाणी उन्हें यापनीय संघका मानते हैं (जैन साहित्य और इतिहास पृ १९५)। मारुत

'पउमचरिउ' के लेखक विमलसूरि यापनीय संघके थे। स्वयम्भूने भी 'पउमचरिउ' में उनसे ही रामकथाकी धारा ग्रहण की है। इस सम्बन्धमें डॉ० भायाणीके ये तर्क विशेष रूपसे विचारणीय हैं फिर भी कविको यापनीय सिद्ध करनेमें सफल नहीं होते।

इनकी अभी तक कुल तीन रचनाएँ मिली हैं। 'पउमचरिउ' 'रिट्ठणेमि चरिउ' और 'स्वयम्भू छन्द'। पहलीमें रामकथा है दूसरीमें कृष्णकथा। तीसरीमें प्राकृत और अपभ्रंश छन्दोंका विचार है। उनकी तीन कृतियाँ और भी मानी जाती हैं सुद्दय चरिउ 'पंचमी चरिउ' और 'स्वयम्भू व्याकरण'। परन्तु अभी वे प्राप्त नहीं हुईं, अतः इन्हें सन्दिग्ध ही समझना चाहिए। कविकी उपलब्ध कृतियोंके विषयमें सबसे बड़ी उलझन यह है कि वे अधूरी थीं या पूरी। रिट्ठणेमि चरिउ' की 1 वीं सन्धिके प्रारम्भमें यह उल्लेख है।

काऊण पोम चरिय सुद्दय चरिय च' गुणगणग्घियं हरिवंस मोह हरणे सरस्सई सुहिय देह च।' इसका अर्थ है कि 'पउम चरिउ और सुद्दय चरित लिखकर अब मैं हरिवंशकी रचनामें प्रवृत्त होता हूँ सरस्वती मुझे स्थिरता दें" प्रेमीजी इसे त्रिभुवनका लिखा मानकर यह समझते हैं कि स्वयम्भूने मूल रूपमें सभी ग्रन्थ पूरे लिखे थे पर बादमें त्रिभुवनने अपनी रुचिके अनुसार उसमें कुछ अंश और जोड़ा। उक्त पदसे त्रिभुवनका यही अभिमान है कि मैं 'पउम चरिउ' को (शेष भाग) पूरा करके अब 'हरिवंश' में हाथ लगाता हूँ। प्रेमीजीने 'सुद्दय' की जगह 'सुव्वय' पाठ मानकर उसका अर्थ मुनिसुव्रतचरित किया है। यह बीसवें जैन तीर्थंकर हैं राम और लक्ष्मण इन्हींके तीर्थकालमें हुए थे। प्रेमीजीके मतमें सबसे बड़ी असंगति यही है कि पाठ बदलनेका कोई हेतु उन्होंने नहीं दिया दूसरे 'सुव्वय चरित—पउम चरिउ' का वाचक नहीं हो सकता क्योंकि उसमें मुनिसुव्रत की कथा नहीं है। फिर पद में

'च' शब्द 'पउम चरिउ' और 'सुद्दय चरिउ' की भिन्नताको साफ बता रहा है। हो सकता है कि 'पंचमी चरिउ'का तरह 'सुद्दय चरिउ' स्वयम्भूकी रचना रही हो। डॉ० भायाणी 'सुद्दय चरिउ'को अन्य कृति मानते हैं यह ठीक भी है। पर उनका कहना है कि कविने दोनों ग्रन्थ अधूरे छोड़े जिन्हें बादमें त्रिभुवनने पूरा किया। इसके तीन कारण हैं:—
"(१) प च और रि ने च का भिन्न-भिन्न नामकरण किया जाना। (२) प च के लेखनमें अधिक अन्तराल पड़ना। (३) २१ और ३१ में सन्धियोंके प्रारम्भमें कविने नये सिरेसे मंगलाचरण किये हैं ये उसके विराम के द्योतक हैं इससे यही सम्भावना अधिक है कि कविने पहली कृति अधूरी रहते हुए भी दूसरी रचना शुरू कर दी होगी। अतः डॉ० भायाणीके अनुसार दोनों ग्रन्थ अधूरे थे। डॉ० हीरालाल जैनका अभिमत है कि 'पउमचरिउ' पूरा था पर 'रि ने च' सम्भवतः कविके आकस्मिक निधनसे अधूरा रह गया उसे पुत्र त्रिभुवनने पूरा किया। इस तरह डॉ० जैनका मत उक्त दो मतोंके बीचका है। इस विवादसे एक बात सर्वसम्मत है कि कविकी रचनाओंमें कुछ अंश प्रक्षिप्त या परिवर्धित हैं। अब देखना यह है कि कविकी पूर्ण रचनाओंमें अंश बढ़ाये गये या अपूर्ण रचनाओंमें। इस सम्बन्धमें मेरा जैनका मत ठीक है। इसी तरह डॉ० भायाणीके कतिपय तर्क ठीक हैं फिर भी सभी कृतियाँ अधूरी नहीं मानी जा सकतीं। एक तो डॉ० भायाणीने 'उब्बरिय' शब्दका यथार्थ अर्थ नहीं किया दूसरे 'पउमचरिउ' की २१ और ३१ की सन्धियोंके मंगलाचरण उनके विरामके नहीं अपितु कथाके नये मोड़के द्योतक हैं। ये मोड़ हैं रामका वनवास और राम-रावण युद्धकी भूमिका। यह बात जमती नहीं कि कोई कवि सभी रचनाएँ अधूरी छोड़ जायगा। यह तथ्य डॉ० भायाणी भी स्वीकार करते हैं कि स्वयम्भूने साम्प्रदायिक या प्रभावात्मक घटनाओंको जोड़नेमें संकोच नहीं किया। यह स्पष्ट है

कि कवि काव्यमें पुराणको डालना चाहते थे न कि पुराणमें काव्यको। उनकी साहित्यिक दृष्टिसे 'पउमचरिउ' के अन्तिम दो अधिकार अनुपयुक्त रहे होंगे। यदि किसी अप्रत्याशित घटनासे कविकी मृत्यु हुई होती तो पिताके अधूरे ग्रन्थको पूरा करते समय त्रिभुवन अवश्य इसका उल्लेख करता। यह भी ध्यानमें रखने योग्य है कि अपभ्रंश चरित-काव्य पढ़े भी जाते थे। हमारी धारणा यह है कि किसी स्वाध्याय-प्रेमी श्रावकके अनुरोधसे कुछ और अन्त जोड़कर त्रिभुवनने पिताकी कृतियोंको अधिक पूर्ण बनाना चाहा होगा। इसके दो कारण हो सकते हैं (१) पौराणिकता का अनुरोध (२) उक्त चरितोंकी छूटी हुई घटनाओंका जैन दृष्टिसे परिचय कराना। उक्त विवादग्रस्त पदसे भी यही ध्वनित होता है कि मैं (त्रिभुवन) पउमचरिउ और सुव्वय चरिउ (हरिवंशपुराण) को पूरा कर चुका। अब हरिवंशके बारेमें (लोगोंका मोह दूर करनेके लिए) उसमें हाथ लगाता हूँ। यह काम आशीषदायक है। सरस्वती स्थिरता दे"। सुव्वय चरिउ यदि स्वयम्भूकी रचना हो तो त्रिभुवनने उसमें अवश्य कुछ जोड़ा होगा भारतीय साहित्यके इतिहासमें यह असम्भव भी नहीं।

कवि अपनी काव्य-रचनाका ध्येय आत्माभिव्यक्ति मानता है रामायण काव्यके द्वारा वह अपने आपको व्यक्त कर रहा है 'पुणु अप्पाणउ पायडमि रामायण कावें' अर्थात् काव्य उसके लिए आत्माभिव्यक्तिका साधन है। उसका लौकिक कथन है यशकी प्राप्ति। क्योंकि वह कहता है। मैं इस विमल और पुण्य पवित्र काव्य कीर्तनको प्रारंभ करता हूँ, क्योंकि इससे लोकमें स्थिर कीर्ति मिलती है।

(देखो 'पउम चरिउ' १।७)

उनकी राम कथा कभी नदीमें सैलानीका बहना पानी होते हुए भी संस्कृत और प्राकृतके कथाका अनुबन्ध भी है। कवि स्वयम्भूकी प्रहस

जिससे स्पष्ट है कि वे अपने युगकी प्रायः सभी काव्य-परम्पराओंसे परिचित थे।

स्वयम्भूके वैयक्तिक जीवनका विवरण बिल्कुल ही उपलब्ध नहीं है फिर भी कुछ उक्तियोंसे उनके साहित्यिक व्यक्तित्वकी झलक मिल ही जाती है। वह अपने बारेमें 'पउमचरिउ'की भूमिकामें यह कहते हैं "मेरा शरीर दुबला पतला और लम्बा है। नाक चिपटी और दाँत विरल हैं। वे शारीरिक सौन्दर्यकी जगह आत्मसम्मानके उपासक थे। कवियोंकी व्यवहार और नीति-सम्बन्धी उक्तियोंसे यह स्पष्ट है कि वह भावुक होते हुए भी उदार और विचारशील थे। जैसी उनकी ऊँची प्रतिभा थी वैसा ही गहरा उनका अध्ययन भी था। भारतीय साहित्यमें उनका मूल्यांकन और सम्मान करनेके लिए इतना ही कह देना पर्याप्त है कि वह प्रथम उदार और लोकभाषाके कवि हैं। यद्यपि उनसे कोई ४–५ सौ वर्ष पहले विमलसूरि प्राकृतमें रामचरितका गान कर चुके थे पर स्वयम्भूमें उदारता और साहित्यिकता अधिक है। तुलसी रामकथाके समर्थ भाषाकवि हुए। यद्यपि इन दोनों कवियोंकी विषय-वस्तु *भाषा और दार्शनिक मान्यतामें* बहुत अन्तर है फिर भी कई बातोंमें वे समान भी हैं। दोनों अपने युगकी भाषाओंमें लिखते हैं पौराणिकता दोनोंमें है। अपनी-अपनी विशेष दार्शनिक परिधिमें दोनों की दृष्टि उदार है। एकमें राम जिन-भक्त हैं दूसरेमें शिवभक्त। एक उन्हें *मोक्षगामी मानता है दूसरा विशिष्टाद्वैतका प्रतीक। एकमें राम* साधारण मानवतासे पूर्ण विकासकी ओर बढ़ते हैं दूसरेमें परमात्मा राम मनुष्यका अवतार ग्रहण करते हैं। स्वयम्भूने जिन और शिवकी अभिन्नता दिखायी है और तुलसी राम और शिवकी अभिन्नता दिखाते हैं।

कवि स्वयम्भू एक ओर काव्य और आगममें पारंगत थे तो दूसरी ओर लोकका अनुभव भी उन्हें था। अतः उनमें भावना मानकी तन्म-

कथा और सरसता दोनों हैं। प्रबन्ध कौशल और प्रकृति चित्रणमें वह सिद्धहस्त हैं। उनकी उक्तियाँ हृदयहारी हैं और संवाद व्यंग्यपूर्ण। उनकी कथा चमत्कारोंके बीच चलती है।

कवि स्वयम्भू भारतके उन भाग्यशाली साहित्यिकोंमेंसे हैं जिन्हें अपने जीवनकालमें ही प्रसिद्धि मिल गयी थी। परवर्ती अपभ्रंश कवियोंने उनका सम्मानपूर्वक उल्लेख किया है।

विषय-सूची

तीसरी सन्धि

चौथी सन्धि

पाँचवीं सन्धि

छठी सन्धि

सातवीं सन्धि

आठवीं सन्धि

नवमी सन्धि

दसवीं सन्धि

ग्यारहवीं सन्धि

बारहवीं सन्धि

बीसवीं सन्धि

[१]

पउमचरिउ

•

तेरहवीं सन्धि

चौदहवीं सन्धि

पन्द्रहवीं सन्धि

सोलहवीं सन्धि

सत्रहवीं सन्धि

अठारहवीं सन्धि

उन्नीसवीं सन्धि

कइराय-सयम्भूएव-किउ

पउमचरिउ

णमह णव-कमल-कोमल-मणहर-वर-वहल-कन्ति-सोहिल्लं।
उसहस्स पाय-कमलं स-सुरासुर-वन्दियं सिरसा ॥ १ ॥

दीहर-समास-णालं सद्द-दलं अत्थ-केसरुग्घवियं।
बुह-महुयर-पीय-रसं सयम्भु-कव्वुप्पलं जयउ ॥ २ ॥

पहिलउ णमकारें वि परम-मुणि। मुणि-वयणें जाहँ सिद्धन्त-झुणि ॥ १ ॥
झुणि जाहँ अणिट्ठिय रत्ति-दिणु। जिणु हियएँ ण फिट्टइ एक्कु खणु ॥ २ ॥
खणु खणु वि जाहँ ण विचलइ मणु। मणु मग्गइ जाहँ मोक्ख-गमणु ॥ ३ ॥
गमणु वि जहिँ णउ जम्मणु मरणु ॥ ४ ॥
मरणु वि कह होइ मुणीवरहँ। मुणिवर जे लग्गा जिणवरहँ ॥ ५ ॥
जिणवर जें लीय माण परहो। पउ केम कुलु जें परियणहोँ ॥ ६ ॥
परियणु मणें मण्णिउ जेहिं तिणु। तिण-समउ णाहिँ लहु परम-रिणु ॥ ७ ॥
रिणु केम होइ भव-भय-रहिय। भव-रहिय धम्म-संजम-सहिय ॥ ८ ॥

घत्ता

पद्मचरित

मैं नवकमल की तरह कोमल, सुन्दर और उत्तम घनकान्ति से शोभित, तथा देवों और असुरोंके द्वारा वन्दित, श्रीऋषभ जिनके चरण-कमलोंको सिरसे नमन करता हूँ ॥ १ ॥

मुझ स्वयंभू कविका यह काव्यरूपी कमल जयशील हो, जिसके समास इसके मृणाल हैं, शब्द पत्ते हैं। अर्थरूपी पराग से यह सुवासित है और विद्वान् रूपी भ्रमर इसका रस-पान करते हैं ॥ २ ॥

सबसे पहले मैं उन परम मुनिकी जय करता हूँ जिनके मुखमें सिद्धान्त-ध्वनि रहती है और ध्वनि भी रात-दिन अविनश्वर रहती है, जिनके हृदयसे जिनेन्द्र एक भी क्षणके लिए दूर नहीं होते, क्षण क्षण जिनका मन विचलित नहीं होता और जो मोक्ष-गमनकी याचना करता रहता है। जहाँ जाने पर जन्म और मरण नहीं होता, और फिर उन मुनिवरोंका मरण कैसे हो सकता है जो जिनवरमें अनुरक्त हैं। जिनवर भी वही हैं जिन्होंने दूसरोंका मान दूर कर दिया है, फिर वे दूसरोंका धन कैसे चाह सकते हैं, वे तो दूसरोंके धनको तिनकेके समान समझते हैं। उनके पास नरकका धागा भी शेष नहीं है, वे भव-भयसे मुक्त हैं इसलिए शेष हो भी नहीं सकता। वे संसारसे रहित तथा यम और संयमसे परिपूर्ण हैं ॥ ३-८ ॥

स्वयंभू कवि एक मन होकर उन गुरुस्वरूप उत्कृष्ट आचार्योंकी वन्दना करता है जो काय वचन और मनसे शुद्ध हैं और जो काम क्रोध और दुर्नयोंसे दूर मुक्त हैं ॥ ९ ॥

पढमा संधि

तिहुअण-लग्गण-खम्भु गुरु परमेट्ठि णवेप्पिणु ।
पुणु आरम्भिय रामकह आरिसु जोएप्पिणु ॥ १ ॥

[१]

पणवेप्पिणु आइ-भडाराहो । संसार-समुद्दुत्ताराहो ॥ १ ॥
पणवेप्पिणु अजिय-जिणेसरहो । दुज्जय-कन्दप्प-दप्प-हरहो ॥ २ ॥
पणवेप्पिणु संभवसामियहो । तइलोक्क-सिहर-पुर-गामियहो ॥ ३ ॥
पणवेप्पिणु अहिणन्दण-जिणहो । कम्मट्ठ-दुट्ठ-रिउ-णिज्जिणहो ॥ ४ ॥
पणवेमि सुमइ-तित्थंकरहो । वय-पञ्च-महाधुर-धारहो ॥ ५ ॥
पणवेप्पिणु पउमप्पह-जिणहो । सोहिय-भव-कमल-सुकमल-दिणहो ॥ ६ ॥
पणवेप्पिणु सुरवर-सारहो । जिणवरहो सुपास-भडाराहो ॥ ७ ॥
पणवेप्पिणु चन्दप्पह-गुरुहो । भवियायण-सयण-कप्पतरुहो ॥ ८ ॥
पणवेप्पिणु पुप्फयन्त मुणिहें । सुरमउडुग्घट्टिय-दिव्व-झुणिहें ॥ ९ ॥
पणवेप्पिणु सीयल-सुहमहो । अट्ठाण-सयल-णाणुग्गमहो ॥ १० ॥
पणवेप्पिणु सेयंसाहिवहो । अणन्त-महन्त-पय-सिवहो ॥ ११ ॥
पणवेप्पिणु वासुपुज्ज-मुणिहें । तिहुअणसिरि-चालचूडामणिहें ॥ १२ ॥
पणवेप्पिणु विमल-महारिसिहें । संसारिसिय-परमागम-विसिहें ॥ १३ ॥
पणवेप्पिणु मयणारारहो । साणन्तहो धम्म-भडाराहो ॥ १४ ॥
पणवेप्पिणु सन्ति-कुन्थु-अरहँ । तिण्णि वि तिहुअण-परमेसरहँ ॥ १५ ॥
पणवेमि मल्लि-तित्थंकरहो । तइलोक्क-महारिसि-सुहकरहो ॥ १६ ॥
पणवेप्पिणु मुणिसुव्वय-जिणहो । देवासुर-विन्द-पयाहिणहो ॥ १७ ॥

पहिली सन्धि

तीना लोकोंमें छगे स्तम्भस्वरूप गुरु परमेष्ठीको नमस्कार कर मैं (स्वयंभू कवि) आर्ष ग्रन्थको देखकर रामकथा आरम्भ करता हूँ ॥ १ ॥

[१] सबसे पहले संसार-समुद्रसे पार करनेवाले आदि भट्टारक ऋषभ जिनको प्रणाम करता हूँ। दुर्जेय कामके दर्पको हरने वाले श्रीअजित जिनेश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ। त्रिलोकीके शिखर स्वरूप शिवपुर जानेवाले सम्भव स्वामीको मैं प्रणाम करता हूँ। आठ कर्मरूपी दुष्ट शत्रुओंके विजेता श्रीअभिनन्दन जिनको मैं प्रणाम करता हूँ। महायुधर पाँच महाव्रतोंको धारण करनेवाले सुमति तीर्थङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ। संसारके लाखों दुःखरूपी ऋणका शासन करनेवाले पद्मप्रभ जिनको मैं नमस्कार करता हूँ। उत्कृष्ट देवोंमें भी श्रेष्ठ जिनवर सुपार्श्व भट्टारकको प्रणाम करता हूँ। भव्यजनरूपी पक्षियोंके लिए कल्पतरुके समान श्रीचन्द्रप्रभ गुरुको मैं प्रणाम करता हूँ। अपनी दिव्य ध्वनिसे जगको भी उज्ज्वलित करनेवाले पुष्पदन्त मुनिको मैं प्रणाम करता हूँ। मैं महान् शीतलनाथको प्रणाम करता हूँ जो कल्याण ध्यान और ज्ञानके उत्तम स्थान हैं। अत्यन्त महान् शिव (धाम) पानेवाले श्रेयांसनाथ और प्रकाशमान ज्ञानरूपी चूड़ामणिसे युक्त वासुपूज्यको प्रणाम करता हूँ। मैं विमल महाऋषिको प्रणाम करता हूँ क्योंकि व परमागमका मार्ग प्रदर्शित करनेवाले हैं। जो मंगलके घर हैं ऐसे उन अनन्तनाथ और धर्मनाथ भट्टारकको मेरा प्रणाम है, तीनों लोकोंके परमेश्वर शान्ति कुन्थु और अरनाथको प्रणाम करता हूँ। मैं तीन शल्यके महाऋषि और व्रतधर मल्लिनाथ तीर्थङ्करको प्रणाम करता हूँ। सुर और असुर जिनकी प्रदक्षिणा करते हैं ऐसे उन

पणवेप्पिणु णमि-णेमीसरहँ । पुणु पास-वीर तित्थङ्करहँ ॥ १८ ॥

घत्ता

इय चउवीस वि परम-जिण पणवेप्पिणु भावें ।
पुणु अप्पाणउ पायडमि रामायण-कावें ॥ १९ ॥

[२]

वड्ढमाण-मुह-कुहर-विणिग्गय । रामकहा-णइ एह कमागय ॥ १ ॥
अक्खर वास-जलोह-मणोहर । सु-अलङ्कार-छन्द-मच्छोहर ॥ २ ॥
दीह-समास-पवाहावङ्किय । सक्कय-पायय-पुलिणालङ्किय ॥ ३ ॥
देसीभासा उभय-तडुज्जल । क वि दुक्कर-घण-सद्द-सिलायल ॥ ४ ॥
अत्थ-बहल-कल्लोलाणिट्ठिय । आसासय-सम-तूह-परिट्ठिय ॥ ५ ॥
एह रामकह-सरि सोहन्ती । गणहर-देवहिँ दिट्ठ वहन्ती ॥ ६ ॥
पच्छइ इन्दभूइ-आयरिएं । पुणु धम्मेण गुणालङ्करिएं ॥ ७ ॥
पुणु पहवें संसाराराएं । कित्तिहरेण अणुत्तरवाएं ॥ ८ ॥
पुणु रविसेणायरिय-पसाएं । बुद्धिएँ अवगाहिय कइराएं ॥ ९ ॥
पउमिणि जणणि-गब्भ-संभूएं । मारुयएव-रूव-अणुराएं ॥ १० ॥
अइ-तणुएण पईहर-गत्तें । छिव्वर-णासें पविरल-दन्तें ॥ ११ ॥

घत्ता

णिम्मल पुण्ण-पवित्त-कह कित्तणु आढप्पइ ।
जेण समाणिज्जन्तएँण थिरु कित्ति विढप्पइ ॥ १२ ॥

[३]

बुहयण सयम्भु पइँ विण्णवइ । मइँ सरिसउ अण्णु णाहिँ कुकइ ॥ १ ॥
वायरणु कयावि ण जाणियउ । णउ वित्ति-सुत्तु वक्खाणियउ ॥ २ ॥

मुनिसुव्रत जिनको मैं प्रणाम करता हूँ। नमि नेमीश्वर, पार्श्वनाथ और महावीर तीर्थंकरको भी मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १-१८ ॥

इसप्रकार इन चौबीस परम जिनोंकी भावसहित वन्दना कर मैं इस रामायण काव्यके माध्यमसे अपने आपको प्रकट करता हूँ।१९।

[२] यह रामकथारूपी नदी भगवान् महावीरके मुखपर्वत से निकल कर क्रम से बहती हुई चली आ रही है। यह अक्षर-विन्यासके जल-समूहसे मनोहर सुन्दर अलंकार तथा छंदरूपी मत्स्योंसे परिपूर्ण और लम्बे समासरूपी प्रवाहसे अंकित है। यह संस्कृत और प्राकृतरूपी पुलिनोंसे अलंकृत देशी भाषा रूपी दो कूलोंसे उज्ज्वल है। इसमें कहीं कठिन घन शब्द रूपी शिलातल हैं, कहीं यह अनेक अर्थरूपी तरंगोंसे अस्त-व्यस्त-सी हो गई है और कहीं यह सैकड़ों आश्वासरूपी तीर्थोंसे प्रतिष्ठित है ॥ १-५ ॥

सबसे पहले, इस प्रकार सुशोभित और बहती हुई इस राम कथारूपी नदीको गणधर देवोंने देखो। उनके बाद आचार्य गौतम ने फिर गुणालंकृत धर्माचार्य ने फिर संसारसे अत्यंत भीत अनुत्तरवादी भट्टारक कीर्तिधरने देखी। तदनन्तर आचार्य रविषेणके प्रसादसे कविराज (स्वयंभू) ने अपनी बुद्धिसे इसका अवगाहन किया। कवि मारुतदेवीके रूपसे सुरूप पद्मिनी माताके गर्भ से उत्पन्न हुआ। उसका शरीर अत्यन्त कृश और लम्बा था तथा नाक चिपटी और दाँत विरल थे ॥ ६-११ ॥

निर्मल पुण्यसे पवित्र हुई इस कथाका कीर्तन शुरू कर रहा हूँ, जिसका भली-भाँति जाननेसे स्थायी कीर्ति बढ़ती है ॥ १२ ॥

[३] पंडित-जनोंसे स्वयंभूका केवल यह निवेदन है कि मेरे बराबर दूसरा कोई कुकवि नहीं है। मैं कोई भी व्याकरण नहीं जानता। वृत्ति और सूत्रोंकी व्याख्या भी मैंने नहीं की

णउ पच्चाहारहो तत्ति किय । णउ संधिहेँ उप्परि बुद्धि थिय ॥ ३ ॥
णउ णिसुणिउ सत्त विहत्तियउ । छव्विहउ समास-पउत्तियउ ॥ ४ ॥
छक्कारय दस लयार ण सुय । वीसोवसग्ग पच्चय बहुय ॥ ५ ॥
ण बलाबल धाउ णिवाय-गणु । णउ लिंगु उणाइ वक्कु वयणु ॥ ६ ॥
णउ णिसुणिउ पंच-महाय-कव्वु । णउ भरहु गेउ लक्खणु वि सव्वु ॥
णउ बुज्झिउ पिंगल-पत्थारु । णउ भम्मह-दंडि-अलंकारु ॥ ८ ॥
ववसाउ तो वि णउ परिहरमि । वरि रयडावुत्तु कव्वु करमि ॥ ९ ॥
सामण्ण भास छुडु सावडउ । छुडु आगम-जुत्ति का वि घडउ ॥ १० ॥
छुडु होन्तु सुहासिय-वयणाइँ । गामिल्ल-भास-परिहरणाइँ ॥ ११ ॥
एहु सज्जण-लोयहों किउ विणउ । जं अबुहु पदरिसिउ अप्पणउ ॥ १२ ॥
जइ एम वि रूसइ को वि खलु । तहों हत्थुत्थल्लिउ लेउ छलु ॥ १३ ॥

घत्ता

पिसुणें किं अब्भत्थिएँण जसु को वि ण रुच्चइ ।
किं छण-चन्दु महागहेंण कम्पन्तु वि मुच्चइ ॥ १४ ॥

[४]

वणरन्तेंवि पउमयत्तु णिरवसेसु । पहिलउ णिउ वण्णमि मगहदेसु ॥ १ ॥
जहिं पक्क-कलमें कमलिणि णिसण्ण । मलइन्त तरणि थेर व विसण्ण ॥ २ ॥
जहिं सुय-पन्तिउ सुपरिट्ठियाउ । णं वणसिरि-मरगय-कण्ठियाउ ॥ ३ ॥
जहिं उच्छु-वणइँ पवणाहयाइँ । कम्पन्ति व पीलण-भय-भयाइँ ॥ ४ ॥

और न ही मैंने प्रत्याहारोंका विचार किया है। संधियोंके ऊपर भी मेरी बुद्धि कभी स्थिर नहीं रह सकी। न तो मैंने सात प्रकार की विभक्तियाँ सुनीं और न छह प्रकार की समास-प्रक्रिया। मैंने छह कारक, दस लकार, बीस उपसर्ग और बहुतसे प्रत्ययोंको भी नहीं सुना। धातुओंका बलाबल निपात गण, लिंग, उणादि, वक्रोक्तियाँ और एकवचन द्विवचन तथा बहुवचन मैंने नहीं सुने। पाँच महाकाव्य और भरत के सभी नाट्य-लक्षण भी मैं नहीं सुन सका। न तो मैंने पिंगलशास्त्रके प्रस्तार को समझा और न भामह और दण्डीके अलंकारोंको ही समझा। फिर भी मैं इस (काव्य) व्यवसाय को नहीं छोड़ पा रहा हूँ, प्रत्युत रड्डा छंदोबद्ध काव्यका निबद्ध कर रहा हूँ॥ १–९॥

मैं सामान्य भाषामें यत्नपूर्वक कुछ आगम-युक्ति गढ़ रहा हूँ और चाहता हूँ कि ग्रामीण-भाषासे हीन, मेरे ये वचन सुभाषित हों। सज्जन लोगोंसे मैंने यह विनय की है। बस मैं अपना अज्ञान प्रकट कर ही चुका हूँ। फिर भी यदि कोई खल जन (मेरे काव्य) से रुष्ट हो तो मैं उसकी उस अभ्यर्थनाको भी हाथ जोड़कर स्वीकार करता हूँ॥ १०–११॥

वस्तुतः उस खलकी अभ्यर्थना करनेसे क्या लाभ है जिसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। क्या राहु कौंसते हुए पूर्णिमाके चन्द्रमाको छोड़ देता है॥ ८॥

[४] मैं समस्त गणधरोंका स्मरण कर सबसे पहले उस मगध देशका वर्णन करता हूँ जहाँ पके हुए धान्यों पर बैठी हुई लक्ष्मी (शोभा) आरण्यमें धानवाली जिस वृद्धाके समान दिखाई देती थी। जहाँ पकी हुई गन्नोंकी कतार ऐसी मालूम होती थी मानो वन-लक्ष्मीके गलेमें मरकतमणिका हार पड़ा हो। जहाँ पवनसे हिलते डुलते हुए गन्ने पीड़नके भयसे काँपते

हुए से जान पड़ते थे। जहाँ सुंदर नंदन वन अपने चंचल पत्तों रूपी हाथोंसे नाचते हुएसे लगते थे। खुले हुए मनारोंके मुख कपि के मुखकी तरह जान पड़ते थे। जहाँ सुन्दर भौरोंकी पक्तियाँ केतकीके रजकणोंमें धूसरित हो रही थीं। जहाँ हिमसे-धुलते दाखोंके लतागृह पथिकोंको रसरूपी जल पिला रहे थे ॥ १-८ ॥

उस मगध देशमें धन-धान्य और सुवर्णसे समृद्ध राजगृह नामका नगर था। जो धरतीरूपी नवयुवतीके सिर पर बँधे हुए मुकुटके समान सुशोभित होता था ॥ ९ ॥

[५] उसमें चार गोपुर और चारों ओर परकोटा था जिससे वह मोतियोंके समान धवल दाँतोंसे हँसता-सा, हवासे उड़ती हुई पताकारूपी करोंसे नाचता-सा, गिरते हुए आकाश-मार्गको धारण करता-सा, सुनामभिन्न देवकुलोंके शिखरों पर कबूतरोंकी गंभीर कलध्वनि को करता सा, मद-विह्वल हाथियोंसे झूमता सा चपल अश्वोंसे चढ़ता सा, चन्द्रकांतमणियोंके अलउपगृहोंमें नहाता सा, हार मेखलाओंके भारसे झुकता सा, नूपुरोंकी शृंखलासे गिरता सा, हटकोंके जोड़ोंसे चमकता सा सार्वजनिक-उत्सवों से किल-कारियाँ भरता सा मृदंग और भेरीके शब्दोंसे गरजता सा, वीणा विशेषकी मूर्च्छनासे गाता सा तथा धन धान्य और सोने से भरपूर किसी नगर सेठ की तरह जान पड़ता था ॥ १-८ ॥

वहाँकी धरती गिरे हुए पत्तों सुगन्धित द्रव्य विशेष सुधाचूर्णके आसंग और नागोंके पैरोंकी अंगुलियोंसे रोधे गये रंगोंसे रंगी हुई थी ॥ ९ ॥

[६] उस नगरमें नीति-निपुण श्रेणिक नामका राजा था। उसकी उपमा किससे दी जाय? क्या त्रिनेत्र शिवसे? नहीं नहीं वह विषम आँखवाले हैं? क्या चंद्रमा से?

नहीं नहीं, वह एक ही पक्षवाला है। क्या दिनकरसे, नहीं नहीं, वह दहनशील है? क्या सिंहसे? नहीं नहीं, वह ठीक सोचकर चलता है। क्या हाथीसे? नहीं नहीं, वह हमेशा उन्मत्त रहता है। क्या पहाड़से, नहीं नहीं वह व्यवसाय (गति या क्रिया) से रहित है। क्या समुद्रसे? नहीं नहीं, उसका पानी खारा है? क्या कामदेवसे, नहीं नहीं, वह शरीररहित है। क्या सर्पराजसे, नहीं नहीं वह क्रूरस्वभाव है। क्या पवनसे, नहीं नहीं वह चञ्चलस्वभाव है? क्या विष्णुसे नहीं नहीं वह कुटिल चक्र है। क्या इन्द्रसे, नहीं नहीं वह हजार आँखोंवाला है, केवल उसीसे उस राजाकी उपमा दी जा सकती है जिसका दाँया आधा भाग, बायें आधे भाग के समान हो ॥ १–८ ॥

एक समय वीर जिनेन्द्र महावीरका समवशरण विपुलाचल पर जैसे ही पहुँचा वैसे ही आकाशरूपी आँगन सुर और असुरोंके वाहनोंसे भर गया ॥ ९ ॥

[७] अपने पैरकी अँगुलीसे सुमेरुपर्वतको भी चलित करनेवाले अन्तिम तीर्थंकर परमेश्वर महावीर विपुलाचलपर ठहर गये। वे ज्ञानसे उज्ज्वल, चार कल्याणों (गर्भ जन्म तप और केवलज्ञान) के निकेतन, चार कर्मोंको जलानेवाले, पापोंके लिए यमदण्ड, चौंतीस अतिशयोंसे विशुद्ध शरीर, तीन लोकके स्वामी, धवल छत्रसे शोभित, पन्द्रह कमलोंपर पैर रखकर चलनेवाले, मयूर चन्द्रिकाके वितानकी तरह प्रभावाले थे। उन पर चौंसठ चमर ढुलाये जा रहे थे। चारों निकायोंके देव उनकी स्तुति कर रहे थे। उनके समवशरणका विस्तार एक योजनका था। उसमें तीन परकोट और चार मुख्य द्वार थे। बारह गणोंके बारह कोठे थे। जिस समय चार मानस्तम्भ बनकर तैयार हो रहे

जय केवल णाणुप्पण्ण देह । कम्मट्ठ णिम्महण पणट्ठ णेह ॥ ४ ॥
जय जाइ जरा मरणारि-चेय । बत्तीस सुरिन्द णिवाहिसेय ॥ ५ ॥
जय परम परम्पर वीयराय । सुर-मउड-कोडि-मणि-घिट्ठ-पाय ॥ ६ ॥
जय सव्व जीव-कारुण्ण-भाव । अक्खय अणन्त णयपक्ख-सहाव' ॥ ७ ॥
पणवेप्पिणु जिणु सणाय-मणेण । कुणु पुच्छिउ गोयमसामि तेण ॥ ८ ॥

घत्ता

'परमेसर पर-सासणेहिँ सुव्वइ विवरेरी ।
कहें जिण-सासणें केम थिय कह राहव-केरी ॥ ९ ॥

[१०]

जोँ लोएहिँ वज्जरियन्तएहिँ । उप्पाइउ भन्तिउ अण्णएहिँ ॥ १ ॥
जइ कुम्में धरियउ धरणि-वीढु । तो कुम्मु पडन्तउ केण णीढु ॥ २ ॥
जइ रामहों तिहुअणु उवरें माइ । तो रावणु कहिँ तिय लेवि जाइ ॥ ३ ॥
अण्णु वि खरदूसण-समरें देव । पहु जुज्झइ सुव्वइ जिणु केँ व ॥ ४ ॥
किह तियमइ-कारणें कविवरेण । वाइज्जइ वालि सहोयरेण ॥ ५ ॥
किह वाणर गिरिवर उव्वहन्ति । बन्धेवि मयरहरु समुत्तरन्ति ॥ ६ ॥
किह रावणु दह-मुहु वीस-हत्थु । अमराहिव-भुव-बन्धण समत्थु ॥ ७ ॥
परिसक्कु सुवइ किह कुम्भयण्णु । महिसा-कोडिहि मि ण धाइ अण्णु ॥ ८ ॥

घत्ता

जें परिसेसिउ दहवयणु पर-णारिहिँ समउ ।
सो मन्दोवरि जणणि-सम किह लेइ विहीसणु' ॥ ९ ॥

[११]

तं णिसुणेंवि वुत्तु गणहरेण । सुणें सेणिय किं बहु-जम्पिएण ॥ १ ॥
पहिलउ आयासु अणन्तु थाउ । णिरवेक्खु णिरञ्जणु पवण भाउ ॥ २ ॥

काम और मोहका नाश करनेवाले, केवलज्ञानसे उद्भिन्न शरीर आप की जय हो। जन्म जरा और मरण रूपी शत्रुओं का नाश करनेवाले तथा बत्तीस देवराजोंसे अभिषिक्त आपकी जय हो। परम परात्पर वीतराग आपकी जय हो, आपके पैर, देवोंकी कोटि-कोटि मुकुट-मणियोंसे घिसे जाते हैं। अक्षय अनन्त, नमनशील-स्वभाव वाले सब जीवोंके प्रति करुणाभाव रखनेवाले आपकी जय हो इस प्रकार एक निष्ठ भाव से जिन की वंदना करके राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे पूछा— हे परमेश्वर दूसरों के शासन (सम्प्रदाय) में रामकथा उल्टी सुनी जाती है, इसलिए कहिए जिनशासनमें राघवकी कथा कैसी है ? ॥ १–९ ॥

[१०] संसारमें हठवादी और संशयशील लोगोंने तरह तरहकी भ्रांतियाँ उत्पन्न कर दी हैं। जैसे वे कहते हैं कि धरती को कछुआ धारण करता है, पर गिरते हुए कछुएको कौन धारण करता है ? फिर, यदि रामके उदरमें तीनों लोक व्याप्त हैं तो रावण उनकी सीताको हरण करके कहाँ ले गया ? यदि खरदूषणके युद्धमें प्रभु राम लड़े तो अनुचर कैसे युद्ध हुए ? सीके लिए सुग्रीवने अपने भाईको कैसे मारा ? क्या बन्दर पहाड़ उठा सकते हैं, और क्या वे समुद्रको बाँधकर पार जा सकते हैं, क्या रावणके दसमुख और बीस हाथ थे ? और क्या वह अमर लोकको बाँधनेमें समर्थ था। कुंभकर्ण छै माह कैसे सोता था और क्या उसे करोड़ों भैंसोंसे भी अन्न पूरा नहीं पड़ता था ? जिस विभीषणने परस्त्रीके अभिलाषी रावणको समाप्त कराया, उसने माँ के समान मन्दोदरीको कैसे ग्रहण कर लिया ॥ १–९ ॥

[११] यह सुनकर गौतम गणधर बोले—हे श्रेणिक सुनो अधिक विस्तारसे काम नहीं ? पहले सर्वव्यापी अनन्त आकाश

है, उसके बीचमें कहासे रहित निरवलम्ब और परिवसनशील तीन लोक हैं। इनका विस्तार चौदह राजू है। उनमें भी, एक राजू प्रमाण, झालरके मध्य भागके समान, तिर्यक् लोक है उसमें एक लाख योजनका मुख्य जम्बूद्वीप है। जिसमें भरत ऐरावत और दो विदेह, कुल ये चार क्षेत्र, चौदह नदियाँ और छै कुल पर्वत हैं। उसके ठीक बीचों-बीच सोनेका सुमेरु पर्वत है। एक हजार योजन गहरा और निन्यानवे हजार योजन ऊँचा। उसके दाहिने भागमें छै खण्डका भरतक्षेत्र है, जिसमें एक ही चक्रवर्ती राजा है ॥ १-८ ॥

इस भरतक्षेत्रमें अवसर्पिणी कालके प्रारम्भमें कल्पवृक्षके नष्ट होनेपर चौदह विशेष रत्नोंके समान चौदह कुलकर उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥

[१२] उनमें सबसे पहले प्रतिश्रुत प्रतिश्रुति थे, दूसरे सुमति सहित सन्मति, तीसरे कल्याणकारी क्षेमंकर चौथे रत्न में श्रेष्ठ क्षेमंधर पाँचवें महाबाहु सीमंकर, छठे धरणीधर सीमंधर सातवें चारुनयन चक्षुष्मान्। इनके समय एक विस्मय की बात हुई। अचानक सूर्य और चन्द्रमाको देखकर सभी लोगोंके मनमें आशंका होने लगी। तब लोगोंने उनसे जाकर कहा "हे कुलकर-श्रेष्ठ परमेश्वर! हमें बहुत बड़ा कुतूहल हो रहा है।" यह सुनकर, नराधिप चक्षुष्मानने कहा "अबसे कर्मभूमि प्रारम्भ होगी यह बात पूर्व विदेहमें तीनों लोकके आनन्ददायक परमजिनने मुझसे कही थी।" (लोगोंका) यह नवीन संध्याराग (लाल) माना अवसर्पिणी काल रूपी वृक्षके कोंपल थे। तारा-समूह फूल और ये सूर्य-चाँद उसके फल थे ॥ १-९

[१३] उसके अनन्तर अतुलराशि सम्पन्न यशस्वी कुलकर हुए। उनके बाद विमलवाहनका नाम चमका फिर अमृत और चन्द्राभ ये कुलकर हुए। उनके बाद मरुदेव प्रसेनजित और

नाभिराय हुए। इन अन्तिम कुलकरोंमेंसे नाभिरायकी पत्नीका नाम मरुदेवी था जो इन्द्रकी शची और चन्द्रमाकी रोहिणी की तरह सुन्दर, तथा कामकी रतिकी तरह प्रसन्नमना थी। अलंकारोंके बिना ही उसका शरीर शोभन था। गहनोंकी समृद्धि उसे भार मात्र थी। अपने ही लावण्यसे उसकी इतनी शोभा थी कि केसरकी पराग उसे केवल मैल थी। पसीनेकी बूँदोंकी कतार स्तनपर इतनी सुंदर लगती थी कि भारी मोतियोंका हार उसे भार ही जान पड़ता था। विशाल कमलदलके समान उसके नेत्रोंके आगे नीले कमलोंकी माला आडम्बर ही जान पड़ती थी ॥ १–८ ॥

उस कमलमुखीके आसपास घूमते हुए भ्रमरसमूहसे उसके दोनों पैर मुखरित हो रहे थे। नूपुरोंकी झंकारसे क्या? ॥ ९ ॥

[१४] इसी बीचमें इन्द्रके आदेशसे देवांगनाएँ मानवी वेशमें भट्टारिका (महादेवी) मरुदेवीके पास पहुँची। वे चन्द्रमुखी और नील कमल-सी आँखोंवाली थीं। कीर्ति बुद्धि, श्री ह्री, धृति और लक्ष्मी उनके नाम थे कोई कोई विनोद ही करती, कोई हँसा पढ़ती, कोई नाचती गाती और बजाती कोई अपने हाथों पान देती, कोई बालोंके साथ अलंकार देती कोई चामर डुलाती कोई पैर धोती तो कोई सम्मुख दर्पण ही लाकर देती। कोई कृपाण लिये रक्षा करती। कोई आख्यान सुनाती या कोई यक्ष कर्दम (सुगन्धित द्रव्य) से प्रसाधन करती और कोई शरीर सहलाने लगती ॥ १–८ ॥

बढ़िया पलंग पर सोते हुए रातमें मरुदेवीने स्वप्नमाला देखी। उससे लेकर पन्द्रह महीनों तक राजाके आंगनमें धनकी वर्षा होती रही ॥ ९ ॥

[१५] सबसे पहले उसे मद झरता हुआ हाथी दिखाई दिया। फिर कमलवनको उजाड़ता हुआ बैल, विशाल आँखोंवाला

सिंह, नये कमल पर बैठी हुई लक्ष्मी, उत्कट गंधवाली पुष्प माला, मनोहर पूर्ण चंद्र, किरणोंसे प्रदीप्त सूर्य घूमता हुआ मीनयुगल, जलसे भरा मंगल कलश कमलोंसे ढका पद्मसरोवर, गरजता हुआ समुद्र, दिव्यसिंहासन, घंटावलियोंसे मुखरित विमान, सब ओरसे सफेद नागभवन चमकता हुआ रत्नसमूह और चमकती हुई आग। जब मरुदेवीने यह स्वप्नावलि देखी तो सबेरे उसने नाभिरायको यह सब बताया ॥ १-९ ॥

[१६] उन्होंने हँसकर कहा "तुम्हारे तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होगा। मेरु पर्वत उसका स्नानपीठ होगा, पवनरूपी खंभों पर अवलंबित आकाश मंडप और महासमुद्र मंगलकलश। बत्तीस इन्द्र अभिषेकके समय उपस्थित रहेंगे। उसी दिनसे लेकर छै महीना तक देवोंने रत्नोंकी वर्षा की। शीघ्र ही (समय पूरा होने पर) ज्ञान शरीर भट्टारक ऋषभ नाभिराय राजाके घर अवतीर्ण हुए। मरुदेवीके गर्भमें जिन ऋषभ ऐसे स्थित थे मानो नव कमलिनी पर जलकण हो। उस दिनसे आये वर्ष तक देवोंने और भी रत्नोंकी वर्षा की। अंतमें भव्यजनरूपी कमलवनको विकसित करता हुआ तेजस्वी शरीर जिन सूर्य प्रकट हो गया ॥ १-८ ॥

ऋषभ जिन, ठीक भुवन सूर्यकी तरह उदित हुए, वह, मोहके अन्धकारको नष्ट करनेवाले, और केवलज्ञानकी किरणोंके आकर थे ॥ ९ ॥

इस प्रकार यहाँ धनञ्जयके आश्रित स्वयंभूदेवकविकृत पद्म-चरितमें यह जिन जन्म उत्पत्ति नामका पहला पर्व पूरा हुआ ? ॥ १० ॥

दूसरी सन्धि

जगद्गुरु, पुण्य-पवित्र, त्रिलोकका मंगल करनेवाले, ऋषभ भट्टारकका, सुमेरु पर्वत पर ले जाकर अभिषेक किया गया ॥१॥

[१] एक हजार आठ लक्षणोंसे सहित त्रिभुवन-परमेश्वर जिनके उत्पन्न होने पर भवनवासी देवोंने शंख बजाये, मानो नयी वर्षा ऋतुमें, नव मेघ गरज उठे हों। व्यन्तर वासी देवोंने हजारों पटह बजाये, दसों दिशाओंमें उनका शब्द फैल गया। ज्योतिष भवनवासी देवोंने हर्षसे भरकर सिंहनाद किया, कल्पवासी देवोंके भवनोंमें भारी टंकार करते हुए जयघंट बज उठे। इन्द्रका आसन काँप उठा। जिनेन्द्रका जन्म जानकर तुरंत ही वह ऐरावत हाथी पर चढ़ गया। वह हाथी अपने कानोंके पवनोंसे भौंरोंको उड़ा रहा था। उसका गण्डस्थल मेघके समान विशाल था। और जो मद झरनेवाले झरनोंसे गीला हो रहा था। उस ऐरावत हाथी पर बैठा हुआ सहस्रनयन इन्द्र ऐसा सोह रहा था मानो पहाड़ पर विकसित हजारों कोमल कमलोंका भार रहा हो ॥ १-९ ॥

[२] इन्द्रके पहले ही कुबेरने एक कृत्रिम नगरीकी रचना की, चार मुख्य द्वारोंसे संपूर्ण और सात परकोटोंसे सुन्दर। उसमें लाख मठ विहार और स्वच्छ पद्मोंसे सरोवर, पुष्करिणी वापिका, गृहवापिका सीमा उद्यान और मरकत सुवर्णतोरण थे। ऐसा लगता था मानो कुबेरने छोटी-सी अयोध्या नगरी ही रच दी हो। इन्द्रने तीन बार प्रदक्षिणा की। पीनपयोधरा शचिका गज साम्य इन्द्रकी पटरानी इन्द्राणीने अपनी मायासे वञ्चित कर, बाल जिनको उठा लिया। उसकी जगह दूसरा मायावी बालक रखकर उन्हें वहाँ ले गई जहाँ परिवारके साथ इन्द्र

था। शीघ्र ही देवोंकी विशाल आँखें, भगवान् ऋषभके चरणों पर ऐसी आ पड़ीं मानो भक्तिसे पूजा-योग्य नील कमलोंकी माला ही आ पड़ी हो ॥ १–९ ॥

[३] इन्द्रने भी, बाल कमलकी तरह सुकुमार बाहुवाले त्रिभुवन नाथ जिनको अपनी गोदमें ले लिया, और वह सुमेरु-पर्वतकी ओर चल पड़ा। वहाँसे सात सौ छियानबे योजन दूर तारोंकी पंक्ति है। उसके ऊपर दस योजन पर सूर्य है उससे अस्सी योजन पर चन्द्र है। वहाँसे चार योजन पर नक्षत्रमण्डल है, वहाँसे चार योजन पर बुध-मण्डल है ॥ १–५ ॥

फिर बृहस्पति, शुक्र, मगल और शनि नक्षत्र हैं। वहाँसे पैंतालिस हजार तथा सौ योजन और चलकर, पाण्डुक शिला पर ध्यान जिनको, इंद्र ने शीघ्र सिंहासन पर विराजमान कर दिया। जिन उसपर ऐसे लग रहे थे मानो मन्दराचल उन्हें अपने सिर पर लेकर, लोगोंको दिखा रहा था कि लो, यह हैं त्रिभुवन नाथ ? हैं या नहीं देख लो ॥ ६–९ ॥

[४] अभिषेकके प्रारंभ होनेकी भेरी बजा दी गई। बुध किन्नरों द्वारा ताड़ित नगाड़े भी बज उठे। सफेद शंखोंकी कल कल ध्वनि सब ओर भर गई। कोई चार प्रकारके मंगलोंकी घोषणा कर रहा था तो किसीने स्वर पद और तालके अनुसार अपना गीत प्रारम्भ कर दिया। कोई बारह ताल और सोलह अक्षरोंका वाद्य बजा रहा था तो किसीने नौ रस और आठ भावोंसे युक्त भरतके नाट्यका प्रदर्शन शुरू कर दिया। कहीं पताकाएँ चढ़ रही थीं और कहीं बड़े-बड़े स्नान पटे जा रहे थे, कोई परागभरी भौंरोंकी कलकलसे व्याप्त मालतीमाला लिये खड़ा था। किसीने वेणु ले लिया तो किसीने वीणा। कोई वीणाके ही स्वरमें लीन हो गया। जिसे जो आता था, उसने वह सब उस

अवसर पर प्रकट किया। उन्होंने त्रिभुवन स्वामी समझकर अपनी-अपनी कला प्रकाशित की ॥ १–९ ॥

[५] (अभिषेकका) पहला कलश इन्द्रने लिया और दूसरा आनन्दपूर्वक अग्निने। तीसरा वेगके साथ यमराजने, चौथा नैऋत्य देवोंने, पाँचवाँ युद्धमें समर्थ वरुण ने, छठा अपने हाथसे पवनने सातवाँ बड़े अभिमानसे कुबेरने आठवाँ ईशानेन्द्रने, नौवाँ धरणेन्द्रने और दसवाँ कलश चन्द्रमाने लिया। दूसरे-दूसरे कलश लाखों-करोड़ों अक्षौहिणी गणोंने उठा लिये। चारों समुद्रोंको लाँघकर, यहाँसे वहाँ तक देवोंने अपनी अविच्छिन्न कतार ही खड़ी कर दी। क्षीर-महासमुद्रसे दूध भरकर वे एकसे लेकर दूसरेको दे रहे थे ॥ १–८ ॥

इस तरह, नाना मंगल-कलशोंसे देवोंने—जिन वरका अभिषेक किया। मानो नव-पावसकालमें मेघोंने मिलकर महीधरका ही अभिषेक किया हो ॥ ९ ॥

[६] सुरश्रेष्ठोंने, जय जय करते हुए मंगल-कलशोंसे ऋषभ भट्टारकको नहलाया। उसी समय इन्द्रने वज्रकी सूईसे जगन्नाथ जिनके दोनों कान वेधकर शीघ्र ही कुण्डल पहना दिये। साथ ही सिरपर मुकुट गलेमें हार हाथोंमें कंगन और कमरमें करधनी भी पहना दी। त्रिभुवनतिलक जिन के भाल पर तिलक लगाते समय इन्द्रका मन आशंकासे भर गया। फिर उसने जिनकी वन्दना आरम्भ की—"हे त्रिभुवन-गुरु नेत्रोंको आनन्ददायक आपकी जय हो परमपदमें स्थित देवाधिदेव आपकी जय हो। देव और इन्द्रसमूहोंसे वंदित चरण आपकी जय हो। नभमणि (सूर्यकी) तरह (ज्ञानके) किरण-जालको फैलानेवाले, और तत्पूर्वक किरण-प्रसारको भी नाश करनेवाले आपकी जय हो। नमिके द्वारा नमित आपकी जय हो? बताओ फिर अर्हन्तकी उपमा किससे दी जा सकती है ॥ १–८ ॥

हे जगद्गुरु, पुण्य-पवित्र, तीनों लोकोंके मनोरथोंके पूरक भट्टारक, मुझे भव भवमें जिनगुणोंकी संपदा देते रहें।" ॥ ६ ॥

[७] नाग, मनुष्य और देवोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले इन्द्रने खूब वंदना भक्ति की। फिर भी रूपके अवलोकनमें रूपासक्त, इन्द्रके नेत्रोंको तृप्ति नहीं हुई। जहाँ उसके नेत्र जाते वहीं गड़कर रह जाते। मानो दुबले पशुके खुर कीचड़में फँस गये हों। फिर उसने बायें हाथकी अंगुलीको मुखमें डालकर उसमें अमृतका संचार किया। बादमें जितकाम भट्टारक ऋषभको अयोध्यामें ले जाकर जहाँका तहाँ रख दिया। और फिर वह अपने हजार हाथ बनाकर खूब नाचा वह ऐसा लगता था मानो सूर्य ही मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा कर रहा हो। अलंकार करधनी नूपुर, अप्सरा परिवार और अन्तःपुरसे सहित इन्हें मौन जब अभिषिक्त देखा तो इन्हें धर्मपाल समझकर, 'ऋषभ' कहकर पुकारा ॥ १–८ ॥

समय बीतने पर स्वामी ऋषभके शरीरकी कान्ति वैसे ही बढ़ने लगी जैसे पंडितों-द्वारा व्याख्या करनेपर व्याकरणका ग्रन्थ विस्तृत होने लगता है ॥ ९ ॥

[८] देवपुत्रोंके साथ खेल-खेलमें ही उनके बीस लाख पूर्व बीत गये। तब (कल्पवृक्षोंके नष्ट होने पर) एक दिन प्रजाजन विचार करते हुए आये और कहने लगे "हे देव जिन कल्पवृक्षोंके सहारे हम धन्य थे वे अब विच्छिन्न हो चुके हैं। हम भूखसे तड़प रहे हैं जीनेका क्या उपाय है और भोजन स्नान पान तथा ताम्बूलादिका भी।" यह सुनकर जगश्रेष्ठ भट्टारक ऋषभने उन्हें सब कलाओंकी शिक्षा दी। कुछको असि मसि कृषि और वाणिज्य सिखाया और दूसरोंको नाना प्रकारकी विद्याएँ बताईं ॥ १–९ ॥

पञ्च महव्वय पञ्चाणुव्वय । तिण्णि गुणव्वय चउ सिक्खावय ॥७॥
णियम-सील-उववास-सहासइँ । पइँ होन्तेण हयमु असेसइँ ॥८॥

घत्ता

ताम विमाणारूढ चउ-दिसु चउ देव-णिकाया ।
'पइँ विणु सुण्णउ मोक्खु' भें जिण-हक्कारा आया ॥९॥

[११]

सिविया-जाणे सुरवर-सारउ । जय-जय-सद्दें चलिउ भडारउ ॥१॥
देवेंहिँ खन्धु देवि उच्चाइउ । णिविसें तं सिद्धत्थु पराइउ ॥२॥
तहिँ उववणें पीवन्तर चाएँवि । भरहहो राय-लच्छि करें लाएँवि ॥३॥
'णमह परम सिद्धाणं' भणन्तें । जिण पणामो णिक्खवणु तुरन्तें ॥४॥
मुट्ठिउ पञ्च मरोप्पिणु चइयउ । चामीयर-पडलोवरें थविउ ॥५॥
णेप्पिणु धवल-मङ्गल-सद्दें । खित्तउ खीर-समुद्दें सुरिन्दें ॥६॥
तेण समाणु सएहिँ चउत्था । रायहँ चउ सहास पव्वइया ॥७॥
परिमिउ ससि जिह गह-सयासें । पडु परिट्ठु जिह कासोसाएँ ॥८॥

घत्ता

पणगुरुचरउ भडारउ रिसहहों रेहन्ति विसालउ ।
णिम्मिहिँ पवणहो णाइँ धूमावलि बाला-मालउ ॥९॥

पन बैठी। ठीक इसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर उन्हें इस तरह प्रतिबोधित किया "हे देव यह बहुत अच्छा हुआ जो आप माहजालसे अलग हो गये, इस मोहमहासमुद्रमें निमग्न कोड़ाकोड़ी जीव, धर्मशास्त्र और परंपराएँ सब कुछ नष्ट हो जाते हैं। दर्शनज्ञान और चारित्र भी नष्ट हो जाते हैं। तथा दान, ध्यान, संयम और सम्यक्त्व भी। आपके होनेसे पाँच महाव्रत पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत, तथा और भी दूसरे हजारों शास्त्र नियम उपवास आदि बन रहेंगे ॥ १–८ ॥

(यह पता लगते ही) चारों निकायोंके देव अपने-अपने विमानोंमें बैठकर चल पड़े। मानो जिनको यह पुकारा आया हो कि तुम्हारे बिना मोक्ष सूना है ॥ ९ ॥

[११] सुरवरश्रेष्ठ भट्टारक जिन जय जय ध्वनिके साथ पालकीमें बैठे। देवोंने उन्हें अपने कंधों पर उठा लिया और पलभरमें वे सिद्धार्थ नामक उपवनमें पहुँच गये। उस वनमें थोड़े प्रस्तरपर बैठकर, भरतके हाथमें राज्य लक्ष्मी देकर 'परमसिद्धोंको नमस्कार' कहते हुए, तुरंत बाहरी सब कुछ त्याग दिया। पाँच मुट्ठियोंसे केश उखाड़कर उन्हें सुवर्णरत्न पर रख दिया। जनमनके आनन्ददायक, इन्द्रने उन्हें ले जाकर क्षीरसमुद्रमें क्षेप दिया। उनके साथ स्नेह होनेके कारण चार हजार राजाओंने भी दीक्षा ग्रहण कर ली। गरुड़ आत्मध्यानमें लीन जिन शशिकी तरह यह छः महीने कायोत्सर्गसे स्थित रहे ॥ १–८ ॥

दयामें उड़ती हुई वनकी घुमड़ती लम्बी जटाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो जलती हुई आगसे धूमधूसरित ज्वालमाला निकल रही हो ॥ ९

[१२]

जिणु अभिसइ अहिसइ वीसत्थउ । मिउ कुम्मासु पलम्बिय-हत्थउ ॥ १ ॥
जे जिय तेण समउ पव्वइया । ते दारुण-दुक्खाएँ लइया ॥ २ ॥
सीउण्हेंहिँ तिस-भुक्खेंहिँ खामिय । जिम्मण-णिद्दा-वसेंहिँ विणामिय ॥ ३ ॥
वायरण-अणहूणएँ असहन्ता । अहि-विच्छिय-परिवेढिज्जन्ता ॥ ४ ॥
घोर-वीर-तव-चरणेंहिँ भग्गा । आसँघि सक्किउ णिप्पएँ लग्गा ॥ ५ ॥
केण वि महियलेँ घत्तिउ अप्पउ । 'हो हो केम रिहु परमप्पउ ॥ ६ ॥
पाय वलन्ति थाइ पुण विमोएँ । तो किर तेण काइँ परलोएँ ॥ ७ ॥
को वि फलाइँ तोडेप्पिणु खवाइ । 'खाहुँ' भणेवि को वि आमेल्लइ ॥ ८ ॥

घत्ता

को वि णियत्तइ किं पि आमेल्लेँवि चलण जिणिन्दहों ।
'कहएँ देसुँ काइँ पडुत्तरु भरह-णरिन्दहों' ॥ ९ ॥

[१३]

तहिँ तेहएँ अविसहएँ अवसरेँ । इन्दें आणि समुट्ठिय अम्बरेँ ॥ १ ॥
अहों अहों धूय-चवल विमाणहों । कापुरिसहों अयाण-परमाणहों ॥ २ ॥
एउ महारिसि जिण-माहप्पे । जाइ-जरा-मरण-तम-दहणे ॥ ३ ॥
फलइँ म तोडहों अहु मा छेवहों । जं तो वीसमणु पवज्जहों ॥ ४ ॥
तं णिसुणेंवि तिस-भुक्खाइण्णेंहिँ । पडुमिउ अप्पाणउ अण्णेंहिँ ॥ ५ ॥
अण्णेंहिँ अण्ण समय उप्पाइय । तहिँ भरहेँ णमि विणमि पराइय ॥ ६ ॥
कच्छ-महाकच्छा हर-कमय । वर-करवाल-हत्थ आसण्णय ॥ ७ ॥
वेण्णि वि तिहिँ अण्णेंहिँ णिरारेप्पिणु । थिय पासेंहिँ जिणु जयकारेप्पिणु ॥ ८ ॥

घत्ता

विण्णविउ णमि-विणमीहिँ 'भुवण वि ण पोढइ णाहो ।
एउ ण जाणहुँ सामि किउ अम्हहिँ को अवराहो' ॥ ९ ॥

[१२] छः माहतक, ऋषभनाथ इसी तरह, अविकल, अविचल और विश्वस्त होकर स्थित रहे। इस बीचमें जो दूसरे राजा दीक्षित हुए थे, वे दारुण दुखातमें पड़ गये। कई शीत गर्मी और भूख-प्याससे क्षुब्ध हो उठे कई जिमाई नींद और आलससे थक गये, किसीको चबना और ओढ़ना नहीं मिला तो किसीको सौंप और बिच्छुओंने घेर लिया। वे घोर वीर तपसे भ्रष्ट हो गये। कोई तड़फकर पानी पीने लगा कोई धरती पर गिर पड़ा और कहने लगा, हो हो परमपद किसने देखा है? यदि इस नियोगमें ही प्राण चले गये तो परलोकसे क्या? कोई फल तोड़कर खाने लगा तो कोई 'मैं आता हूँ' कहकर तिरछी आँख से देख रहा था ॥ १-८ ॥

कोई किसीको मना कर रहा था कि जिनेंद्रके चरण छोड़ कर मत आओ, नहीं तो कल भरत नरेशको क्या उत्तर दोगे ?।९।

[१३] तब उस विषम प्रतिकूल अवसर पर आकाशमें यह देववाणी हुई "अरे भयंकर कपटी कायर साधुओ, तुम परमार्थ नहीं जानते! जन्म जरा और मरणको भस्म कर देने वाले, महामुनियोंके इस वेशको धारणकर, इस तरह फल मत तोड़ो और पानी न हिलाओ नहीं तो इस वेशका त्याग कर दो यह सुनकर भूख-प्याससे पीड़ित कितनोंने अपने ही ऊपर धूल डाल ली और दूसरोंने दूसरा ही पथ थमा लिया ठीक इसी अवसर पर कच्छ और महाकच्छपके लड़के नमि और विनमि वहाँ पहुँचे। बिना रथके ही पैदल। दोनोंके हाथोंमें बढ़िया नंगी तलवारें थीं। दोनों ही ऋषभके पैरों पर गिरकर जय-जयकार करते हुए उनके निकट बैठ गये। बैठे-बैठे नमि और विनमि मनमें सोच रहे थे कि बोलनेपर भी नाथ हमसे नहीं बोल रहे हैं हम नहीं जानते कि हमने ऐसा कौन-सा भारी अपराध किया है ॥ १-९ ॥

[१४]

जइ वि ण किं पि देंति सुर-सारा । तो वरि एक्कसि बोल्लि भडारा ॥ १ ॥
अण्णहुँ देसु णिरवेक्खेंवि दिण्णउ । अम्हहुँ किं पइ णिरासिण्णउ ॥ २ ॥
अण्णहुँ दिण्ण दुरदम गयवर । अम्हहुँ काइँ किण्ण परमेसर ॥ ३ ॥
अण्णहुँ दिण्णउ उत्तिम-वेसउ । अम्हहुँ आयामेण वि संसउ' ॥ ४ ॥
एम ताम गयणम्मि णिमिल्लहोँ । आसणु चलिउ ताम धरणिन्दहोँ ॥ ५ ॥
अवहि पउञ्जेंवि सपरिवारउ । आउ तुरन्तें जेत्थु भडारउ ॥ ६ ॥
वन्दिउ तिहि मि मग्गेँ परमेसरु । ससि सूरन्तरालेँ णं मन्दरु ॥ ७ ॥
पुणु ति-वारउ भामरि देप्पिणु । जिणवर-वन्दणहत्ति करेप्पिणु ॥ ८ ॥

घत्ता

पुच्छिय धरणिन्देण 'किण्णि मि कण्णाविय-मत्था ।
थिय कज्जें कवणेण उक्खय-करवाल-विहत्था' ॥ ९ ॥

[१५]

तं णिसुणेवि दिण्णु पच्चुत्तरु । 'पेसिय बे वि आसि देसन्तरु ॥ १ ॥
एत्थन्तरु ताम तं पत्तहुँ । ताम वसेवि वसुमि आयहुँ ॥ २ ॥
ताम पिहिमि णिय-पुत्तहँ देप्पिणु । अम्हइँ थिउ अवहेरि करेप्पिणु ॥ ३ ॥
तं णिसुणेंवि णिरसिय-सुर-कन्तें । दिण्णउ विज्जउ बे धरणिन्दें ॥ ४ ॥
गिरि-वेयड्ढहोँ दोहु पहाणा । उत्तर-दाहिण-सेढिहिँ राणा' ॥ ५ ॥
तं णिसुणेंवि णमि-विणमिहिँ वुत्तउ । अण्णें दिण्णी पिहिमि ण लइय ॥ ६ ॥
जइ जिणणाहु देइ सइँ हत्थें । तो अम्हे वि लेहुँ परमत्थें ॥ ७ ॥
तं णिसुणेंवि णं वि अवलोएँवि । थिउ अमराएँ सो मुणिवरु होएँवि ॥ ८ ॥

घत्ता

अब्भुत्थाणिउ तेण णव बे वि समप्पिउ विज्जउ ।
उत्तर-सेढिहिँ एक्कु थिउ दाहिण-सेढिहिँ विज्जउ ॥ ९ ॥

[१४] हे सुरसार, यदि आप कुछ नहीं दे सकते, तो (कम से कम) एक बार बोल तो दीजिए, दूसरोंको आपने बाँट कर देश दे दिये, तो क्या निंदाके कारण हमसे खिन्न हो गये आप। दूसरोंको आपने घड़िया घोड़े और हाथी दिये, पर हे परमेश्वर, हमने ऐसा क्या किया ? दूसरों को आपने उत्तम देश दिया, पर हमारे साथ बात करनेमें भी आशंका। वे इस तरह जिनेंद्रकी निन्दा कर ही रहे थे कि धरणेन्द्रका आसन कंपित हो उठा। अवधिज्ञानसे सब कुछ जानकर वह आधे ही पलमें अपने परिवारके साथ भट्टारक ऋषभके पास आ पहुँचा। उसने उन्हें उन दोनोंके बीच ऐसे देखा मानो सूर्य और शशिके बीच मंदराचल हो। आते ही उसने जिनकी तीन बार प्रदक्षिणा देकर वंदना की। फिर उसने नतमस्तक हो उन दोनोंसे पूछा—"हाथमें तलवार उठाये हुए, तुम लोग यहाँ किसलिए बैठे हो?"

[१५] यह सुनकर उन्होंने प्रत्युत्तर दिया "हमें किसी दूसरे स्थान पर भेजा था। लेकिन हम वहाँ पहुँचकर वापस आ सकें, इसके पहले ही इन्होंने सारी धरती अपने पुत्रोंको दे दी और इस तरह हमारी एकदम उपेक्षा कर दी। उनकी बात सुनकर विद्याधर धरणेन्द्र हँस पड़ा।—उसने उन्हें दो विद्या देकर कहा—"जाओ तुम दोनों विजयार्ध पर्वत की उत्तर और दक्षिण श्रेणियोंके राजा बनाये जाते हो"। यह सुनकर नमि और विनमि ने कहा—"दूसरेकी दी हुई धरती हमें नहीं भाती यदि ऋषभ जिन अपने हाथसे दें तो परमार्थमें हम भी ले लेंगे"। तब—धरणेन्द्र उन दोनोंको देखकर मायावी मुनिका रूप बनाकर उनके आगे बैठ गया। उसकी आज्ञासे वे दोनों, विद्या लेकर चले गये। एक विजयार्धकी उत्तर श्रेणिमें और दूसरा दक्षिण श्रेणिमें।१-९।

[१६] उसके बाद दोनों हाथ ऊपर किये हुए, त्रिभुवन-नाथ, धरती पर विहार कर रहे थे, तो कोई उन्हें प्रसन्न करने के लिए, अत्यंत रूप रंगसे भरी-पूरी लड़की ले आया। कोई वस्त्र ले आया। कोई चंचल घोड़ा। कोई रत्न लेकर आया तो कोई मदान्ध गज। कोई सोने चाँदीके थाल लेकर आया तो कोई बहुत-सा धन-धान्य। कोई अमूल्य आभरण ही ढोकर ले आया। पर भट्टारक ऋषभजिनने उनकी तरफ देखा तक नहीं। सबको धूल बराबर समझते हुए वह, हस्तिनापुर नगर पहुँचे। इतनेमें वहाँके राजा श्रेयांसने यह सपना देखा कि जिनकाम ऋषभजिन उसके घरमें प्रविष्ट हुए हैं, उसने परिवारके साथ पड़गाहा, ईखरससे भरी हुई जितनी अंजलि उन्हें दी, उसके घरमें उतना ही धन बरसा। वह यह सपना देख ही रहा था कि चारों दिशाओंमें कोलाहल छा गये। क्योंकि सचमुचमें ऋषभजिन द्वारपर आये हुए थे। 'ठहरो' कहता हुआ वह भी पुत्र और परिजनोंके साथ एकदम निकल पड़ा। तीन बार घूमकर उसने प्रदक्षिणा की वैसे ही जैसे तारागण सुमेरुपर्वतकी परिक्रमा करते हैं॥ १–११॥

[१७] वन्दना करके वह उन्हें अपने घरमें ले गया। उसने उनके चरण-कमलोंका प्रक्षालन किया। गोमय (श्रीखंड) से छिड़ककर उसने जल और चन्दनकी धारा छोड़ी। फिर पुष्प, अक्षत, नैवेद्य दीप-धूप और पुष्पांजलिसे बार-बार पूजा की। हाथ फुलाकर चन्द्रप्रभु कुमार श्रेयांसने भृंगारसे नये ईखके रसकी अंजलि भरकर ज्योंही जिनेन्द्रको दी त्योंही देवोंने पुष्पवृष्टि प्रारंभ कर दी। साधुकार होने लगा। देव दुन्दुभियोंका स्वर गूँज उठा। सुगन्धित हवा बहने लगी और निरन्तर धनकी वृष्टि होती रही ? तदनन्तर राजा श्रेयांसने बारह

पुप्फ-पयरु पाव-णिण्णासणु । अण्णुण्णण्णु पवरु सिंहासणु ॥ २ ॥
किंकेल्लि-कुसुम-रिद्धि-संपण्णउ । अण्णेक्कहिं असोउ उप्पण्णउ ॥ ३ ॥
तिहुवण-कोडि-पयाव-समुज्जलु । अण्णेक्कहिं पसण्णु भामण्डलु ॥ ४ ॥
अण्णेक्कहिं खीरोवहि-सण्णा । चामरिन्द थिय चमर-विहिण्णा ॥ ५ ॥
अण्णेक्कहिं तिहुअणु पयडन्तउ । थिउ छत्तय-धवलु धुअ तउ ॥ ६ ॥
अण्णेक्कहिं सुर-दुन्दुहि वज्जइ । णं पच्चूसें महोवहि गज्जइ ॥ ७ ॥
दिव्व भास अण्णेक्कहिं भासइ । अण्णेक्कहिं कमल-रउ-पयासइ ॥ ८ ॥
। कुसुम वासु अण्णेक्कहिं वासइ ॥ ९ ॥
अट्ठ वि पाडिहेर उप्पण्णा । णं थिय पुण्ण-पुञ्ज आसण्णा ॥ १० ॥

घत्ता

इय चिन्धइँ जासु सिद्धइँ पर-समाणु जसु अण्णउ ।
गउ अजरामरहों सो जें देउ परमप्पउ ॥ ११ ॥

[४]

बारह-जोयण-पीढिमउ मणहरु सव्वु सुवण्णमउ ।
चउदिसु चउपमाण णवु सुर णिम्मविउ समोसरणु ॥ १ ॥
तिविहु कणय-पायारु पसाहिउ । बारह कोट्ठा सोलह वाविउ ॥ २ ॥
माणव-थम्भ चयारि परिट्ठिय । कञ्चण-तोरण णिवइ समुट्ठिय ॥ ३ ॥
चउ गोउरइँ हेम-परिचत्तियइँ । णव णव थूहइँ तहिँ णिम्मवियइँ ॥ ४ ॥
दह धय पउम-मोर-पञ्चाणण । गरुड मराल-वसह वर-वारण ॥ ५ ॥
अण्णु वि णव णव धुव धुव । मणहरन्त पवन्त समुज्जल ॥ ६ ॥
णट्टसालउँ पच अट्ठिविह-सालउँ । सउ अट्ठोवण थिय-पसायउँ ॥ ७ ॥
तं समसरणु परिट्ठिउ जावहिँ । अमर-णाइ संचल्लिय तावहिँ ॥ ८ ॥
चलियइँ आसणाइँ सहसत्तइँ । विसहरिन्द-अमरिन्द-णरिन्दहुँ ॥ ९ ॥

घत्ता

जिणवरु णाणघरु सुरवइ सुरवर-णिवहँ ।
किं भण्णइ णाणग्गइ आउँ भडारउ वन्दहुँ ॥ १० ॥

भार पुण्य-पवित्र और पापनाशक सिंहासन उत्पन्न हुआ तो दूसरी ओर पल्लव और पुष्पोंसे समृद्ध अशोक वृक्ष। एक ओर सूर्यकी कोटि-कोटि किरणोंसे झलमलाता प्रशस्त भामण्डल उत्पन्न हुआ तो दूसरी ओर चमर लिये हुए नतमस्तक चामरेन्द्र खड़े थे। एक ओर, तीनों भुवनोंको धवलित करनेवाले ऊँचे दण्डपर स्थित तीन छत्र थे, तो दूसरी ओर देवगण दुन्दुभिनाद कर रहे थे मानो पूर्णिमाके दिन महासमुद्र ही गरज रहा हो ॥ १–७ ॥

एक ओरसे भगवान्‌की दिव्य ध्वनि बिखर रही थी तो दूसरी ओरसे उनकी कर्मधूलि बिखर रही थी। किसी ओर फूलोंकी सुगंध फैल रही थी। इस तरह पुण्य समूहके समान आठों प्रातिहार्य भी प्रकट हो गये ॥ ८–१० ॥

जिसको ये चिह्न प्रकट हो जाते हैं और जो अपनी आत्माको दूसरेके समान समझने लगता है निश्चय ही वह महबलसे मुक्त होकर परमपदमें पहुँच जाता है ॥ ११ ॥

[४] बारह योजन विस्तारकी सारी धरती सोनेकी हो गई। देवोंने आकर समवसरणकी रचना की। उसमें चारों ओर चार उद्यानवन और तीन सोनेके परकोट बारह कमरे और बारह वापियाँ चार मानस्तंभ सोनेके तोरणोंका समूह, और सोनेसे जड़े चार मुख्य द्वार थे। उसमें आठ भी मोती-विद्रुम स्तंभ थे। कमल मोर सिंह, गरुड़ हंस बैल गजवर चक्र तथा छत्रसे अंकित ध्वजाएँ अत्यन्त सुन्दरतासे फहरा रही थीं। एक-एक ध्वजामें अभिनव कान्तिकी एक सौ आठ चित्र पताकाएँ थीं। जैसे ही समवसरण बना वैसे ही अमरराज इन्द्र चल पड़ा। उसके चलते ही अहमिन्द्र, नागेन्द्र और अमरेन्द्रके आसन कंपायमान हो उठे ॥ १–९ ॥

इन्द्रने देव-समूहसे जिनवर वैभव बखान हुए कहा, "क्या देर हो, आओ मेरे साथ। जिन की वन्दनाके लिए चलें। ॥१०॥

[५] यह सुनते ही करधनी, मुकुट और कुण्डल पहने हुए पौर-अमर मणि और रत्नोंकी प्रभासे रंजित, अपने-अपने वाहनों पर चढ़ गये—कोई मेष, महिष वृष और सूअर पर, या कोई शशक, रीछ मृग और सम्बर पर। कोई ऊँट, वराह और घोड़ों पर तो कोई हंस मोर, विहंगम पर। कोई शराक, सारंग और सवक्रम पर तो कोई मेष रथ, मनुष्य पर। कोई बाघ सिंह गज और गैंडे पर, कोई गरुड़, क्रौंच और कारण्डव पर और कोई शिशुमार और मच्छ पर। इस प्रकार सभी देव गण वहाँ पहुँच। दस प्रकारके भवनवासी, आठ प्रकारके व्यन्तरवासी पाँच प्रकारके ज्योतिषदेव और बहुविध कल्पवासी-देवोंको बुलाता हुआ ईशानेन्द्र भी तुरन्त आ गया। वह विभ्रम हाव भावसे युक्त २४ करोड़ अप्सराओंसे घिरा हुआ था। चारों प्रकारके देव-निकायोंको कल-कल करते देखकर दण्डधर, देवराजके पास दौड़ा गया ॥ १-१० ॥

[६] जिनवरकी वन्दनाके मनसे ऐरावत हाथी भी आगे बढ़ा। उसके सिरसे मद झर रहा था, कानोंके चमरोंसे वह भौंरोंको उड़ा रहा था एक लाख योजनका वह हाथी दूरसे मन्दराचलके समान ही जान पड़ता था। उसके ऊपर प्रशान्त हो रहे थे और सोनेके सुन्दर तोरण बँधे हुए थे। उसपर फहराती हुई ध्वजा और पताकाएँ, पत्र-फूलोंसे संपन्न पर्वतोंकी तरह मान पड़ती थीं। वनमें पुष्करणा नये कमलोंके सरोवर, लम्बी वापियाँ तालाब और लतागृह भी थे। गजनरसीह, अपनी लम्बी सूँडसे जलकण बखेरते हुए उस ऐरावत हाथीपर संभ्रमनसे इन्द्र बैठ गया। सत्ताइस करोड़ अप्सराएँ उसपर चमर डुला रही थीं। दुंदुभियोंका जयमङ्गल-घोष हो रहा था। जयगान करते हुए बन्दी और चारणगण उसका स्तुति पाठ कर रहे थे। दण्डधर प्रणाम कर रहे थे इन्द्रका वह वैभव देख कर, कितनों ही ने खिन्न होकर मुँह फेर लिया। वे मनमें यह सोच रहे थे कि वह सुदिन कब आयगा जब सब पापवाले तपको साधकर, इस दुर्लभ इन्द्र पदको वे भी पा सकेंगे ॥ १-१०॥

घत्ता

'भव परम्परइँ तव-चरणइँ जं दिन्नु मइँ करेसइँ ।
जें हुअइ जय-वन्दु इन्दत्तणु पावमइँ ॥ ११ ॥

[७]

ताम सुरासुर-वाहणइँ पत्तइँ व सग्ग-दुमहों तणइँ ।
जिणवर-पुण्ण-पवण-हयइँ देवासुरइँ समागयइँ ॥ १ ॥
अमरोप्परु भूरन्तु महाइउ । गिरि-मन्दरोवरि-सिहरु पराइउ ॥२॥
जिण-वरें णवेंवि सगत पुरन्दरु । उवासम-मालदपु अमुन्दरु ॥ ३ ॥
जाइँ विरुम्मय-सरिसेँ हूअइँ । गुरिउ ताइँ आमेलइ रूअइँ ॥ ४ ॥
पिय देवासुर इन्दासनेँ । सव्व पराणा तेण वि वेसें ॥ ५ ॥
णाणा-जाण-विमाणेंहिँ तवहँ । हूअ समासरणें जिणु वेतहँ ॥ ६ ॥
सयल वि दूरोनामिय-मत्था । सयल वि कर-मउलन्जलि-हत्था ॥७॥
सयल वि जयजयकार करन्ता । सयल वि बीस-सयाइँ पढन्ता ॥ ८ ॥
सयल वि अप्पाणउ धरि सन्ता । जासु णाउ जिण-विरुउ करन्ता ॥ ९ ॥
तहिँ अवसरें सुर मेलावें सेय-पिन्दु जिणु वन्दइ ।
गयसाणें दसाणणें कुम्-मपवमहागु पलइ ॥ १ ॥

[८]

सुर-करि-कन्धुत्तिण्णएँण बहु-रोमञ्च-विसण्णएँण ।
सप्परिवारें सुन्दरेण थुइ पारद्ध पुरन्दरेण ॥ १ ॥
'जय अजरामर-पुर-परमेसर । जय जिण आइ पुराण महेसर ॥ २ ॥
जय दय-धम्म-रयण-रयणायर । जय अण्णाण-तमोह दिवायर ॥ ३ ॥
जय ससि भव्व-कुमुय-पडिबोहण । जय कल्लाण-माल-गुण-रोहण ॥ ४ ॥
जय सुरमहिय लोयालोय-पियामह । जय-संसार महाडइ-दुमदह ॥ ५ ॥
जय वम्मह-विम्महण महारस । जय कलि-कोह-हुआसणें पाउस ॥६॥

[७] इतनेमें, देवताओंके वाहन एकदम नीचे उतर आये। वे ऐसे म्लान पड़ते थे मानो जिनवरके पुण्यपवनके झकोरेसे स्वर्गरूपी वृक्षके फल ही नीचे गिर पड़े हों। महनीय वे देव एक दूसरेको धक्का देते हुए, जब सुमेरुपर्वतकी सानुयो पर शिखरपर पहुँचे तब अपने हाथसे रोकते हुए इन्द्रने उनसे कहा, "यहाँ ऊँचे आसन पर बैठना सुन्दर नहीं। जिन्हें जो विक्रियाऋद्धि प्राप्त है, वे उन्हें तुरन्त छोड़ दें। इन्द्रके आदेशसे सभी सुर-असुर फिरसे अपने-अपने रूपमें स्थित हो गये। और अपने नाना वाहनोंसे वहाँ जा पहुँचे, जहाँ जिनका समवशरण था। सबने दूरसे ही अपने मस्तक झुका लिये और सबने दूरसे ही हाथ भी जोड़ लिये ? सभी जय जयकार कर रहे थे। सभी सैकड़ों स्तोत्र पढ़ रहे थे। सभी नाम गोत्र और अपने-अपने विमानका नाम कहकर, अपने आपको प्रकट कर रहे थे ॥ १–९ ॥

उस समय देवोंके संगममें ऋषभजिन ऐसे सोह रहे थे जैसे आकाशमें तारोंके बीच पूर्णिमाका चन्द्रमा जान पड़ता है ॥ १० ॥

[८] ऐरावत हाथीके पीठसे उतरकर अत्यन्त पुलकित, सुन्दर पुरन्दरने अपने परिवारके साथ जिनकी स्तुति शुरू की—

"हे देवलोकके अधिपति आपकी जय हो, आदिपुराण परमेश्वर आपकी जय हो दया और धर्मरूपी रत्नोंके सागर अज्ञानतमके लिए दिवाकर, भव्यजनरूपी कुमुदके प्रकाशक लिए चन्द्रमा तथा कल्याणज्ञान और गुणोंको आराधन करने वाले आपकी जय हो। देवोंके गुरु, त्रिलोकपितामह संसार रूपी महाअटवीके लिए अग्नितुल्य आपकी जय हो। आप कषाय रूपी मेघोंके लिए प्रलय-समीर हैं, मान रूपी पहाड़के

लिए इन्द्रके वज्र हैं इन्द्रियोंके गोकुलके लिए सिंह हैं। त्रिभुवनकी शोभा—लक्ष्मीका आलिंगन करनेवाले, कर्मशत्रुओंके अहंकारको चूर-चूर करनेवाले, निष्कलंक निकलंक और निरञ्जन आपकी जय हो ॥ १–९ ॥

हे जिनवर, आपका शासन दुःखनाशक है, इस समय वह उन्नति पर है। इस शासनके प्रवाहशील बने रहनेसे लोग संसारके प्रवाहमें नहीं पड़ेंगे ॥ १० ॥

[९] वह सेना, वह देवताओंका आगमन यह सब उप वनमें अवतरित देखकर सबको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ ॥ १ ॥

उस पुरिमताल नगरके राजा ऋषभसेनने देवगणको देखकर पूछा—"शकटमुख उपवनमें कौन ठहरा है? जिसकी इतनी प्रभुता है कि जिससे देवोंके विमान आकाशमें ही रुक जाते हैं।" यह सुनकर किसीने कहा "हे देव हमने सब कुछ देख लिया है, राजा भरतके जो पिता सुने जाते हैं, और जिनको पृथ्वीपालन कहकर स्तुति की जाती है, आज उन्हीं ऋषभ जिन को आठ प्रातिहार्य और ऋद्धियोंसे सम्पूर्ण केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है"। यह सुनते ही सब अभिमान छोड़कर वह राजा सेना और बन्धुवर्गको साथ लेकर चला और 'जय देवाधिदेव" कहते हुए उसने समवशरणमें प्रवेश किया ॥ २–९॥

वेगपूर्वक प्रवेश करते हुए उसे देखकर, देवोंको भी मनमें यह भ्रम हो गया कि कहीं यह इस वेष और रूपमें कामदेव तो नहीं आ गया है ॥ १ ॥

[१०] देवगण जिनवर और समवशरणका वह ठाठ देखकर, भव-भयसे आकुल ऋषभसेन राजाने जिनदीक्षा ले ली ॥ १ ॥

इसके साथ, उसी जैसे, दपमें चूर चौरासी दूसरे श्रेष्ठ नरश्रेष्ठ दीक्षित हुए। ये ही बादमें चार कल्याणोंकी विभूतिसे संपन्न ऋषभ जिन के गणधर बने। इसके सिवा, अपने-अपने भावसे चौरासी हजार व्यक्ति और भी प्रव्रजित हुए। ग्यारह गुण स्थानोंसे समृद्ध, तीन लाख प्रसिद्ध श्रावक वहाँ उपस्थित थे। आर्यिकासभाकी तो कोई बात ही नहीं पूछ रहा था। दुष्कृतकर्म मलसे रहित होकर सब भी, जिनके चारों ओर ऐसे बैठे हुए थे, माना पूर्णचंद्रके आस-पास तारे हों। यद्यपि अश्व, हाथी और सिंह आदि जगकी पशुगण, आपसी बैर-भाव भूलकर वहाँ बैठे हुए थे। ऋषभ जिनके केवल ज्ञानके प्रभावसे साँप और नेवले भी सेवक रूपमें शांत भावसे रहने लगे॥ १-९॥

[११] तदनन्तर उनकी दिव्य ध्वनिका खिरना शुरू हुआ। त्रिलोक महामुनि उन्होंने बंधमोक्षकालकी शक्ति, धर्म अधर्मका पक्ष पुद्गल जीव और अजीवकी उत्पत्ति, आस्रव संवर निर्जरा गुप्ति संयम नियम लेश्या, व्रत दान तप शील, उपवास, गुण-स्थान सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र स्वर्ग-मोक्ष संसार भार उनके कारण, जो प्रसिद्ध ध्यान सुर और मनुष्योंकी मृत्यु और आयुके प्रमाण सागर पूर्व पल्य कोड़ाकोड़ी लोकालोक विभाग, कर्मों का प्रकट होना काल शुभ भाव पर द्रव्य बारह अंग चौदह पूर्व नरक-तिर्यंच मनुष्यत्व देव कुलधर हलधर चक्रधर तीर्थंकरत्व इन्द्रत्व और सिद्धत्व सभी बातोंका कथन किया। अधिक बकवास व्यर्थ है सचमुच उन्होंने तीनों लोकोंमें सब कुछ देख लिया था। उसमें तिलमात्र भी ऐसा नहीं था जो उन्होंने न देखा हो॥ १-१ ॥

[१२] धर्मका पूरा प्रवचन सुनकर, सबीन अपने मनमें जीवनको चंचल समझ लिया। उनका भव-भय और संशय सब शांत हो गया॥ १॥

किसीने पाँचों महाव्रत ग्रहण कर लिये, तो कोई केश लौंच करके दीक्षित हो गया, किसीने गुणव्रतोंका पालन शुरू कर दिया। किसीने शिक्षा व्रत धारण किया और किसीने मौन रहकर अनथ दण्डव्रत। किसनोंने और दूसरी पापोंसे निवृत्ति ग्रहण की, इस तरह जिसने जो माँगा भट्टारक जिनने उसे वह दिया किसी भी पात्रसे अपना हाथ नहीं खींचा। देवता लोग भी सम्यक्त्व ग्रहणकर अपने-अपने वाहनोंपर बैठकर चले गये। धवल जिनका सिंहासन अत्यन्त धवल था उसपर कमलोंसे विशिष्ट उनका पद्मासन था। दोनों ओर सफेद छत्र और चॅवर थे। सिर पर उनके भामंडल था चारों ओर दिव्य ध्वनि खिर रही थी ॥ २–८ ॥

कुछ कालके बाद, कर्मजयी केवलज्ञानर्दिवाकर त्रिभुवन-स्वामी परम जिनने उस उद्यानसे गंगासागरकी ओर विहार किया ॥ ९ ॥

[१२] ठीक इसी समय सम्पूर्ण धरतीको अपने पैरोंपर झुकानेवाले भरतेश्वरका भी वैभव, देवोंसे बढ़कर हो गया। उनके पास बेलफलकी तरह पीवरस्तनी ९६ हजार सुंदर रानियाँ थी और उनसे उत्पन्न पचास हजार पुत्र। चौरासी लाख रथ चौरासी लाख हाथी अठारह करोड़ घोड़े, तीन करोड़ उत्तम धनुर्धारी बत्तीस हजार राजा बत्तीस हजार मडलाधिपति खेतीपातीके लिए एक करोड़ हल, नौ निधियाँ और चौदह रत्न उनके पास थे। वह छ खंड धरतीके एकच्छत्र चक्रवर्ती सम्राट् थे। जिस तरह पिता ऋषभने अपने माहात्म्यसे केवलज्ञान प्राप्त किया उसी तरह उनके पुत्र भरतने भी अपने बाहुबलसे लड़कर धरती अर्जित की ॥ १–८ ॥

चौथी संधि

[१] साठ हजार वर्षकी पुनीत और यशपरीक्ष विजय-यात्रा कर, भरतने अयोध्यामें प्रवेश किया परंतु उनका पैनी धारका सदा युद्धप्रिय चक्र अयोध्याकी सीमापर रुक गया। किसी भी तरह, वह चक्ररत्न नगरके भीतर प्रवेश नहीं कर रहा था। वैसे ही जैसे मूर्ख लोगोंके भीतर सुकविके वचन ब्रह्मचारीके मुखमें कामशास्त्रका प्रवचन गोठमें मणि और रत्नोंका समूह, सूरके निर्धनमें हाथियोंका झुण्ड दुर्जनोंके बीच सज्जन-समूह, कंजूस के घर याचक-जन, शुक्लपक्षमें कृष्णपक्षका चंद्रमा, निर्धन व्यक्तिके निकट कामुक स्त्रियाँ, दूर भव्यजनमें सम्यक दर्शन, दुर्गंधित उपवनमें भ्रमर अन्यायशील जनमें गुरुका उपदेश, सांसारिक धर्मोंमें मोक्ष-सुख, पापकर्ममें उत्तम जीव-दया और अधमा विभक्तिमें तत्पुरुष समास प्रवेश नहीं कर सकता एसे ही उस चक्ररत्नने अयोध्या नगरीमें प्रवेश नहीं किया ॥ १–८ ॥

चक्रका इस तरह निरुद्ध और विघ्नकारक देखकर सम्राट् भरतने क्रुद्ध होकर जय और यशसे युक्त महामंत्रियों तथा मन्त्री सामन्तोंसे पूछा—'बताइये मुझे अब क्या सिद्ध करना (जीतना) बाकी रह गया है' ॥ ९ ॥

[२] यह सुनकर मन्त्री बोले—'हे देव आपने जो जो सोचा वह सब सिद्ध हो गया। छ खंड धरती भी निधियाँ चौदह रत्न निन्यानबे हजार निधान (खजाने) और बत्तीस हजार दूसरे देश ? और भी जो सफलताएँ आपने प्राप्त की उन्हें कौन गिन सकता है, केवल एक व्यक्ति अभी सिद्ध करनेके लिए बाकी बचा है और वह है आपका छोटा भाई और तीर्थंकर ऋषभका पुत्र बाहुबली। वह सवा पाँच सौ धनुष लम्बा, परम शरीरी स्वाभिमान और लक्ष्मीका निकेतन, अजय शत्रुओंका

काल के समान, विशाल बलशाली और पोदनपुरका राजा है ॥ १-८ ॥

सिंहकी तरह संनद्ध परम क्षमाशील उसे किसी तरह विघटित करना चाहिए। हे देव वह समस्त स्कन्धावार सहित आप को एक ही प्रहारमें चूर चूर कर देगा ॥ ९ ॥

[३] यह वचन सुनकर भरत क्रोधसे दाँत किटकिटाने लगा। तुरन्त ही उसने मंत्रियोंको यह सन्देश देकर भेजा "उससे कहा कि वह मेरी आज्ञा माने" और यदि किसी तरह वह इस बात पर राजी न हो तो ऐसी युक्ति करना जिससे दोनों का युद्ध हो'। भरत के सिखाये हुए मन्त्री वहा से चले, और आधे ही पलमें पोदनपर पहुँच गये। तब आदरपूर्वक बाहुबलिन उनसे पूछा—कहिए कैसे आना हुआ ? उन्होंने (भरतने) मेरे लिए क्या कहा है, इस पर मन्त्रीने उत्तर दिया, "क्या आप और क्या भरत—दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है, तो भी आप चलकर पृथ्वीश्वर भरतसे भेंट कर लीजिए ? जिस प्रकार दूसरे अठानवे भाई उनकी आज्ञा मानकर रहते हैं वैसे ही आप भी, अहंकार छोड़कर उनकी आज्ञा मानकर रहिए ॥ १-८ ॥

यह सुनते ही भयसे भी अत्यंत भयंकर बाहुबलि भरतके दूत पर बिगड़ उठे और बोले, "यह विशाल धरती केवल हमारे पिताजी की है और किसीको इस मैं नहीं जानता ॥ ९ ॥

[४] दीक्षा लेते समय पिताजीने बटवारेमें जितनी धरती मुझे दी थी उस पर मेरा सुन्दर शासन है, किसीके साथ मैंने कुछ बुरा भी नहीं किया। वह भरत तो सारी धरती का स्वामी है मैं तो केवल पोदनपुरका अधिपति हूँ न तो

मैं कुछ देता हूँ और न लेता हूँ। और न उसके पास जाता हूँ। उससे भेंट करनेमें मेरा कौन-सा काम बनेगा। क्या मैं उसके प्रसादसे राज्य करता हूँ? क्या मैं दुर्वार और अजेय—उसके बलसे हूँ? क्या उसके बलपर मेरा पुरुषार्थ टिका है? क्या उसके बलसे मेरा जनलोक है? क्या उसके बलसे मैं सम्पत्तिका भोग कर रहा हूँ।" पोदनपुर-स्वामी बाहुबलिके इस तरह गरजन पर भरतके मन्त्रियोंने भी क्रोधसे भड़ककर कहा "यदि तुम समझते थे कि यह धरती-मंडल तुम्हें पिता जीने बहुत सोच-विचार कर दिया है, तो (याद रक्खो) गाँव सीमा, खलियान और खेत, एक सरसों भर भी बिना कर दिये तुम्हारा नहीं हो सकता॥ १–९॥

[५] यह सुनकर बाहुबलि क्रोधसे लाल हो उठा, मानो राहु ही सूर्य और चन्द्रमा पर झपट पड़ा हो। उसने कहा "ओ" किसका राज्य? और किसका भरतद्वीप? जो समझा वह तुम सब मिलकर मेरा कर लो। एक चक्रसे ही यह यह गर्व कर रहा है कि मैंने समस्त धरा-पीठको वशमें कर लिया। यह नहीं जानता कि इससे क्या काम बनेगा, और किसके पास एकछत्र राज्य रहा है॥ १–४॥

मैं कल ही परावर्तित भाला, कराल कणिक मुद्गर मुसुण्डि और विशाल पट्टिश आदि शस्त्रोंसे ऐसा प्रतिकार करूँगा कि उसका सब मान गलित हो जायगा।" यह सुन कर मन्त्री लोग फौरन वहाँसे चल पड़े और पलभरमें भरतके पास जा पहुँचे। जो कुछ उसने कहा था यह सब भरतको बताते हुए मन्त्रियोंने कहा कि 'हे देव वह आपको तिनकेके बराबर भी नहीं मानता महामानी वह अपने घमंडमें इतना चूर है कि शत्रुक्षयकारी वह आपकी सेवा नहीं करना चाहता धरतीरमण और युद्धसंनद्ध वह रणपट मांड कर दाँव चुकाना चाहता है (?)॥ ५–९॥

[६] यह सुनकर, राजा भरत तुरन्त भड़क उठा ? मानो लपटोंसे सहित आग ही भड़क उठी हो। फौरन उसने तैयारी की भेरी बजवा दी। यह सुभट सूर स्वयं भी तैयार होने लगा। चतुरंग सेना इकट्ठी होने लगी, अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ आ पहुँची। ध्यान करते ही नौ निधियाँ रथका रूप धारण किये हुए घूमने लगीं। ये निधियाँ थीं—महाकाल काल माणव पांडुक पद्म शंख, पिंगल नैसर्प और सर्वरत्न। वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो पुण्यका रहस्य ही अनेक मार्गों में विभक्त हो गया हो। उनकी ऊँचाई ९ योजन लम्बाई चौड़ाई १२ योजन और गहराई ८ योजन थी। प्रत्येक निधि एक हजार यक्षोंसे रक्षित थी। कोई निधि वस्त्र देती थी, कोई भाजन और कोई रत्न। कोई आयुध लाती थी कोई अन्न और गज। कोई औषधि धारण करने वाली थी, कोई विमान और तरह तरह के आभूषण धारण करती थी। भरत ने चक्र, चक्र सेनापति हय गज गृहपति छत्र-दण्ड नैमित्तिक, काकिणी मणि स्थपति गज और पुरोहित इन चौदह रत्नों का ध्यान किया ॥१–११॥

[७] जैसे ही भरतने अभियानके लिए प्रस्थान किया, वैसे ही बाहुबलिके दूतोंने उसे खबर देते हुए कहा, "तैयार होकर शीघ्र निकलिए देव ! प्रतिपक्ष समुद्रकी भाँति दीख पड़ रहा है।" यह सुनते ही पोदनपुरनरेश महाबाहु बाहुबलि भी तत्परतापूर्वक तैयारी करने लगा। पटु और पटह बज उठे शंख भी फूँक दिये गये। असंख्य ध्वज-दण्ड और छत्र चलने लगे। कष्ट-वश होने लगा हथियार ले लिये गये हाथोंके प्रहारसे वाहन चलने लगे। बाहुबलि निकल पड़ा। उसकी एक ही सेनाने भरतकी चार अक्षौहिणी सेनाएं। युद्ध

कर दिया ? भरत और बाहुबलि, तथा उनकी सेनाएँ, पास-पास पहुँची। आमने-सामने ध्वजके आगे ध्वज कर दिये गये। अश्वके सामने अश्व। महागजोंके सामने महागज, योद्धाओंके आगे योद्धा महारथोंके आगे महारथ, खड़े कर दिये गये ॥ १-९ ॥

राम और राक्षसोंकी सेनाकी तरह सम्पन्न, खूब हर्षित होकर, विशेष कंचुक और कवच पहने हुए एक दूसरे को ललकार कर दोनों सेनाएँ आपसमें टकरा गईं ॥ १० ॥

[८] भरत और बाहुबलिकी सेनाओंके भिड़ते ही कलकल शब्द बढ़ने लगा। रथ हाँके जाने लगे, हाथी उकसाये जाने लगे। एक दूसरे पर लगातार हमले होने लगे। पैर छिन्न भिन्न होने लगे। रथ के धुरे टूटने लगे। गंडस्थल विदीर्ण हो गये और छाती फटने लगी। भुजाएँ कटकर गिरने लगीं, सिर लोटने लगे छिन्न-भिन्न रुण्ड-मुंड नाच रहे थे। हाथियों के दाँतोंके प्रहारसे छिन्न होकर योद्धा हट रहे थे। प्रतिहत होकर गजसेना धरती पर पड़ने लगी। ध्वजपट खंडित होकर धस रहे थे। बड़े-बड़े रथ मसले जाकर चकना-चूर हो गये। बड़े-बड़े अश्व नष्ट होकर लोटपोट हो गये। रक्तरंजित तीरोंसे दोनों ही सेनाएँ भयङ्कर हो उठीं मानो दोनों कुसुम्भ राग में रँग गई हों ॥ १-८ ॥

इस तरह नष्टप्राय दोनों सेनाओंको भिड़ते और धरती पर गिरते देखकर मंत्रियोंने निवेदन किया। "बेचारे सैनिकों के संहार से क्या ? अच्छा हो यदि आप दोनों आपस में दृष्टि युद्ध कर लें" ॥ ९ ॥

[९] पहले दृष्टि युद्ध होना चाहिए फिर जलयुद्ध और मल्लयुद्ध। जो तीनों युद्धोंमें आज विजयी होगा उसी की निधियाँ, राज्य और रत्न होंगे। यह सुनकर, दोनों सेनाएँ बड़े

दुःखसे दूर-दूर हट गई। और तुरन्त ही उन्होंने (नन्दा और सुनन्दाके पुत्रोंने) दृष्टि-युद्ध प्रारम्भ किया सबसे पहले भरतने अपने भाईको देखा मानो कैलाश पर्वतने सुमेरु पर्वत-को देखा हो। काले और सफेद बादलोंके समान उसकी दृष्टि उस समय ऐसी सोह रही थी मानो नीले और सफेद कमलोंकी वर्षा हो रही हो उसके बाद बाहुबलिने भरत पर दृष्टिपात किया मानो सूर्यने सरोवरमें कुमुद-समूहको देखा हो, पराजित भरतका मुख, उत्तम कुल-वधूकी तरह सहसा नीचे झुक गया। बाहुबलिकी विशाल भौंहोंवाली दृष्टिसे भरतकी दृष्टि ऐसी नीची हो गई जैसे सासने वाडित, चंचलचित्त नवयौवना कुल वधू नम्र हो जाती है ॥ १–९ ॥

[१०] जब भरत दृष्टि-युद्धमें नहीं जीत सका तो पल भरमें ही जलयुद्ध प्रारम्भ हुआ। पोदनपुरनरेश बाहुबलिन सबसे पहले जलमें ऐसे प्रवेश किया मानो मानसरोवरमें ऐरावत हाथी ही घुसा हो। तब ईर्ष्यासे भरकर, महीपति भरतने पानी हिलोरकर अपने ही भाई पर पानीकी बौछार छोड़ी मानो महीधरों पर समुद्रने अपनी वेला छोड़ी हो शीघ्र ही वह जलधारा बाहुबलिकी छाती तक पहुँचकर असती स्त्रीकी तरह मर्सित होकर लौट आई। उसके वक्षस्थल पर हिमकणोंकी तरह स्वच्छ जल ऐसा सोह रहा था मानो आकाश में तारा-समूह ही घना छिटका हो। फिर बादमें बाहुबलिन भी जलकी धारा भरत पर छोड़ी उसकी चपल निर्मल उठती हुई तरंग ऐसी लगी मानो आकाश-गंगा ही जा रही हो ॥१–८॥

उतनी बड़ी धारामें पड़कर कातरमुख भरतेश्वर पीछे हट कर रह गया और वह वैसे ही नम्र-सा हो गया जैसे आलि-गनके लिए विकल कोई खोटा संन्यासी ...

पड़कर भग्न हो ...

[११] जब जलयुद्धमें भरत नहीं जीत सके तो फिर मल्लयुद्ध प्रारम्भ हुआ ॥ १ ॥

आपोस विकसक (काछ कसे हुए) श्रेष्ठ मल्ली वे दोनों मल्ल की भाँति अखाड़े में घुसे। अपने बाहु ठोककर वह ऐसे उठे मानो सुमेरु शिखर स्वयं ही भिड़ गये हों। बाहुबंध कुक्कुट, कर्तरी विज्ञान करण और भामरी (मल्लयुद्धकी क्रियाएँ) के द्वारा उन्होंने भरतके साथ मनमाना खूब व्यायाम किया, फिर बादमें अपने धैर्यका प्रदर्शन किया। उन्होंने अपने दोनों हाथोंसे नरेन्द्र भरतको वैसे ही उठा लिया जैसे जन्मके समय इन्द्र बालजिनको उठा लेता है। इसी बीच बाहुबलि पर देवोंने फूलोंकी वर्षा की। विजयपक्ष उसकी सेना कोलाहल करने लगी। राजा भरत अत्यन्त दुःखी हो उठा ॥ १–८ ॥

उसने चिन्तनकर अपना चक्र बाहुबलिके ऊपर छोड़ा पर चरम शरीर वह उससे साफ बच गये। वह ऐसा लगा मानो फैले हुए किरण-जालसे सहित दिनकर-बिम्ब सुमेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करके रह गया हो ॥ ९ ॥

[१०] चक्रवर्तीके इस तरह चक्र चलानेपर, बाहुबलिके मनमें तरह-तरहके विचार आये। उन्होंने सोचा—"क्या मैं प्रभु भरतको धरतीपर गिरा दूँ नहीं नहीं मुझे धिक्कार है मैं राज्य छोड़ दूँगा। क्योंकि राज्यके लिए ही अनुचित किया जाता है, इसीके लिए भाई पुत्र और बापका घात किया जाता है। इस धरतीसे क्या ? मैं मोक्ष जाऊँगा जहाँ अचल अनंत और शाश्वत सुख मिलता है। अपने मनमें यह सब विचार कर एक दम निश्चिन्त वह गजशिशुकी तरह स्थित हो गये। उन्होंने कहा—"हे भाई, तुम धरतीका भी उपभोग करो, आजसे मैं भी तुम्हारी सेवा

सुमित्तहु करेंवि विणु गुरु समीवें । थिउ पञ्च मुट्ठि सिरें लोउ देवि ॥१०॥
ओलम्बिय-करयलु एक्कु वरिसु । अविओलु अचलु गिरि-मेरु सरिसु ॥११॥

घत्ता

वेढिउ सुट्टु विसालेंहिँ वेल्ली-जालेंहिँ अहि-विच्छिय-वम्मीयहिँ ।
तहु वि ण मुक्कु भडारउ अचल-वियारउ णं संसारहों भीयहिँ ॥१२॥

[१३]

एत्थन्तरें केवल-णाण-थाणु । कइलासें परिट्ठिउ रिसहणाहु ॥१॥
तइलोक्क-पियामहु जग-पमेउ । समसरणु वि स-गुण स-पाडिहेरु ॥२॥
चोत्तीसहिँ दिवसेंहिँ भरहेसरो वि । तहों वद्धण-हरिसें जाउ सो वि ॥३॥
बोल्लाविउ गुरु-पुरउ भाइ । परलोय-सुहें इहलोउ णाइँ ॥४॥
वन्देप्पिणु दसविह-धम्म-णाहु । पुणु पुच्छिउ तिहुवण-सामिसालु ॥५॥
'बाहुबलि भडारा सुह-णिहाणु । कें कज्जें णाणु ण होइ ताहु' ॥६॥
तं णिसुणेंवि परम-जिणेसरेण । वज्जरिउ दिव्व-भासन्तरेण ॥७॥
'अज्ज वि ईसीसि कसाउ तासु । जं लग्गें तुहारऍ जिम णिवासु ॥८॥

घत्ता

अइ भरहहों वि समप्पिय तो किं चप्पिय महँ चलणेंहिँ महि-मण्डलु ।
एम कसाएं लइयउ सा पव्वइयउ तेण ण पावइ केवलु ॥९॥

[१४]

तं वयणु सुणेंवि गउ भरहु तेत्थु । बाहुबलि-भडारउ अचलु जेत्थु ॥१॥
सम्मडु वन्दिउ पणमहिँ तासु । तउ तविउ णिरिंदिम हउँ तुम्ह दासु'॥२॥

करेगा"। यह कहकर और निशल्य होकर, उन्होंने जिन-गुरु का नाम ले पाँच मुट्ठियोंसे अपने केश उखाड़ लिये। इस तरह बाहुबलि दोनों हाथ लम्बे कर, एक वर्ष तक, मेरु पर्वतकी तरह अचल और शान्त चित्त होकर खड़े रहे। बड़ी-बड़ी लताओंके मार्गों, साँप-बिच्छुओं और बाँबियोंसे वे अच्छी तरह घिर गये, कामनाशक भट्टारक बाहुबलि एक क्षण भी उनसे मुक्त नहीं हुए मानो जैसे संसारकी भीतियों ही ने उन्हें न छोड़ा हो ॥ १–९ ॥

[१३] इसी के कुछ अनन्तर केवलज्ञानवाहु, तीनों लोकों को प्रिय लगाने वाले अशोकवृक्ष, भगवान् ऋषभ, अपने समवशरण, प्रातिहार्य और गणधरोंके साथ कैलाश पर्वत पर पहुँचे। थोड़े ही दिनोंके बाद सम्राट् भरत उनकी वंदनाभक्तिके लिए वहाँ गया। जिन गुरुके आगे स्तुति करता हुआ वह ऐसा सोह रहा था मानो परलोकके मूलमें इहलोक हो। इस प्रकार उस धर्मोंके पालक ऋषभकी वंदना करके उसने स्वामिभेद उनसे पूछा—"मुक्तिनिधान बाहुबलिको किस कारण से आज भी केवलज्ञान नहीं हो रहा है?" यह सुनकर परम जिनेश्वर ऋषभनाथने अपनी दिव्य भारतीमें कहा 'आज भी थोड़ी सी यह कषाय उसके मनमें है कि मैं तुम्हारी (भरत की) धरती पर रह रहा हूँ। जब मैंने अपनी धरती भरतको अर्पित कर दी तो फिर मैं पैरकी अंगुलियोंसे उसके महिमण्डलको क्यों चाँप रहा हूँ? इसी कषायके कारण उसने दीक्षा ली और इसीसे उसे केवलज्ञान भी उपलब्ध नहीं हो रहा है ॥ १—९ ॥

[१४] यह वचन सुनकर भरत वहाँ गये जहाँ बाहुबलि अचल भावसे खड़े हुए थे। साष्टांग उनके पैरों पर गिर कर उसने कहा, यह धरती तुम्हारी है मैं तुम्हारा किंकर हूँ।

प्रजापति भरतके यह निवेदन करते ही बाहुबलिके चार घातिया कर्मों का नाश हो गया। उनको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। क्षण भरमें उनकी देह दूधकी तरह धवल हो उठी। पद्मासन अलंकार सफेद चमर भामण्डल छत्र प्रकट हो गये। तीर्थंकर पुत्र बाहुबलिको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, यह जानकर देवनिकाय सुरस वहाँ गये। कुछ समयके बाद, त्रिभुवन पिता ऋषभ जिन शेष चार अघातिया कर्मोंका नाश करके आठ कर्मोंके बंधनसे मुक्त हो गये। वह सिद्ध हो चुके थे पर अभी सिद्धालयमें नहीं पहुँचे थे। कुछ समयके अनंतर ऋषभ नाथने शाश्वत् निर्वाण लाभ किया। भरतको भी विरक्ति हो गई। और तब राजा अर्ककीर्ति वानरोंसे दुर्गम अयोध्याकी राजगद्दी पर आसीन हुआ। वह स्वयं राज्यका उपभोग करने लगा॥ १-९॥

• • •

पाँचवीं संधि

गौतम स्वामीने कहा 'राजा श्रेणिक तुम तीनों लोकोंमें प्रशंसा पाने वाले राक्षस और वानरवंशकी उत्पत्ति सुनो ॥ १॥

[१] अयोध्यामें बहुत समयके बाद श्रेष्ठ पुण्यरूपी वृक्ष वालके विच्छिन्न होने पर इक्ष्वाकु कुलमें धरणीधर नामका सुन्दर और पुण्यशील राजा हुआ। उसके एक पुत्रका नाम त्रिदशंजय था और दूसरेका जितशत्रु। वह युद्ध-प्रांगणमें अजय था। उसकी पत्नी विजया अत्यंत सुन्दरी और चन्द्रमाकी तरह गाल स्तनों वाली थी। उसके गर्भसे भट्टारक अजितका जन्म हुआ। संसारके भयको नष्ट करने वाले उनके जन्मके समय ऋषभकी भाँति रत्नोंकी वर्षा होती रही। ऋषभकी ही तरह मेरु पर्वत पर उनका भी अभिषेक हुआ। इसी तरह बालक्रीड़ा

और विषाद भी। एक दिन, नंदन वनको जाते हुए अजितको एक सरोवर मिला उसमें कमल खिले हुए थे। पवनसे हिलता हुआ वह ऐसा जान पड़ता था मानो हाथ ऊपर करके विकसित नलिनोंका समूह ही नाच रहा हो ॥ १–९ ॥

[२] लेकिन उसी वनमें जब सायंकाल उन्होंने उस महा सरोवरको देखा तो कमल मुकुलितदल और कांतिहीन हो रहे थे, मानो अधोमुख दुर्जनजन ही हों। वह दृश्य देखकर उन्हें बहुत विषाद हुआ। वह सोचने लगे "संसारमें उत्पन्न प्रत्येक जीवकी यही दशा होगी। दिनके पूर्वभागमें जो सूरज जीवित दिखाई देता है उसके अन्तिम भागमें वही अंगारोंका पुञ्ज मात्र रह जाता है, जिसे लाखों श्रेष्ठ व्यक्ति प्रणाम करते हैं वही स्वामी असमयमें अकेला ही मर जाता है? जीवका यमसे, शरीरका आगसे शक्तिका समयसे, ऋद्धिका विनाशसे अन्त हो जाता है।" जब भट्टारक अजित इस तरह चिंता कर ही रहे थे कि लौकान्तिक देवोंने आकर उन्हें प्रबोधित किया ॥१–८॥

चारों निकायोंके देवोंके आने पर कलिमल रहित जिनने दस हजार लोगोंके साथ तुरन्त प्रव्रज्या ग्रहण कर ली ॥ ९ ॥

[३] उपवास करनेके अनन्तर सुरश्रेष्ठ वह, ब्रह्मदत्तके घर पहुँचे। वहाँ उन्होंने ऋषभ जिनकी तरह आहार ग्रहण किया। चौदह वर्ष विहार कर वह निर्मल शुक्ल ध्यानमें स्थित हुए। तब फिर उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। पश्चात् ऋषभ जिनकी तरह, आठ प्रातिहार्य समवशरण और देवागमन आदि बातें उनको भी हुईं। उनके भी गणधर और कामदेवरूपी मल्लके नाशक बाहुवाले एक लाख साधु उनके भी साथ थे। उनके समयमें त्रिदशंजयका पुत्र जयसागर हुआ। उसका एक भाई जितशत्रु भी था। जयसागरके पुत्रका नाम सगर था, जो अत्यन्त सुन्दर और सकल चक्रवर्ती था। भरतके

भरहु जेम सइँ णवहिँ णिहाणहिँ । रज्जें थि चउदह-णिहिहिँ-पहाणहिँ ॥८॥

घत्ता

सयल-पिहिमि-परिपालणु एक्क-दिवसें चडुवें ।
णीउ ण कम्म-वसेण जिह अवहरेंवि तुरङ्गें ॥ १ ॥

[४]

दुद्दु तुरङ्गमु पवण-चावलहों । गयउ पयासेंवि पच्छिम-सायरहों ॥ १ ॥
पइसइ झुम्मसण्णु महावइ । जहिँ कलि-कालहों हियवउ पावइ ॥२॥
दुग्गु दुग्गु हरि दमिउ चरिन्दे । णं मयरद्धउ परम-जिणिन्दे ॥ ३ ॥
ताम महा-सरु दीसइ स-कमलु । चल-वीहिँ तरङ्ग-मऊर-जलु ॥ ४ ॥
तहिँ वण-मण्डवें उप्पण्णे वि । सलिलु पिएवि तुरङ्गमु ण्हन्तें वि ॥ ५ ॥
सगु मेल्लइ वेण्णवहों वानेंहिँ । तिलयकेस सम्पाइय तावेंहिँ ॥ ६ ॥
पंच सुलोयणाहों णयणन्तहों । णवि सहोयरि दससयणेत्तहों ॥ ७ ॥
तिम सइँ सहियणेँ हुक्कइ सरवरु । दीसइ ताम सयरु पिहिमीसरु ॥८॥

घत्ता

भिण्णी काम-सरेंहिँ एक्कु वि पउ ण पयट्टइ ।
णाइँ सयम्वर-माल दिट्ठि णिवाहों णावड्डइ ॥ १ ॥

[५]

केण वि कहिउ गम्पि सहसक्खहों । 'पेक्खहहु किं पुरु ण लक्खहों ॥ १ ॥
एहु जणहु-समाणु सुमाणउ । णउ जाणहुँ किं पिहिमिहेँ राणउ ॥ २ ॥
तं पेक्खेंवि सस तुम्हहँ केरी । काम-गहेण हुअ विवरेरी ॥ ३ ॥
तं णिसुणेवि राउ रोसाविउ । अप्पाणहँ अप्पाणु पणाविउ ॥ ४ ॥
'पेसिउतियहिँ मारवि णं भुवइ । तेंउ तं सयरागमणु णिरुवउ' ॥ ५ ॥
मणें परिचिन्तेंवि पच्छण्णण्णु । गउ तुरन्तु घरिँ दससयलोयणु ॥ ६ ॥
ते चउसट्ठि-पुरिसलक्खणण-धर । आये वि सयरु सयल-चक्केसरु ॥ ७ ॥

समान उसके पास भी नौ निधियाँ और चौदह मुख्य रत्न थे। समस्त धरतीके पालक राजा सगरको उसका चंचल घोड़ा एक दिन हरण करके कहीं दूर उसी प्रकार ले गया जिस प्रकार कर्म अपनी अधीनतामें जीवको ले जाता है ॥ १—९ ॥

[४] वह दुष्ट घोड़ा उसे उस बियाबान घने जंगलमें ले गया जहाँ कलि और कालका भी हृदय दहल उठता। बड़ी कठिनाईसे वह घोड़ेका दमन कर सका मानो जिनने कामदेवका दमन किया हो। इतनेमें उसने चंचल लहरों और तरंगोंसे भगुर जलवाला, कमलोंसे सहित एक महासरोवर देखा। वह वहीं लतामण्डपमें उतर पड़ा। पानी पीकर उसने घोड़ेको नहलाया। संध्या समय वह थकान उतार ही रहा था कि तिलककेशा वहाँ आई। वह बलशाली सुलोचनकी लड़की सहस्राक्षकी बहन थी। सहेलियोंके साथ जैसे ही वह सरोवर पर पहुँची वैसे ही उसे पृथ्वीश्वर सगर दिखाई दिया ॥ १—८ ॥

कामबाणोंसे आविद्ध होकर, वह एक भी पग नहीं चल सकी। वह जैसे राजाके लिए स्वयंवर माला की तरह दीख पड़ रही थी ॥ ९ ॥

[५] किसीने सहस्राक्षसे आकर कहा, "क्या तुम यह एक कुतूहल नहीं देखते। एक कामके समान सुन्दर युवक है। मैं नहीं जानता वह किस धरतीका राजा है। उसे देखकर तुम्हारी बहन कामके वशीभूत हो गई है।" यह सुनकर राजा पुलकित हो उठा मन ही मन वह नाच उठा। "ज्योतिषियोंका कहा सचा निकला निश्चय ही यह चक्रवर्ती सगर ही आये हैं" मनमें यह विचार करते ही उसका चेहरा खिल उठा। वह सगरके पास गया। चौदह लक्षणोंसे युक्त उन्हें चक्रवर्ती जानकर, हाथ माथेसे लगाकर उसने जय जयकार किया ?

कन्या उसे दे दी और नगरमें उनका प्रवेश कराया ॥ १–८ ॥

राजा सगरने भी विद्याधरोंके साथ क्रीडापूर्वक नगरमें प्रवेश किया । राजाने भी सन्तुष्ट होकर विजयार्ध पर्वतकी उत्तर और दक्षिण श्रेणियाँ उसे भेंट की ॥ ९ ॥

[६] सिलकेशाके साथ राजा सगर अयोध्या नगरी पहुँचा । उधर सहस्राक्षने भी अपने पिताका वैर निर्यातन करनेके लिए, विद्याधरोंकी सेना लेकर मेघवाहन पर चढ़ाई की । क्योंकि उसने उसके पिता सुलोचनका वध किया था । रथनूपुरचक्रवाल नगरमें यद्यपि मेघवाहन मारा गया परन्तु उनका पुत्र तोयदवाहन युद्धमें किसी तरह बच गया । प्रसन्नमन वह हंसविमानमें बैठकर तुरन्त अजितजिनके समवशरणमें पहुँच गया । वहाँ अपने वैरीका वृत्तान्त बताने पर इन्द्रने उसे अभय दान दिया । सहस्राक्षके जो सैनिक पीछे लगे थे वे भी लौट कर राजाके पास आ गये ॥ १–८ ॥

वे बोले, देव । तोयदवाहन प्राण लेकर भाग गया । वह समवशरणमें वैसे ही घुस गया जैसे सिद्धालयमें सिद्ध पुरुष चले जाते हैं ॥ ९ ॥

[७] यह सुनकर सहस्राक्ष तुरंत क्रोधसे भड़क उठा, मानो तिनकोंका समूह आगमें जल उठा हो । (वह चिल्ला उठा) "मारो-मारो उसे, चाहे वह पातालमें घुसे चाहे मेघोंमें । चाहे सुरसेवियोंकी शरणमें जाय या दस प्रकारके भवनवासी देवोंकी शरणमें । चाहे वह दुर्वार पाँच ज्योतिषियोंकी शरणमें प्रविष्ट हो, चाहे स्थिर स्थान आठ प्रकारके व्यन्तर देवोंकी शरणमें ।

भाई यह कल्पवासी देव अहमिन्द्र पवन, वरुण, वैश्रवण (धनद) और सुरेन्द्रकी भी शरणमें क्यों न चला जाय तब भी तोयदवाहन मुझसे मरेगा।" यह प्रतिज्ञा करके सहस्राक्ष वहाँ गया। पर जिनेन्द्रका मानस्तम्भ देखते ही राजाका मत्सर और मान गलित हो गया वह भी जाकर समवशरण में प्रविष्ट हुआ और जिनकी वन्दना करके सामने बैठ गया। दोनोंके जन्मान्तर बताने पर उनका वैरभाव चला गया तभी अभिनव साधनोंसे सम्पन्न, घनवाहनका पूर्वजन्म के स्नेहसे भीम और सुभीमने आलिङ्गन किया ॥ १-११ ॥

[८] भयंकर शत्रुओंके संहारक भीमने कहा—"तुम मेरे उस जन्मके पुत्र हो तुम अब भी मुझे वैसे ही प्रिय हो वैसे तब थे।" फिर उसने बार बार उसे सौ बार चूमा। और कहा, "यह अविकारी कामुक रथ लो और नये कठहार के साथ लो। इस विद्याकी भी रक्षा करो और भी समुद्रोंसे घिरी हुई देवोंके लिए भी अप्रवेश्य तीन योजन वाली यह लंका नगरी लो मैंने यह तुम्हें दी। और भी हे घनवाहन, छः योजनकी एक द्वार वाली यह पाताल लंका लो।" तब भीम और महाभीमके आदेशसे मनमें सन्तुष्ट होकर विमलकीर्ति विमलाभक मंत्रियों और अन्य सामन्तोंके साथ उसने प्रस्थान किया ॥ १-८ ॥

लंका नगरीमें प्रवेश कर अविचल राज्यमें प्रतिष्ठित वह मानो राक्षसवंशका पहला अंकुर फूटा हो ॥ ९ ॥

[९] बहुत समयके बाद भक्ति-संचयकर वह अजित जिनकी वंदना भक्तिके लिए गया। उसके समवशरणमें प्रवेश करते ही चक्रवर्ती सगर भी वहाँ आ पहुँचा। पृथ्वीपतिने अजितनाथसे पूछा "आपके समान व्रती गुणशील, देवोंका अतिक्रमण

तुम्हँ वेहा धम्म-सुक्क-झाणा । कइ तित्थयर देव महझाणा ॥ ४ ॥
तं णिसुणेंवि कमलप्प-वियारउ । मागह-भासएँ कहइ भडारउ ॥ ५ ॥
'मइँ वेहउ केवल-सम्पण्णउ । पुणु वि रिसहु देउ उप्पण्णउ ॥ ६ ॥
पइँ वेहउ चक्कवइ-पहाणउ । भरह-णराहिउ पुणु वि राणउ ॥ ७ ॥
पइँ विणु वम्म होसन्ति णरेसर । मइँ विणु बावीस वि तित्थङ्कर ॥ ८ ॥
णव बलएव णव वि णारायण । हर एयारह णव वि दसाणण ॥ ९ ॥
अण्णु वि पुण्णसट्ठि पुराणइँ । तिय-सासयँ होसन्ति पहाणइँ' ॥ १० ॥

घत्ता

तोयदवाहणु ताम मार्थे पुच्छइ पहन्तउ ।
दस-सयारेंण सपुत्त भरहु जेम णिक्खन्तउ ॥ ११ ॥

[१०]

जिय-सत्तुएहीं णिहय-पडिवक्खहों । वज्जा-सयरि दिण्ण महारक्खहों ॥ १ ॥
णहयँ काले सासय-थाणहों । थविउ भडारउ गउ णिव्वाणहों ॥ २ ॥
सयरहों सयल विहिमि भुञ्जन्तहों । रयण-णिहाणइँ परिपालन्तहों ॥ ३ ॥
सट्ठि सहास हुय वर-पुत्तहुँ । सयल-कला-विण्णाण-णिउत्तहुँ ॥ ४ ॥
एक दिवसें जिण भवण णिहालहों । अवरुप्पर-हरिसें गय कइलासहों ॥ ५ ॥
भरह किया मणि-कञ्चण-भवणइँ । चउवीस वि अन्तेउर-पवरइँ ॥ ६ ॥
भणइ भगीरहि सुहु पियमल्लु । करहुँ कि पि जिण-भवणहुँ रक्खणु ॥ ७ ॥
कह वि गङ्ग अमाणहुँ पासेंहिँ । तं जि समप्पिउ भाइ-सहासेंहिँ ॥ ८ ॥

घत्ता

दण्ड-रयणु परिचिन्तेंवि खोणि खणन्तु समाढिउ ।
पायालहरि णाइँ विवरु-अणन्तु पयडिउ ॥ ९ ॥

[११]

तक्खणें णोइ गाउ अहि-बीयहों । धरणिन्दहों सहास फड-बीयहों ॥ १ ॥
आसीविस-दिट्ठिएँ णिज्झाइय । सयल वि भासहों पुञ्ज णडाइय ॥ २ ॥

तरह भीम और भगीरथ उसकी दृष्टिमें नहीं आ सके, इसलिए बच निकले। उन्मन और दीनमुख लिये वे दोनों शीघ्र ही अयोध्या आ गये। तब मंत्रियोंने सोचा कि यह बात राजा सगरको इस तरह बताना चाहिए जिससे उनके प्राण न उड़ें। उन्होंने ऐसा सभामंडप तैयार करवाया जिसमें आसनसे आसन सटे हुए थे, मेखलासे मेखला लगी हुई थी, हारसे हार और मुकुटसे मुकुट। सगर राजाके आसनके समान ही ९२ हजार और आसन बनवा दिये गये ॥ १–८ ॥

राजाने आकुलमनसे सब आसनोंको देखा पर उसके साठ हजार पुत्रोंमेंसे एक भी पुत्र उसकी दृष्टिमें नहीं आया ॥ ९ ॥

[१२] ठीक इसी समय भीम और भगीरथ आकर अपने अपने आसन पर बैठ गये। राजाने उनसे पूछा—"दूसरे लोग क्यों नहीं आये यहाँ?" पुत्रोंके विनाशसे कंपित शरीर वे दोनों कांतिहीन रक्तकमलकी तरह हो उठे। उसके ये वचन सुनकर मन्त्रियोंने कुशलवाणीमें सब बात बता दी। उन्होंने कहा—"निजकुलदीपक हे देव! गये हुये दिन क्या फिर लौटकर आते हैं? जो नदी (काल) के प्रवाहमें डूब गये, उनका साथ अज्ञानी जन ही करते हैं। मेघोंकी घटा बिजली की चमक स्वप्न और बालभावकी चपलता जल-बुदबुद तरंग आर इन्द्रधनुष-इनका अंत देखते हुए किसे अच्छा नहीं लगता? भरत बाहुबलि और ऋषभको भी कालरूपी सर्पने डस लिया। तब ये सब मिलकर एक बार फिरसे अयोध्यामें कैसे दिखेंगे॥१–९॥

[१३] समासोक्ति (अन्यक व्याज) से मन्त्रियोंने जो दृष्टान्त दिये थे उनसे राजाका हृदय विदीर्ण हो गया। उसने सोचा कि जिस कारणसे उसके पुत्र आज दरबारमें नहीं आये, अवश्य मे...

और भीमने आपबीती सुनाई। यह सुनते ही राजा, पवनसे आहत पेड़की तरह मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ा। परन्तु स्वामिद्वारा सम्मानित उसके सेवकोंने उसे सम्हाला जिससे उसके किसी तरह प्राण बच गये। बड़े कष्टसे उसकी चेतना दूर हुई। अंगोंमें कुछ चेतना आने पर वह उठा। उसने सोचा राज्यसे क्या, और स्कन्धावारसे क्या? मैं अविकारभावसे प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा। यह लक्ष्मी कितनोंको ही ठगा देती है, पाहुनोंकी तरह पहुतोंको बुलाती है। जो कोई भी युवक आता है यह उसीकी कुलपुत्री बन बैठती है, पुत्रवधूकी भाँति इस धरतीका बताओ किस मनुष्यने भोग नहीं किया॥ १-९॥

[१४] तब उसने भीमसे कहा "इस्तासे अपना राज्य करो अब मैं आकर अपना काम साधता हूँ।" पर भीमने कहा— "मैं भी इसे नहीं भोगूँगा जिसे आपने वेश्या कहा, उसका भोग मैं भी नहीं करूँगा।" त्यागी भीमने भगीरथको बुलाकर धरतीको सौंप उसे सिंहासनपर बैठा दिया। उसने स्वयं भरतकी तरह जिनदीक्षा ले तप साध निर्वाण प्राप्त किया। इसी अन्तरालमें राज्य करते हुए लंकामें शत्रुसंहारक महाराक्षसके देवराक्षस नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। एक दिन राक्षसराज बावीमें जलक्रीडाके लिए स्त्रियोंके साथ वनको गया। जैसे हाथी हथिनियोंके साथ नहाते हैं, वैसे ही स्नान करते हुए उसने कमलके भीतर मरा हुआ एक भौंरा देखा॥१-८॥

सहसा उसके मनमें विचार आया कि जिस तरह कंपित-शरीर रसलोलुप यह भ्रमर है, उसी तरह कामातुर कामिनी मुखमें आसक्त दूसरे लोग भी हैं॥ ९॥

[१५] मन ही मन वह विचार कर ही रहा था कि एक श्रमण-संघ वहाँ आ पहुँचा। उसमें सभी ऋषि, त्रिकालयोगीश्वर महाकवि और प्रतिवादियोंको ज्ञान देनेवाले वागीश्वर थे। सभी

सयल वि बन्धु-सत्तु-सममावा । तिण-कञ्चण-परिहरण-सहावा ॥ ३ ॥
सयल वि बहु-मलविलिय-देहा । धीरत्तणेण महीहर-जेहा ॥ ४ ॥
सयल वि णिय-तव-तेएं दिणयर । गम्भीरत्तणेण रयणायर ॥ ५ ॥
सयल वि घोर-वीर-तव-तत्ता । सयल वि सयल-सङ्ग-परिचत्ता ॥ ६ ॥
सयल वि कम्म-धम्म-विद्धंसण । सयल वि सयल जीव-सम्मीसण ॥ ७ ॥
सयल वि परमागम-परियाणा । काय-किलेसेहिँ-पहाणा ॥ ८ ॥

घत्ता

सयल वि चरम-सरीर सयल वि उप्पण्ण-विणा ।
तें परिगणइँ पणइ सिद्धि-बहुअ वरइत्ता ॥ ९ ॥

[१६]

ता एत्थन्तरें पहु आणन्दिउ । सो रिसि सङ्घु तुरन्तें वन्दिउ ॥ १ ॥
पणमिउ णिच्चलेवि सुपसायर । भो भो भव्वम्भोय-दिवायर ॥ २ ॥
भव संसार-महण्णव-भामिय । करें पसाउ पव्वज्जऍ सामिय ॥ ३ ॥
कप्पइ साहु साहु कडु-सर । पइँ बोलेवउ महु वें वासर ॥ ४ ॥
जं जाणहि तं करहि तुरन्तउ । णिविसद्धेण सो वि णिक्खन्तउ ॥ ५ ॥
अट्ठ दिवस संलेहण माणेंवि । अट्ठ दिवस ठाणें देवावेंवि ॥ ६ ॥
अट्ठ दिवस सुमरउ णीसारेंवि । अट्ठ दिवस पडिमउ अहिसारेंवि ॥ ७ ॥
अट्ठ दिवस आराहण भावेंवि । गउ मोक्खहों परमप्पउ झाएंवि ॥ ८ ॥

घत्ता

तहों महरिसिहों पुणु देवत्तु पवण्णन्तउ ।
थिउ अमराहिउ जेम जइ सइँ सु उप्पण्णउ ॥ ९ ॥

•

शत्रु-मित्रमें समभाव रखते थे और सोनेको तृणवत् समझते थे। मलिन शरीर होकर भी वे गौरवमें पर्वत, अपने तपमें सूर्य, गम्भीरतामें समुद्र और घोर तपस्वी थे। वे कर्मबन्धका नाश करनेवाले, सकल परिग्रहका छोड़नेवाले, कर्मबन्धके विध्वंसक, सब जीवोंको अभय देनेवाले आगमज्ञाता, कायक्लेशमें प्रमुख, परमशरीर सरलचित्त थे। मानो वे सिद्धि रूपी वधूसे विवाह करनेवाले वर ही थे॥ १–९॥

[१६] ऋषि-संघकी खबर पाकर राजा बहुत आनन्दित हुआ। वह तुरत उनके दर्शनके लिए गया। वन्दनाके बाद वसन विनय गुरु की—"हे भव्यजन रूपी कमलोंके दिवाकर हे मल सागर हे भवसागरका अन्त करनेवाले, कृपाकर मुझे दीक्षा दीजिए।" तब उन्होंने कहा—"साधु साधु लंकेश्वर! तुम आठ दिन और जीवित रहोगे, इसलिए जो ठीक समझो उस फौरन कर डालो। वह भी आधे पलमें ही दीक्षित हो गया। आठों ही दिन संलेखनाका ध्यानकर आठों ही दिन दान दिलवाकर आठों ही दिन पूजा निकलवाकर आठों ही दिन आराधना (कथाकोष) पढ़कर आठों ही दिन जिन-प्रतिमाका अभिषेक कर वह परमपदका ध्यानकर मोक्ष चला गया॥ १–८॥

तदनन्तर उसका पुत्र देवराक्षस इन्द्रकी तरह ठाटबाटसे लंकाका राज्य भोगने लगा॥ ९॥

\+ \+ \+

[६ छट्ठो संधि]

चउसट्ठिहिँ सिंहासणेँहिँ सङ्कन्तेँहिँ आक्कन्तइँ मिहिइँ ।

पुणु उप्पण्णु विजियपवरु णरवइ जेण सुपयणु मित्त-विमित्तैं ॥ १ ॥

यथा प्रथमस्योपरपाहः । तोमवृगाहस्यापत्य महारथः । महारथस्यापत्यं वैरथः । वैरथस्यापत्य रथः । रथस्यापत्यमादित्यः । आदित्यस्यापत्यमादित्यरथः । आदित्यरथस्यापत्यं भीमप्रभ । भीमप्रभस्यापत्यं पूर्वार्हन् । पूर्वार्हतोऽपत्यं जितभास्करः । जितभास्करस्यापत्यं संपरिकीर्तिः । संपरिकीर्तेरपत्यं सुग्रीव । सुग्रीवस्यापत्यं हरिग्रीवः । हरिग्रीवस्यापत्यं श्रीग्रीवः । श्रीग्रीवस्यापत्यं सुमुखः । सुमुखस्यापत्यं सुव्यक्तः । सुव्यक्तस्यापत्यं मृगवेगः । मृगवेगस्यापत्यं भानुगतिः । भानुगतेरपत्यमिन्द्र । इन्द्रस्यापत्यमिन्द्रप्रभः । इन्द्रप्रभस्यापत्यं मेघः । मेघस्यापत्यं सिंहदमनः । सिंहदमनस्यापत्यं पविः । पवेरपत्यमिन्द्रविद्रु । इन्द्रविदेरपत्यं भानुधर्मा । भानुधर्मणोऽपत्यं भानुः । भानोरपत्य सुरारि । सुरारेरपत्य त्रिजटः । त्रिजटस्यापत्य भीम । भीमस्यापत्य महाभीम । महाभीमस्यापत्य मोहन । मोहनस्यापत्यमङ्गारकः । अङ्गारकस्यापत्य रवि । रवेरपत्य चक्रमः । चक्रमस्यापत्यं वज्रोदरः । वज्रोदरस्यापत्य प्रमोदः । प्रमोदस्यापत्य सिंहविक्रमः । सिंहविक्रमस्यापत्य चामुण्ड । चामुण्डस्यापत्य घातक । घातकस्यापत्य भीम । भीमस्यापत्य द्विपबाहु । द्विपबाहोरपत्यमरिमर्दनः । अरिमर्दनस्यापत्य निर्वाणभक्ति । निर्वाणभक्तेरपत्यमुग्रश्री । उग्रश्रियोऽपत्यमर्हद्भक्तिः । अर्हद्भक्तेरपत्य अनुत्तरः । अनुत्तरस्यापत्य गतभ्रमः । गतभ्रमस्यापत्यमचिलः । अचिलस्यापत्य चन्द्रः । चन्द्रस्यापत्य अङ्गाशोकः । अङ्गाशोकस्यापत्य मयूरः । मयूरस्यापत्य महाबाहु । महाबाहोरपत्य मनोरमः । मनोरमस्यापत्य भास्कर । भास्करस्यापत्य वृषभगतिः । वृषभगतेरपत्य वृषभकान्त । वृषभकान्तस्यापत्यमरिसंत्रासः । अरिसंत्रासस्यापत्य चन्द्रावर्त । चन्द्रावर्तस्यापत्य महारथः । महारथस्यापत्यं मेघध्वनिः । मेघध्वनेरपत्यं ग्रहक्षोभः । ग्रहक्षोभस्यापत्य नक्षत्रदमनः । नक्षत्रदमनस्यापत्य तारकः । तारकस्यापत्य मेघनाद । मेघनादस्यापत्य कीर्तिधवल । इत्येतानि चतुःषष्टि सिंहासनानि ॥

छठी सन्धि

उसके बाद चौसठ सिंहासनोंकी लम्बी परम्परामें अनेक राजा हुए, इस परम्पराका अन्त होने पर अपनी कीर्तिसे विश्व को धवलित करनेवाला, कीर्तिधवल नामका राजा हुआ। उसके पहले निम्न राजा हुए—तोयदवाहन उसका पुत्र महारक्ष, उसका पुत्र देवरक्ष, उसका पुत्र रक्ष उसका पुत्र आदित्य उसका पुत्र आदित्यरक्ष उसका पुत्र भीमप्रभ, उसका पुत्र पूजार्ह उसका पुत्र जितभास्कर, उसका पुत्र संपरिकीर्ति उसका पुत्र सुग्रीव, उसका पुत्र हरिग्रीव, उसका पुत्र श्रीग्रीव, उसका पुत्र सुमुख, उसका पुत्र सुव्यक्त, उसका पुत्र मृगवेग उसका पुत्र भानुगति, उसका पुत्र इन्द्र उसका पुत्र इन्द्रप्रभ उसका पुत्र मेघ, उसका पुत्र सिंहवदन उसका पुत्र पवि, उसका पुत्र इन्द्रबिंदु, उसका पुत्र भानुधर्मा, उसका पुत्र भानु, उसका पुत्र सुरारि, उसका पुत्र त्रिजट, उसका पुत्र भीम उसका पुत्र महाभीम, उसका पुत्र मोहन उसका अङ्गारक उसका पुत्र रवि, उसका पुत्र चक्रार। उसका पुत्र वज्रोदर, उसका पुत्र प्रमोद, उसका पुत्र सिंहविक्रम उसका पुत्र चामुंड, उसका पुत्र घातक, उसका पुत्र भीष्म, उसका पुत्र द्विपबाहु उसका पुत्र अरिमर्दन, उसका पुत्र निर्वाणभक्ति, उसका पुत्र उग्रश्री उसका पुत्र अर्हद्भक्ति, उसका पुत्र अनुत्तर, उसका पुत्र गत्युत्तम उसका पुत्र अनिल, उसका पुत्र चंड, उसका पुत्र लङ्काशोक, उसका पुत्र मयूर, उसका पुत्र महाबाहु, उसका पुत्र मनोरम, उसका पुत्र भास्कर उसका पुत्र बृहद्गति, उसका पुत्र बृहत्कान्त उसका पुत्र अरिसंत्रास उसका पुत्र चन्द्रावर्त, उसका पुत्र महारव उसका पुत्र मेघध्वनि, उसका पुत्र महक्षोभ, उसका पुत्र नक्षत्रदमन उसका पुत्र तारक, उसका पुत्र मेघनाद, उसका पुत्र कीर्तिधवल।

[१] कीर्तिधवल राज्य और लक्ष्मी दोनोंका पालन देव क्रीडासे कर रहा था। एक दिन उसका साला श्रीकंठ (महादेवी लक्ष्मीका भाई) अपनी पत्नी, मंत्री और सामन्तों के साथ रत्नपुरसे आतिथ्यके लिए आया। कीर्तिधवलने सामने आकर प्रणामपूर्वक उसका आदर किया। उसे आसन पर बैठाकर स्वयं भी बैठ गया। इतनेहीमें हाथी घोड़ा रथादि पर चढ़ी हुई शत्रु-सेना तुरत टूट पड़ी। चारों द्वार अवरुद्ध हो उठे। छत्र और पताकाएँ दिखाई देने लगीं, रण-दुंदुभि बज रही थी। घोड़े हिनहिना रहे थे। हाथी चिग्घाड़ रहे थे। अवरुद्ध सैकड़ों कुमार खरा-खोटा बक रहे थे। उस सैन्यबलको देखकर श्रीकण्ठने कीर्तिधवलको धीरज बँधाया और कहा 'जबतक मैं शत्रुका सिर नहीं तोड़ दूँगा तबतक जिनवरकी जय नहीं बोलूँगा ? ॥१-१०॥

[२] तब श्रीकण्ठका युद्धक्रम देखकर कमला (श्रीकण्ठकी पत्नी) ने कीर्तिधवलको बताया—"क्या आप विजयार्धश्रेणिमें घनकञ्चनपुरके मेघधर राजाको नहीं जानते। वहाँ पुष्पोत्तर नामका विद्याधर है। मैं उसकी लड़की कमलावती हूँ। चमरधारिणी स्त्रियोंके साथ मैं एक दिन घूमने जा रही थी। उसी समय यह (श्रीकण्ठ) मेरु पर्वतके विशालपर्वत जिनालयोंकी वंदना करके आकाशमार्गसे विमानमें जा रहे थे। देखते ही मैंने अपने नेत्रकमलोंकी माला इनपर डाल दी। बस दोनोंका विवाह हो गया। अब इस समय यह युद्ध व्यर्थ हो रहा है। अपनी-अपनी सेनाओंको नष्ट मत करो और उनके पास मंत्रीको भेज दो॥ १-८॥

यह सुनकर कीर्तिधवलने वहाँ दूत भेज दिये। वे भी उस उपद्वार पर पहुँचे जहाँ पुष्पोत्तर विद्याधर था॥ ९॥

[३] विज्ञानी विनीत और नीतिज्ञ मन्त्रियोंने विद्याधरसे कहा—"हे परमेश्वर ! इतना क्षोभ किस लिए सभी कन्याएँ दूसरेकी ही पात्र होती हैं। पहाड़से निकलनेपर भी नदियाँ सब पानी समुद्रमें ही ले जाती हैं। हाथीके सिरकी माला (मोती) किसी दूसरेके ही सिर पर शोभा पाती है। जलकी धारा मेघोंसे पानी लेकर किन्हीं दूसरे पिरवोंको सींचती है। कमलिनी उत्पन्न होती है महासरोवर के बीचमें—पर उसका विकास सूर्यसे ही होता है। तो इसमें श्रीकण्ठका क्या दोष है यदि उसने तुम्हारी कन्यासे विवाह कर भी लिया ?" यह सुनकर राजा बहुत लज्जित हुआ। उसका मान और अहंकार पानी पानी हो गया ॥ १-८ ॥

कन्यादान किसके लिए ? यदि कन्याएँ किसीको न दी जायँ तो दाग लगा देती हैं, क्षयकालकी दीपशिखाकी भाँति व स्वभावसे मलिन होती हैं ॥ ९ ॥

[४] यह सुनकर वह विद्याधर राजा कमलावतीका विवाह—श्रीकंठसे करके चला गया। बहुत दिन बाद, एक दिन उसने (कीर्तिधवलने) अपने सालेको कुछ चिंतित तथा घर जानेके लिए आतुर देखा। उसने बड़े सद्भावसे उससे कहा—"तुम मुझे प्राणोंसे अधिक प्रिय हो तुम यहीं रह जाओ जिससे तुम्हारा मुख-कमल मुझसे दूर न हो। तुम्हें दैवयोगसे यहाँकी श्रीसम्पदा अप्राप्त न होगी। मेरे पास बहुतसे बड़े-बड़े द्वीप हैं, जैसे हरि हनुरुह हंस सुवेल, घर, कुश चमर कसुक मणिरत्न छाहार और वाहन अमम बबर बंबर गीर भी तोयावली संध्यागार गिरि जलधर, तिपल चीणवर रस राहन मापन भार भरक्षम और मीसवट। ये सभी विचित्र हैं, इनमें से जो अच्छा लगे; यमकी भाँति उसे चुन लो।" ॥ १-९ ॥

[५] तब श्रीकंठके मंत्रीने कहा— "बहुत कहनेसे क्या, वानरद्वीप छ सौ योजन । वहाँ किष्क महीधर और सोनेकी धरती है। चमकते हुए महामणि और स्फटिक पत्थरकी चट्टान है, आ प्रवाल और इन्द्रनील मणियोंसे सघन जलकणों और चन्द्रकांत मणियोंके झरनोंसे बहुल हैं। उसमें मोती मछलियोंकी भाँति दिखते हैं। उसके देश उत्साह अनुरूप है। वहाँ नये फूल पके फल तथा हाथसे खाने योग्य कोंपल और पूगफल हैं। जहाँ द्राक्ष और खाजक पद हैं। जिनके सुन्दर गुच्छोंका वेष भी तरसते हैं। जिसका पानी तरह तरहके फूलोंसे अंचित और भ्रमरोंसे गुंजित है। उसमें धान्यकी खेती ऐसी जान पड़ती है मानो धरतीका अंग हर्षित हो उठा हो।" यह सुनकर संतुष्टमनस श्रीकंठने चैत्र माहके पहले ही दिन देवागमनके अनुरूप उस द्वीपके लिए प्रस्थान किया॥ १-९॥

[६] लवणसमुद्रको पार करते ही उसकी सेना वानर द्वीपमें पहुँच गई। सूर्यकांत मणियोंकी आभासे अंचित यहाँकी पगडंडियों पर आगकी आशंकासे कोई पग नहीं रखता था। मणुखोंके आभासे भरी वहाँकी वापियोंमें शैवालकी आशंकासे कोई मनुष्य हाँक तक नहीं सकता था। उस द्वीपमें पानी कमलोंके बिना नहीं था कमल भी भौंरोंके बिना नहीं थे। आम मञ्जरियोंके बिना नहीं थे। मञ्जरियाँ भी ऐसी नहीं थीं कि जिनमें कल-गूँज न हो। वहाँ फल तरुवरोंके बिना नहीं थे, तरुवर भी लतावरोंके बिना नहीं थे। और लतावर फूलोंसे रहित नहीं थे और फूल भी ऐसे नहीं थे कि जिनमें भौंरे न गूँज रहे हों। उसमें एक भी पत्तेका डाल ऐसी नहीं थी कि जिसमें बन्दर न हों और बन्दर भी ऐसे नहीं थे जिनमें बुक्कार (ध्वनि) न हो। उन्हें देखकर विद्याधर श्रीकंठ उसी द्वीपमें रहने लगा॥ १-९॥

[७] इस तरह उन वानरोंसे वह खेलने लगा। कुछको उसने स्वयं पकड़ा और कुछको उसने दूसरोंसे पकड़वाया। किष्कु पर्वतकी चोटी पर आकर, उसने चौदह योजनका भव्य नगर बसाया। सबका सब उसने सोनेका ही बनाया और उसका नाम भी रक्खा किष्कपुर। इसमें चन्द्रकांतमणि की चाँदनीको, चन्द्रमा समझकर लोग बिना रातके ही वंदना करने लगते थे, तथा सूर्यकांत मणिकी चमकको सूर्य समझकर दीपकोंकी ज्योतिको बुझा देते थे। उस नगरके घर मानो एक दूसरे पर हँस रहे थे। जड़े हुए नीले मणियोंकी पंक्तियाँ ही उनकी कुटिल भौंहें थीं मोतियोंके तोरण ही उनके निकले हुए दाँत थे और विद्रुमके द्वार ही लाल-लाल ओठ। कुछ समयके बाद श्रीकंठके कौतुकजनक वज्रकंठ नामका एक लड़का उत्पन्न हुआ॥ १–८॥

एक दिन नंदीश्वर-द्वीपको जाते हुए देवोंके आगमनको देखकर श्रीकंठ भी त्रिलोकपति परम जिनकी वंदना भक्तिसे चल दिया॥ १–९॥

[८] अपनी सेना परिवार और पताकाके साथ जब वह मानुषोत्तर पर्वत पर पहुँचा तो उसके विमानकी गति ऐसी अवरुद्ध हो गई मानो कुमुनिवरकी गति मोक्षमें अवकुण्ठित हो गई हो। "आखिर मैंने दूसरे जन्ममें ऐसा क्या किया था दूसरे देवता लोग तो चले गये पर मेरा विमान रुक गया मैं भी घोरवीर तप करूँगा जिससे नंदीश्वर द्वीपमें मैं भी प्रवेश पा सकूँ" यह कह कर वह अपने नगर लौट आया और अपने पुत्रको राज्य अर्पित कर वह पलमात्रमें अनासंग हो गया। कालान्तरमें—वज्रकण्ठने भी ऐसा ही किया। [illegible]

और सुभाषित आदि राजा सिंहासन पर आरूढ़ हुए। मौर्यों राजा अमरप्रभ तीर्थंकर—वासुपूज्य और श्रेयांसनाथके बीचमें हुआ मानो रवि और शशिके बीचमें, पूर्णिमाके पहलेका दिन ही उत्पन्न हुआ हो ॥ १–९ ॥

[९] जब अमरप्रभका लंकानरेशकी कन्यासे विवाह होने जा रहा था तब किसीने उसके आँगनमें वानरोंके चित्र अंकित कर दिये। लम्बी-लम्बी पूँछ तथा लाल मुखवाले पंजे चलाते हुए वे वानर सामने दौड़ रहे थे। चित्रमें (इस तरहके) वानर समूहको देखकर उसकी नववधू भयसे मूर्छित हो गई। तब राजा अमरप्रभने कुपित होकर आज्ञा दी कि "जिन्होंने इन बन्दरोंके चित्र बनाये हों उन्हें मार डालो।" किन्तु मंत्रियों ने उसे शान्त करनेके लिए यह निवेदन किया "राजन् वानरोंका प्रतिक्रमण आज तक किसीने नहीं किया। इन्हींके प्रसादसे राज्यलक्ष्मी पत्नीकी भाँति तुम्हारी आज्ञाकारिणी है और उसीके प्रसादसे रणमें अजेय वानरवंश सारे संसारमें प्रसिद्ध हुआ। ये सैकड़ों वानर श्रीकंठके समयसे तुम्हारे कुलदेवता होते आये हैं" ॥ १–८ ॥

यह सुनकर उस विनीत और विचारशील राजाने बड़ी प्रसन्नतासे उन्हें कुलके पवित्र प्रतीक रूपमें अपने मुकुट और ध्वज छत्र पर अंकित करवा लिया ॥ ९ ॥

[१] वानरवंशकी प्रसिद्धि इसीसे हुई। उन दोनों श्रेणियों को जीतकर वह राजा अपना शासन करने लगा। उसका पुत्र कपिध्वज हुआ। कपिध्वजका पुत्र नयनानंद नयनानंदका विद्याख्यगुण खेचरानंद खेचरानंदका पुत्र गिरिनंदन और गिरि नंदनका पुत्र उदधिरथ हुआ। उसका परम मित्र था लंका नरेश तडित्केश जो अनेक शत्रुओंका संहारकर्ता था। विद्याधरों

का अधिपति—और आकाशगामी वह, एक दिन नहानेके लिए अपने उपवनकी बावड़ीमें घुसा हुआ था कि इतनेमें उसकी पत्नीके स्तनके अग्रभागमें किसी बंदरने काट दिया। तब राजाने उस वानरराजको अपने बाणोंसे छेद डाला। वह भी आहत होकर पेड़के मूलमें आ पड़ा। (किसीसे) नमो-कार मन्त्र सुनकर वह वानर मरकर स्वर्गमें देव हो गया। नाम था उसका उदधिकुमार। अपने पूर्वभवका स्मरण कर वह शीघ्र वहाँ आया जहाँ तडित्केश था ॥ १-९ ॥

[११] उसे देखकर उदधिकुमार विचार करने लगा कि इसी दुरात्माने मेरा वध किया था। इसका मन आज भी आशंकासे भरा है इसीलिए जिस वानरको देखता है उसे ही मार देता है, न जाने यह दुष्ट अभी कितनोंको और मारेगा। इसलिए मुझे मायावी सेना उत्पन्न करनी चाहिए। यह सोचकर उसने पहाड़की तरह (डीलडौलवाले) लाल मुँह लम्बी पूँछ तथा भुकुटिके कठोर स्वरवाले बंदरोंकी सेना उत्पन्न कर दी। असंख्य वानर ऊपर नीचे दौड़ने लगे। जब वन और आकाशमें भी वे नहीं समा सके। कोई बंदर बड़े बड़े पेड़ उखाड़ रहा था तो कोई पहाड़ हिला रहा था। कोई प्रहारके लिए दौड़ रहा था। किसीकी पूँछ लम्बी थी तो कोई हाथोंमें आग लिये था तो कोई किसी और उत्पातमें लगा था। यमकी आकृतिवाले वे सामने आकर उसे घेर गये मानो बहुतसे भाइ ही हों ॥ १-९ ॥

[१२] तब किसीने आकर लंकानरेशसे कहा—"तुमने जिस तरह बंदरको मारा था वैसे ही तुम पर प्रहार होगा?" यह सुनते ही राजा काँप उठा। क्या कहीं कभी बंदर भी बोलते हैं क्या कभी बंदरोंके भी हथियार हाथ हैं। यह

कोई छोटी मोटी बात नहीं है ?' यह सोचकर वह महाभयसे व्यथित हो उठा। उसने माथा झुकाकर कहा—"तुम कौन हो मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है। किसलिए इतनी तैयारी कर रहे हो"—यह सुनकर उदधिकुमारने उत्तर दिया—"क्या प्रभु! तुम मेरे पूर्व जन्मको भूल गये। तुम सब अवकीड़ा के लिए आये थे तो मुझे महादेवीके कारण मार डाला था। परन्तु मुनिके (सुनाए) णमोकार मंत्रके प्रभावसे स्वर्गमें आकर मैं देव हो गया॥ १–८॥

यहाँ एक मैं अब तुम्हारे बैरका स्मरण कर मायाके बलसे अनेक होकर सामने स्थित हूँ। रणमें तुम निष्क्रिय क्यों बैठे हो या तो लड़ो नहीं तो मेरे चरणों पर गिरो॥ ९॥

[११] यह सुनते ही राजाने उसे नमस्कार किया। उसने भी अपनी देवगतिका प्रदर्शन किया और तडित्केशका हाथ पकड़कर वह उस एक चतुर्ज्ञानधारी महामुनिके निकट ले गया। परिक्रमा देकर उन्होंने खूब गुरुभक्ति की और फिर उसके सम्मुख आकर बैठ गये। समूचे अंगोंसे प्रसन्न होकर वह देव बोला—"यह जन्म मैंने इनकी कृपासे देखा नहीं तो पहलेका मेरा प्राकृत शरीर अभी तक पड़ा यह दिखाई दे रहा है।" यह देखकर, तडित्केश पवनाहत वृक्षकी भाँति एकदम काँपने लगा। उसने कहा—"आप मुझे कार्य बताये जिससे मैं नरकमें न पड़ूँ।" यह सुनकर चारुचरित मुनिने कहा—"मेरे आचार्य दूसरे हैं वही विस्तारसे धर्म कथन करेंगे। आप प्रशांत जिन-मन्दिरमें चलें।" वे तीनों भाई बड़े संतापसे चल पड़े। मानो वाहुबलि भरत और ऋषभ ही मिलकर आ रहे थे॥ १–२॥

उन तीनों—उदधिकुमार, राजा और मुनिने चैत्यगृहमें महामुनिको देखा मानो धरणेन्द्र सुरेन्द्र और नरेन्द्रने समवसरणमें परमजिनको ही देखा हो॥ ११॥

[१४] प्रणामके अनन्तर उसने परम-ऋषिसे पूछा—"परम आदरणीय धर्मका मार्ग दिखाइए।" तब चतुर्ज्ञान-धारी त्रिकालज्ञ वह यतिवर बोले—"धर्मसे ही छत्रध्वजा और सिंहासन मिलते हैं। धर्मसे ही नौकर रथ घोड़े और हाथी होते हैं। पलंग और आभरण भी धर्मसे ही होते हैं। धर्मसे ही नृपासन और मोहन मिलता है। धर्मसे सुन्दर स्त्रियाँ और महल होते हैं। धर्मसे ही पिकी तरह पीनस्तनी स्त्रियाँ चमर डुलाती हैं। मनुजत्व और देवत्व दोनों धर्मसे ही होते हैं। बलदेव वासुदेव अर्हन्त सिद्ध तीर्थंकर चक्रवर्ती ये सब धर्म से होते हैं ॥ १–८ ॥

एक धर्मके रहनेसे इन्द्र और देव भी सेवा करते हैं। धर्म रहित व्यक्तिके घरमें चण्डाल भी पैर नहीं रखता ॥९॥

[१५] तब तडित्केशने फिर गुरुसे पूछा "हे देव पूर्वभवमें यह और मैं दोनों क्या थे।" यतिने कहा—"सुनो उत्तरार्धदेशमें काशीदेश है वहाँ तुम उत्पन्न हुए थे। तुम साधु थे और यह देव महेरी। जिस पेड़के नीचे तुम बैठे थे वहाँ यह आया और तुम्हें मग्न देखकर यह उपहास करने लगा। तब तुम्हें भी थोड़ी-सी कषाय आ गई। उससे तुम्हारा तपसिद्ध स्वर्ग भग्न हो गया और तुम ज्योतिष भवनमें उत्पन्न हुए। वहाँसे आकर तुम लंकामें सुखमति राजा हुए और वह शिकारी अनेक भवरूपी वनमें भटककर यहीं तुम्हारे प्रमदवनमें वानर हुआ। वहाँ तुमसे आहत होकर समाधिमरणके प्रभावसे वह स्वर्गमें आकर उदधिकुमार देव हुआ।" यह सुनकर लंकाधिपति तडित्केशने राज्य अपने पुत्र सुकेशको सौंप दिया और कुवेष व राज्यश्रीका त्याग कर अपने हाथमें तपश्री रूपी वधूको ग्रहण कर लिया ॥१–९॥

[१६] जब उसने निर्ग्रन्थ हो पञ्चमुष्टि केश लौंच किया।

तब कटक मुकुट और कुण्डल धारण करनेवाले उस देवने दृढ़ सम्यक्त्व ग्रहण कर लिया। इसी बीच, कपिचिह्नसे अंकित मुकुटवाले किष्कपुर नगरके राजाके पास एक लेखपत्र गया। धरती पर वह लेखपत्र ऐसे दिखाई पड़ा मानो जैसे वह नावाकुल (नमनशील और नौकाओंसे युक्त) गंगाका प्रवाह हो। वह अभिलेख—सिद्धसमूहकी तरह बंधनसे मुक्त था और खलकी तरह स्वभावसे कुटिल। वह युवतीजनोंकी तरह तरह-तरहके रंगोंको धारण कर रहा था तथा आचार्यकी तरह वह 'कथा और चरित' को प्रकट कर रहा था। मानो अपनी अक्षर पंक्तियोंसे वह राजा उदधिरथसे कह रहा था "तुम सुकेशका परिपालन करना तड़ित्केशने तपश्री ग्रहण कर ली है, तुम जो जानो वही करना ॥ १–८ ॥

लेखपत्रको लेकर उसने देखा कि पुत्रको राज्य देकर वह (तड़ित्केश) विरक्त हो गया है, इसलिए वानरद्वीपका स्वयं भोग करते हुए उसने पुरमें प्रतिचन्द्रको प्रतिष्ठित कर दिया ॥ ९ ॥

❀ ❀ ❀

आठवीं सन्धि

प्रतिचन्द्रके दो पुत्र उत्पन्न हुए प्रचण्ड भुजाओंवाले किष्किंध और अंधक। ठीक वैसे ही जैसे ऋषभ जिनके भरत और बाहुबलि हुए थे।

[१] धीरे धीरे वे दोनों युवा हो गये। एक दिन किसीने कहा कि विजयार्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणिमें धनधान्यसे पूर्ण आदित्य नगर है। उसके राजा विद्यामंदरकी पट्टरानी वेगमती की लड़की—श्रीमाला बहुत ही सुंदर है। उसके नेत्र नील कमलकी तरह हैं और मुख पूर्ण चंद्रकी तरह। कदली वृक्षकी भाँति सुकुमार वह किसीके गलेमें कल ही माला डालने वाली है। यह सुनकर किष्किंध और अन्धक दोनों भाई जानकी

की तैयारी करके अपने सैनिकोंके साथ, विमानोंमें बैठकर आकाशमार्गसे चल पड़े। जाते हुए उनकी अनूठी शोभा हो रही थी। आगे चलनेमें वे, विजयार्धकी दक्षिण श्रेणिमें पहुँच गये। वहाँ उन्हें और भी विद्याधर मिल गये ॥१-३॥

वहाँके राजकुलको हवामें उड़ती हुई पताका कुमार किष्किंध को ऐसी लगी मानो श्रीमालाका हाथ ही उन्हें पुकार रहा हो ॥४॥

[२] अपनी-अपनी जगह, महाकविके काव्यालापकी तरह सुन्दर मंच बने थे। कुसुमों और मणियोंसे जड़े उन मंचोंपर राजा लोग बैठ गये। जो चंचल भौंरोंसे आकुल सघन छत्रोंसे अंधकार मय, सुप्रकाशित मणियोंसे आलोकित और गायिकाओंके मधुर आलापसे मुखर हो रहे थे उन मंचोंपर बैठे हुए नृपतियोंमें से, कोई अभिनयके द्वारा अपना मर्म प्रकट कर रहा था, कोई बार बार अपने शरीरको ही सजा रहा था कोई कंठसे उतारकर हार पहन रहा था कोई चमचमाती करधनी लेकर, कुछ गुनगुनाता-सा मूठमूठ उसे पहन रहा था। आसनोंपर विराजमान वे लोग हँसते-गाते अंगोंको मोड़ते और हाथोंको हिलाते-डुलातेसे दिखाई दे रहे थे। सभी वर सजधजकर पत्थरोंकी भाँति इस तरह सामने डटकर बैठे थे मानो जैसे इसी श्रीमालाके दर्शनसे सिद्धि मिलनेवाली हो ॥ १-९ ॥

[३] इतनेमें श्रीमाला छोटी-सी हथिनीपर बैठकर सभा-मंडपमें आई। उसपर बैठी वह ऐसी लगती थी मानो महामेघोंकी गोदमें बिजली हो। संपूर्ण अलंकारोंसे प्रसाधित उसकी देह, आकाशमें उदित चंद्रलेखाकी भाँति जान पड़ती थी। आगेकी हथिनीपर उसकी दूती बैठी थी मानो रातके पहले, संध्या ही प्रतिष्ठित हुई हो। वह दूती श्रीमालाके लिए राजसमूहको इस प्रकार दिखला रही थी मानो मधुकरी ही तरुवरोंको वनकी शोभा दिखा रही हो। वह बोली—"सुन्दरी! देखो, यह आम्रमय-

शक्ति और युद्धमें दुर्निवार कुमार चन्द्रमुख है। और यह विजयसिंह है जो शत्रुके लिए प्रलयके समान रथनूपुर नगरका श्रेष्ठ स्वामी है। परन्तु वह राजाओंको वंचित करती हुई वैसे ही चली जा रही थी जैसे सम्यग्दृष्टि दूसरोंके आगमोंको दूरसे ही छोड़ देते हैं। वह उस दीपशिखाकी भाँति थी जो आगे आगे प्रकाश करती हुई पीछे अंधकार छोड़ती जाती है। वह उनको ऐसे ही छोड़ रही थी, मानो सिद्धि कुमुनियोंका या भ्रमरोंकी कतार दुर्गन्धित पत्तोंको छोड़ रही हो। वह दूती उस मालाको कुमार किष्किंधके पास उसी तरह ले गई जैसे नदीकी जलधारा कलहंसीको कलहंस के निकट ले जाती है॥१-१॥

[४] पास पहुँचते ही उसने कुमार किष्किंधके गलेमें माला डाल दी, मानो सुलोचनाने ही मेघेश्वरके गलेमें माला डाल दी हो। उसके पास बैठी हुई विमलदेह वह ऐसी लगती थी मानो कनकगिरिपर नव चंद्रलेखा ही उदित हुई हो। समस्त राजा यह देखकर कान्तिहीन हो गये मानो शशि-ज्योत्स्नासे रहित पहाड़ ही हो या सुगतिसे चूका हुआ कोई कुतपस्वी हो, या मानो सूर्यकी कान्तिसे मुक्त कमलोंकी शोभा ही हो। इस बातको लेकर श्रीमालाके पति किष्किंधपर विजयसिंहकी कोपाग्नि भड़क उठी। उसने गरज कर कहा—"इतने विद्याधरोंके होते हुए भी इसने एक वानरके गलेमें वरमाला क्यों डाली! उस पशुका कौन था और परको मार डालो वानरवंशको जड़से उखाड़कर फेंक दो।" यह सुनकर, कुमार अंधक क्रुद्ध हो उठा और उसने ललकारकर कहा—"ठीक है! तुम विद्याधर हो और हम कपिध्वज। इसमें दुराग्रह कोई बात नहीं। लो मैं तबतक तुमपर प्रहार करता रहूँगा कि जबतक तुम्हारा सिरकमल धरतीपर नहीं गिर जाता॥१-५॥

[५] यह सुनते ही, परिखाकी तरह विशाल, समय बाहुओं वाला विजयसिंह भी एकदम उछल पड़ा। और इसप्रकार एक श्रीमालाके लिए दुद्धर विद्याधरोंमें भयकर संग्राम छिड़ गया। दोनों ओरकी सेनाएँ, सुकवि के काव्य-वचनोंकी भाँति आपसमें गुथ गई। खम्भे और अश्व वैसे ही टूटने लगे जैसे कुकवियोंके अनगढ़ काव्य-शब्द। आसनोंसे शून्य हाथी-घोड़े ऐसे दौड़ रहे थे मानो वेश्या के नेत्र ही घूम रहे हों! तब लंकाका राजा सुकेश भी विद्याधर और वानरोंके उस तुमुल युद्धमें आ धमका। और वनमें दावानल की तरह, वह भी शीघ्र ही युद्धमें भिड़ गया। जो उसके पास आता वही प्राणोंसे हाथ धो बैठता। आखिरकार, क्रुद्ध अंधक ने विजयसिंहका काम तमाम कर ही दिया॥ १–८॥

तलवारसे कटा हुआ उसका सिर ऐसा जान पड़ता था मानो इसने कमल तोड़कर धरतीपर डाल दिया हो॥ ९॥

[६] विजयसिंहके पतनसे शत्रुसेना रूपी समुद्र क्षुब्ध हो उठा। तब सुकेशने प्रसन्न मुद्रामें श्रीमालीसे कहा "आप श्रीमालाको लेकर चले जायँ"। उसके कहनेसे वे दोनों भाई हर्षित और पुलकित होकर पलमात्रमें किष्कुपुर पहुँच गये। इसी बीच, शत्रुका विनाश करनेके विचारसे किसीने अशनिवेगको जाकर यह खबर दी कि शत्रुराजाओंमें श्रेष्ठ विजयसिंहका अन्त कर दिया गया। प्रतिचंद्रके पुत्र अंधकने उसे यमके मुँहमें पहुँचा दिया है। यह सुनकर अशनिवेगने जरा भी देर न करते हुए अभियान की तैयारी शुरू कर दी। चतुरंग विद्याधर सेनाकी सहायतासे उसने दृढ़तापूर्वक किष्क नगरका घेरा डाल दिया॥ १–८॥

ललकारते हुए उसने कहा, "अपनको बचाओ आ कपिध्वज वाले अंधक और किष्किंध! बाहर निकलो, तुम्हारा काल आ गया है"॥ ९॥

[७] उसने फिरसे तमतमाकर ललकारा—"तुमने मेरे भाई को जैसे मारा मैं भी तुम्हें यहीं बाणोंकी कतारसे अभी छेदता हूँ।" यह सुनकर प्रतिचंद्रराजाके दुर्दान्त पुत्रोंने निकलकर समूची सेनाको निस्तेज कर विमुख कर दिया। तब महानिवेग अंधकपर झपटा, और तडित्वाहन किष्किंधपर। वे आपसमें एक दूसरेपर हमला करने लगे। कभी एक क्षणमें आग्नेय बाण छोड़ते, तो दूसरे क्षणमें वारुण बाण कभी एक क्षणमें पवन बाण तो दूसरेमें स्तंभन दिया। एक क्षणमें व्यामोह तो दूसरेमें उन्माद, एक पलमें वे धरतीपर तो दूसरे पलमें आकाशमें दिखाई देते। पलमें रथपर तो पलमें विमानपर आ पहुँचते। आखिरकार बलवान् किसी तरह अंधक कृपाणसे कंठमें आहत हो उठा। तब वह भी उसी पथ चला गया जिसपर विजयसिंह जा चुका था॥१-९॥

[८] इधर पाषाणसे आहत होकर किष्किंधराज भी मूर्छित हो गया। अपने मनमें उसे मरा हुआ समझकर तडित्वाहनने छोड़ दिया। इसी अवसरपर सुकेश उसके पास पहुँचा और उसे रथमें उठाकर वह अपने डेरेपर ले गया। हवा करने पर वह सचेतन हुआ। उठते ही उसने अपने भाईके बारेमें पूछा। तब सुकेशने कहा—'अंधक कहाँ रहा! वह तो मारा गया? (पद्मपुराण)। यह सुनकर वज्रके पेड़की भाँति वह फिरसे धरतीपर गिर पड़ा। दुबारा हवा करनेपर उसे फिर चेतना आई वह विलाप करता हुआ बोला "भाई तुम्हारे बिना वानर द्वीप सूना है हे भाई हे सहोदर! मुझसे बात करो तुम्हारे बिना यह धरती विधवा हो गई।" ॥१-८॥

तब सुकेशने उसे समझाते हुए कहा—"अब उसके जीवित होनेमें संदेह है तुम्हारे सिरपर तलवार लटक रही है, फिर यह रोनेका अवसर कैसा?" ॥ ९ ॥

[६] अकारण ही तुम शत्रुको अपना शरीर देना चाहते हो। आओ पाताललंकामें घुस चलें। जिन्दा रहने पर सब काम बन जायेंगे। ऐसेमें तो हम, तुम और राज्य कुछ भी नहीं रहेगा।" यह सुनकर वानरवंश-शिरोमणि वह अपने परिवार और सेनाके साथ, वहाँसे निकल पड़ा। इधर तडित्वाहनने भी शत्रुको नष्ट होते और भागते देखकर, प्रसन्नतासे अपना रथ रोका? परन्तु अशनिवेगने बीचमें ही अपने पुत्र विद्युद्वाहनका हाथ पकड़कर कहा, "उत्तम पुरुषके लिए यह उचित नहीं कि वह, मरते, झुकते खाते-पीते या सोते हुए शत्रुको मारे, जिसने महाबाहु विजयसिंहको मारा था उसे मैंने कालकी विकराल दाढ़में पहुँचा दिया है॥ १-७॥

यह सुनकर तडित्वाहन रुक गया। फिर उसने शीघ्र अपने देशका एकछत्र शासन सम्हाल लिया। उसने निर्घातको लंका नगरी दे दी। दूसरोंको अन्य नगर देकर अपनी इच्छाके अनुसार वह नवयौवना सुन्दर पत्नीकी तरह धरतीका भोग करने लगा॥८-९॥

[१०] किष्किंध और सुकेशके नगरोंका उसने हरण कर लिया। उसने दूसरे विद्याधरोंको भी अपने अधीन बनाया। बहुत समयके अनन्तर एक दिन मेघपटल देख और अपने भाई विजयसिंहके दुःख याद कर, वह विरक्त हो उठा। अपने पुत्र सहस्रारको राज्य देकर वह अपना परलोक साधनेके लिए चला गया। बहुत कालके बाद किष्किंध राजा भी वन्दना भक्तिके लिए मेरु पर्वतपर गया। वापस लौटते हुए उसने मधु नामका विशाल पर्वत देखा उसे वह पर्वत अपने एक अंशमें दूसरा-सा कमला-कर आननसे हँसता-सा भ्रमरपंक्ति भौंरोंसे गुनगुनाता-सा निर्मल जलके निर्झरोंमें नहाता-सा सघन लतागृहोंमें विश्राम करता-सा

घत्ता

तं सेलु नियवि कोड्डावॅवि थिय पय पउर ।
किय पट्टणु तेत्थु किक्किन्धें किक्किन्धपुरु ॥ ९ ॥

[११]

महु-महिहरो वि किक्किन्धु मुणु । रिच्छुरउ णाम उप्पण्णु पुत्तु ॥१॥
अण्णु वि सूररउ कणिट्ठु तासु । धाडुवणि णाम सरहेसरासु ॥२॥
पुत्थें वि सुकेसहों तिण्णि पुत्त । सिरिमालि सुमालि-सुमालवन्त ॥३॥
पोढत्तणें पुच्छइ तेहिं ताउ । किं ण वाहुँ लेजु किक्किन्धराउ' ॥४॥
तं सुणॅवि जणेरें वुत्तु एम । जिय रक्खुप्पातिय तम्पु जेम ॥५॥
कहिँ वाहुँ सुएँवि पायालयङ्क । भडपासिउ वइरिहिँ तणिय सङ्क ॥६॥
घणवाहण-पमुह गिरन्तराहँ । पत्थिवहँ णाम रक्खन्तराहँ ॥७॥
मरुण्हण कइ अणिमिसि ण पयर । मइँ तम्पॅ दीसेँ जमहरिय णयर' ॥८॥

घत्ता

तं वयणु सुणेवि मालि पलित्तु हुयासि जिह ।
'उच्छरॅ रज्जेँ णिमिसु वि जियइ ताय जिह ॥ ९ ॥

[१२]

मइँ कहिय मउन्ता पईं वि मित्ति । तिह जीविउ जिह परिभमइ कित्ति ॥१॥
तिह हसु जिह ण हसिज्जइ जणेण । तिह भुञ्जु जिह ण मुआवि धणेण ॥२॥
तिह रुज्जु जिह विज्जुर जणइ धाहु । तिह तवइ जिह पुणु वि ण होइ खग्गु ॥
तिह चरु जिह मुयइ साधु साधु । तिह संचर जिह समरेँ ण दाहु ॥४॥
तिह मुणु जिह णिवसहि गुरुहुँ पासेँ । तिह मरु जिह आवहि गब्भवासेँ ।५।
तिह रज्ज करेँ जिह परिहवइ पत्तु । तिह रक्ख पाणँ जिह जणइ सत्तु ॥६॥
किं दीवें रिउ भासग्गिएण । किं पुरिसें माण-कलङ्किएण ॥७॥
किं रज्जें दाण-विवज्जिएण । किं पुत्तें मइलइ वंसु जेण ॥८॥

उस पहाड़को देख, उसने अपने पुरजनों और प्रजाको बुलाकर वहीं नगर बसा लिया। उसका नाम रखा किष्किधपुर ॥ ६ ॥

[११] तबसे पर्वतका नाम भी किष्किध हो गया। उसके ऋक्षरज नामका पुत्र हुआ उसका छोटा भाई था सूररज, वैसे ही जैसे भरतके छोटे भाई बाहुबलि थे ॥ १–२ ॥

इधर सुकेशके भी तीन पुत्र हुए श्रीमालि, सुमालि और माल्यवत। प्रौढ़ होनेपर उन्होंने अपने पितासे कहा कि हम वहाँ क्यों न जाँय जहाँ किष्किधनरेश हैं। यह सुनकर पिताने यह कहा कि जब हमारी स्थिति दन्तविहीन सपकी भाँति हो तब पाताललंका छोड़कर कहाँ जा सकते हैं। चारों ओरसे शत्रुओं की आशंका है। मेघवाहनके समयसे यहाँ हमारा निरंतर राज्य रहा है। उत्तम कामिनीकी तरह हमने इस लंकाका भोग किया। पर वही हमसे छीन ली गई ॥ ३–८ ॥

यह सुनकर मालि दावानलकी तरह भड़क उठा। वह बोला "हे तात राज्यके विनष्ट होनेपर एक भी पल जीना ठीक नहीं। ॥९॥

[१२] आदरणीय भट्टारक आपने मुझे यही नीति बताई थी कि ऐसा जीवन बिताना चाहिए कि जिससे संसारमें कीर्ति फैले। हँसना वही ठीक है कि दूसरे हँसी न उड़ा सकें, ऐसा भोग करना चाहिए कि धन समाप्त न हो। ऐसा करो कि मनों को खेद न हो ! ऐसा छोड़ो कि फिर परिग्रह न करना पड़े। ऐसा त्याग करो कि सब लोग साधु साधु कहें। ऐसा पढ़ो कि स्वजनों को भी डाह न हो। ऐसा सुनो कि जिससे गुरुके पास रह सको। ऐसा मरो कि जिससे जन्म ग्रहण न करना पड़े। ऐसा तप साधो कि शरीर शुद्ध हो जाय। ऐसा राज्य करो कि शत्रु भी झुक जाय। अत: शत्रुसे आशंकित होकर जीनेसे क्या ? दलितमान नरसे क्या ? दान रहित धनसे क्या ? धराको वश करनेवाले पत्रसे क्या ? ॥१–८॥

हे तात यदि कल ही सवेरे मैं लकानगरीमें प्रवेश नहीं करूँ तो अपनी माताका हाथ स्वय पकडूँ ॥ ६ ॥

[१३] रात बीतनेपर दूसरे दिन सवेरे उसने कूच कर दिया। तूय बज उठे, उससे रसातल और नागराज विदीर्ण हो गये। समस्त सेना चल पड़ी, कोई नरवर गजोंपर आरूढ़ हो गये, कोई अश्वोंपर, कोई रथोंपर, कोई पालकियोंमें और कोई सिंहों पर। उन्होंने लकानगरीको ऐसा घेर लिया, मानो महामेघोंने पर्वतमालाओंको, कामुकोंने प्रौढ़ विलासिनीको और भ्रमरोंने कम लिनीको घेर लिया हो। आवेगस भरे हुए उन्होंने खूब कल-कल किया, तूर्यवादकोंने खूब तूय फूँके शखवालोंने शख और वाद्य वालोंने वाद्य बजाये। चारों ओर योद्धाओंका कोलाहल होने लगा। समसमाकर लंकानरेश दौड़ा वह शत्रु सेनाको विमुख करने लगा। इतनेमें निघात विद्याधर हर्षसे आकर माल्सिे वैसे ही भिड़ गया जैसे गजेन्द्र सिंहसे ॥१-६॥

[१४] वे आपसमें एक दूसरेपर बड़े-बड़े पत्थरों, पहाड़ों और गिरिवरोंसे प्रहार करने लगे, कभी विद्यामय भीषण सर्पों गरुड़ हाथी और सिंहों से। कभी शेषनाग की तरह लम्बे-लम्बे भयंकर बाणोंसे। वे भट रथोंके छत्र और ध्वजों का वैसे ही छेद देते थे जैसे वैयाकरण व्याकरणके पदोंका छेद करता है। इतनेमें सुकेशके पुत्र मालीने अपना रथ हाका और उसे (निघातको) उठाकर आकाशमें सौ बार घुमाया फिर तलवारसे काटकर यमको चढ़ा दिया। निघात निघातकी तरह गिर पड़ा। यह देखकर, परस्पर मनुष्य संतुष्ट हो उठे और आकाशमें देवता। इस तरह उन चारोंने (सुकेश माल्सि सुमालि और माल्य वतने) अपने परामयका कलक धो डाला। जय जय शब्दके

घत्ता

सन्धिहेँ सन्धिहेँ गम्पिणु बन्धव-हत्थि किय ।
सुविलासिणि जेम कइ सइँ भुञ्जन्त थिय ॥११॥

•

८ अट्ठमो सन्धि

मालिहेँ रज्जु करन्तहोँ सियइ विज्जाहर-मण्डलइँ ।
सहसा णहिन्निहिभाइँ सायरहोँ जेम णइ-जलइँ ॥१॥

[१]

तहिँ अवसरेँ सुर-पायारहरेँ । दाहिण-सेढिहिँ रहणेउर-पुरेँ ॥१॥
पिहुल-णियम्बिणि पीण-पओहरि । सहसारहोँ पिय माणस-सुन्दरि ॥२॥
ताहेँ पुत्तु सुर-सिरि-संपण्णउ । इन्दु णामेण इन्दु उप्पण्णउ ॥३॥
मेसइ मन्ति दन्ति अइरावउ । सेणावइ हरिकेसि महायसु ॥४॥
विज्जाहर वि सव्व किय सुरवर । पवण-कुबेर-वरुण-जम ससहर ॥५॥
अट्ठवीस वि सहसइँ पेक्खणयहुँ । णाहिँ पमाणु कुसुम-वासणयहुँ ॥६॥
गायण वाइँ सुरिन्दवसणयहुँ । णाम ताइँ किमइँ अप्पणयहुँ ॥७॥
उव्वसि-रम्भ-तिलोत्तिम-पमुहहिँ । अट्ठाचाल-सहस-वर-जुवइहिँ ॥८॥

घत्ता

परिचिन्तिउ विज्जाहरेँण तहोँ जाय-जाइँ आखण्डलहोँ ।
ताइँ ताइँ महु चिन्धाइँ लइ हउँ जि इन्दु महि-मण्डलहोँ ॥९॥

साथ उन्होंने लंकानगरीमें प्रवेश किया। शान्तिनाथके शांत जिनालयमें आकर उन्होंने वंदना भक्ति की और सुविलासिनीकी तरह लंकानगरीका स्वयं भोग करने लगे।

●

आठवीं संधि

मालिके राज्य कालमें सभी विद्याधर-मंडल वैसे ही वशमें आ गये जैसे समस्त नदियोंका जल समुद्रके प्रति अभिमुख हो जाता है।

[१] इसी मालिके राज्य-कालमें विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणिमें सुधा-पंकसे धवल, रथनूपुर नामका नगर था। उसके राजा सहस्रारकी मानसुन्दरी नामकी पत्नी थी। जो पृथुल नितम्बिनी और पीनपयोधरों वाली थी। उसका देवभी से संपन्न इन्द्र नामका पुत्र था। इन्द्रको परास्त करने वाला वह माना इन्द्र ही था। उसका मंत्री था बृहस्पति हाथी ऐरावत और सेनापति था भयंकर हरिकेशी, पवन कुबेर वरुण यम शशधर आदि देवताओंको उसने अपना विद्याधर बना लिया। छब्बीस हजार उसके प्रेक्षणगृह थे। सुरज और वामनोंकी तो कोई गिनती ही नहीं थी। इन्द्रकी जितनी गायिकाएँ थीं उसने भी अपने यहाँ वैसे ही नाम रख लिये। उर्वशी रम्भा तिलोत्तमा आदि अड़तालीस हजार सुन्दर युवतियाँ उसके पास थीं। विद्याधर इन्द्रने अपने मनमें सोचा कि इन्द्रके जो जो चिह्न हैं वे मेरे भी होने चाहिए। आखिर मैं भी धरती-मंडलका इन्द्र हूँ॥ १-६॥

[२] जो लोग अभीतक मालिकी सेवा कर रहे थे वे सब उपकालके समय उसके भाग्यहीन होने पर इन्द्रसे वैसे ही मिल गये जैसे जलसमूह दूसरे समुद्रमें जा मिलते हैं। वे येमवके साथ रहते थे पर मालिको कर नहीं देते थे। अहंकारमें चूर वे उसकी आज्ञा भी नहीं मानते थे। तब किसीने जाकर मालिसे कहा "प्रभु, वे आपकी आज्ञा भी नहीं मानते, सहस्रारका कोई इन्द्र नामका लड़का है सब लोग उसीकी चाकरी करने लगे हैं।" यह सुनते ही सुकेशका पुत्र मालि क्रोधाग्निकी ज्वालासे जल उठा ॥१–६॥

तुरत उसने भयंकर रणभेरी बजवा दी। तैयार होकर योद्धा आने लगे। किष्किंध और उसका पुत्र दोनों रथ हाँककर चल पड़े। तब सुमालिने मालिका हाथ पकड़ कर कहा—"मेरे विचारसे अभी जाना ठीक नहीं। हे देव, देखिए, कैसे दुर्निमित्त हो रहे हैं। सियार रो रहा है, कौवा विरस बोल रहा है।"॥७–६॥

[३] विषधरोंसे झीजते हुए मार्गको देखिए। बाल खोल कर स्त्री रो रही है। बाईं आँख फड़क रही है। रक्त-स्नान और वसा-मज्जाका यह भाजन देखिए। धरतीका तलभाग काँप रहा है। गृद्ध और श्व-कुलोंके समूह लोट-पोट हो रहे हैं। देखिए, अकाशमें ही महाभय गरज रहे हैं। आकाशमें नित्य पड़ नाच रहे हैं।' यह सुनकर मालि अपना मुख मोड़कर बोला, "बस-बस! क्या शकुन ही बलवान है। तो फिर सब मर जाँयगे? यह सब झूठ है कि दैवको छोड़कर और कोई बलवान नहीं हो सकता। मनुष्यमें थोड़ी-सी धीरता होनी चाहिए। फिर उसके पाससे लक्ष्मी और कीर्ति कभी नहीं हटती।" यह कहकर उसने प्रस्थान कर ही दिया। और तब विमानोंके साथ सेना भी वेगपूर्वक चल पड़ी॥ १–८॥

[४] हय, गज, रथवर और श्रेष्ठ योद्धा आकाश और धरती दोनोंमें नहीं समा रहे थे। वे ऐसे लगते थे मानो विन्ध्याचलपर मेघकुल ही उठ रहे हों। यम, वरुण के तुल्य, उस रावणके प्रस्थानको सुनकर, विजयार्ध पर्वतकी दोनों श्रेणियोंके सामन्त भयभीत होकर इन्द्रकी शरणमें चले गये। इसी समय, मालिके माननीय और शक्ति सम्पन्न दूतोंने (इन्द्रके पास) आकर कहा "अरे अज्ञान रथनूपुर नरेश! तुम कर देकर संधि कर लो, क्योंकि समरांगणमें लंकाधिपति अजेय है। उसने निघात तकको यमके मुँहमें पहुँचा दिया। त्रिलोकप्रिय राजलक्ष्मी, उसकी सेवा दासीकी भाँति करती है। उसके साथ विरोध करना ठीक नहीं।" इन शब्दोंसे कुपित होकर इन्द्रने कहा, "जाओ तुम्हें दूत समझकर छोड़ रहा हूँ। नहीं तो अभी तक तुम यमकी दाढ़के भीतर पहुँच जाते। कौन है यह लंकाधिपति? कौन हो तुम? किसके साथ कैसी संधि? दोनोंमें से जो युद्धमें बचेगा यह अशेष धरती उसी की होगी।" ॥१-९॥

[५] अपमानित होकर मालिके दूत चले आये। बुधजन और गीर्वाणोंसे प्रशंसित इन्द्र भी तैयार होने लगा। हाथमें वज्र लिये वह ऐरावत हाथी पर जा बैठा। धूमध्वज कुपित शत्रु भयावन धनुर्धर हुताशन भी तैयारी करने लगा। महिषपर आरूढ़ इन्द्रका किंकर दण्डस भयंकर यम भी सन्नद्ध हो गये। रथमें दुर्धर और गीध पर सवार नैऋत मुद्गर लेकर तैयारी करने लगा। मगर पर आरूढ़ दुर्दर्शनीय वरुण हाथमें नागपाश लेकर तैयार होने लगा। बड़े बड़े पर्वतोंके उखाड़नेमें समर्थ मृगगामी पवन भी तैयार हो रहा था। कौपीन हुए अपरोंसे हाथमें शक्ति लेकर कुबेर भी पुष्पक विमानमें जा बैठा। शत्रुसेनाका संहार-

वाला बैल पर आरूढ़, शूलपाणि ईशान भी तैयारी करने लगा। सिंह पर बैठनेवाला, भाला हाथमें लिये, शशिपुरका अधिपति चन्द्रमा भी तैयार होने लगा। जितने ही वे शिथिल होते, उतने ही वीररससे पुलकित हो उठते। एक दूसरेकी पताकाओंको देखकर, सैनिकोंके कवच फूटने लगे ॥१–१०॥

[६] सर्वप्रथम क्रोधसे भरी अग्रिम सेना भिड़ी। पर, सिर, मुख और कन्धोंको मसमसाते हुए हाथी सेनाके पीछे भागमें खड़े थे, वे पूँछ उठाकर आक्रमण कर रहे थे यह सोचते हुए कि सेनाका अगला भाग कहाँ है? योधा भी पेट छातीका ख्याल न करते हुए, 'शत्रु कहाँ गया' कहते हुए हाथसे ही प्रहार कर रहे थे। अश्व, रथ और सारथि चकनाचूर हो चुके थे। केवल चाप-सहित महारथी लोग ही शेष बच पाये ॥१–४॥

तब अवसर पाकर माल्यवन्त 'रथनूपुर सार' सहस्रारके ऊपर दौड़ा। उधर सूरसेनने युद्धमें सोमको क्षुब्ध कर दिया। धूम्रसेनने वरुणको ललकारा। किष्किन्धने यमको, सुमालिने कुबेरका, सुप्रभने पवनको और मालिने इन्द्रको चुनौती दी और कहा—"इस समय मैं कालका भी कुछ नहीं समझता। फिर तुम इन्द्रकी क्या बात? क्या तुम वही इन्द्र हो जो अभी अभी यह सिर और खम्भेसे इन्द्रपद पर रमण करेगा ॥६–६॥

[७] यह सुनते ही इन्द्रने अपने ऐरावतको प्रेरित किया, जो मामा भरता हुआ कुलपावक ही था। मालि और इन्द्र आपसमें जा पड़े। दोनोंमें घोर युद्ध हुआ। तब लागोंसे इन्द्र पर ये दोनों एक दूसरे पर दृष्टिपात कर लड़ने लगे। तब जहाँ-तहाँ इन्द्रजाल दिखाई पड़ने लगा तो राक्षस मालिने भी अपनी राक्षस विद्याका स्मरण किया। यह विद्या कभी (बहुत पहले)

भीम महाभीमने दी थी और गोत्रक्रमसे उसे प्राप्त हुई थी। वह विद्या अपना विकराल मुँह उठाकर बढ़ती हुई आकाशमें नहीं समा पा रही थी। (यह देखकर) वरुण धनद, पवन और यमादि चिंतामें पड़ गये। तब दूतोंने जाकर इन्द्रसे निवेदन किया, "हे देव! मालि रणस्थलमें दुर्जेय जान पड़ता है।" यह सुनकर इन्द्रने अपनी माहेन्द्र विद्याका चिंतन किया। उसने चौगुना बढ़कर सूर्य-चन्द्रकी कान्ति तकको ढँक दिया ॥१-९॥

[८] उस माहेन्द्र विद्याको देखकर सुमालि मालिसे बोला, "यह माहेन्द्र विद्याका शत्रु नहीं, यह तो निश्चय ही काल आ गया है। ॥१-२॥

यह सुनते ही महाबाहु मालि अमर्षसे आरक्त हो उठा, और उसने तुरन्त वायव्य, वारुण और आग्नेय तीर चला दिये। किन्तु इन्द्र पर वे उसी प्रकार व्यर्थ गये जिस प्रकार मूर्खके कानों में जिन-वचन गाँठमें उत्तम मणि अकुलीनमें सैकड़ों उपकार और चरित्र हीनमें व्रत व्यर्थ जाते हैं। तब पवनसे पवन वरुणसे वरुण और अग्निसे अग्नि जा भिड़े। इस पर इन्द्रने हँसकर कहा, "अरे मनुष्यों क्या दानव भी देवोंके समान हो सकते हैं।' यह सुनकर मालिने कहा "अरे तुम देव कैसे यदि मुझे चोंथ या हटा सको, तो जानूँ तुमने सचमुच इन्द्रजालकी शिक्षा पाई है ॥१-४॥

[६] यह सुनकर देवराजने तीरसे मालिके माथेका छेद डाला। पर मालिने तुरन्त उस तीरको निकालकर फेंक दिया वैसे ही जैसे उत्तम गज बढ़िया अंकुशको गिरा देता है। वह तुरन्त रक्तसे इस तरह आरक्त हो उठा मानो सिन्दूरसे शोभित उन्मत्त गज ही हो। बायें हाथमें भाला लेकर मालिने इन्द्रके मस्तक पर शक्ति मारी। वह व्याकुल होकर गिर पड़ा। इससे राक्षसों

और वानरोंकी सेनामें खलबली मच गई। तब सुमालिने मालिकी पीठ ठोकते हुए कहा—"तुम्हारे रहते ही राक्षसवंशका उद्धार हो सकता है।" इतनेमें इन्द्रने उठकर अपना चक्र दे मारा। राक्षस मालि, आते हुए उस चक्रको नहीं समझ सका। (वह चक्र) उसके सिर पर पड़ कर (सीधा) रसातलमें जा गिरा, किसी भाँति वह केवल पट्टुएकी पीठसे नहीं टकराया। आहत होनेपर मालिके मुखका मान नहीं गया था। रोषसे भरा उसका धड़ दौड़ता रहा और उसने तलवारसे दो वार ऐरावत हाथीके गंडस्थलपर चोट की ॥१-९॥

[१०] रणक्षेत्रमें मालिके धराशायी होते ही इन्द्रकी सेनाने 'जयघोष' प्रारम्भ कर दिया। मारे डरके कपिध्वजियोंकी सेना नष्ट होने लगी। उसके प्राण गलित होकर कंठमें आ लगे। तब किसीने आकर सहस्राक्षसे निवेदन किया "देव! पीछा कीजिये क्योंकि निशाचर सुकेश किष्किन्ध आदिने कई बार हमें वंचित किया है। अबकी बार ऐसा (कुछ उपाय) कीजिए कि जिससे विजय सिद्ध घातक ये सब किसी भी तरह बच न पायें।" यह सुनकर इन्द्रने अपना हाथी आगे बढ़ाया। पर चन्द्रने आकर कहा, "परमेश्वर मुझे आज्ञा दीजिए। निशाचर और वानरोंको मैं मारना चाहता हूँ। इनकी सेनाको मैं यमपुरकी गुफामें दाँतों रूपी चट्टानके बीच जीभके अगले भाग पर फेंक दूँगा ॥१-९॥

[११] इन्द्रकी आज्ञा पाकर चन्द्र दौड़ा। उसने बाण बरसाना शुरू कर दिया मानो वर्षाकालमें पवनाहत मेघोंकी धारा ही बौछार कर रही हो। वह बोला—"अरे हमारा राक्षसो वानरो भाग भाग लौट जाओ। क्यों अपना नाश करते हो रणाङ्गनमें आनन्द मनाती इन्द्रकी सेना क्रुद्ध हो उठी है।"

जब मास्यवन्तने यह सुना तो वह निःशंक होकर सामने आकर ऐसा डट गया, मानो पूर्ण चन्द्रके सम्मुख राहु हो या गजघटाके सामने सिंह। वह बोला—"अरे श्रीमुखवाले उभय पक्षहीन कलंकी चन्द्र, कुछ लज्जा कर। 'चन्द्र' कहकर जिसकी हँसी उड़ाई जाती है, क्या वह तुमसे भी युद्धमें कहीं मारा जाएगा।" यह कहकर उसने भिंडिपाल नामके प्रहारसे धनुधारी चन्द्रको मार दिया। वेदनाके फैलते ही चन्द्र मूर्छित होकर गिर पड़ा। फिर धीरे-धीरे बड़ी कठिनाईसे उसे चेतना आई ॥१-८॥

पर इतनेमें शत्रु काफी दूर निकल चुका था। वह मन ही मन पछताने लगा। कभी सिर हिलाता और कभी हाथ धुनता, वैसे ही जैसे सत्कामित चूकने पर विप्र ॥९॥

[१०] तदनन्तर इन्द्रने जय-जय ध्वनिके बीच रथनूपुर महानगरमें प्रवेश किया। पवन कुबेर वरुण यम स्कंद नर चारण छत्रधारी कपिध्वज अत्यन्त प्रसन्न सैकड़ों बन्दीजन विद्याधर किन्नर किंपुरुष ज्योतिषी यक्ष गरुड़ और गन्धर्व सभी जयजयकार कर रहे थे। इन्द्र भी जाकर पिता सहस्रारके चरणोंपर ऐसे गिरा मानो त्रिभुवनश्रेष्ठ ऋषभ जिनके चरणोंपर भरत ही गिर पड़ा हो। उसने शशिको शशिपुर धनदको लंका और यमको किष्किन्ध नगरी प्रदान की। वरुणको मेघपुरका राजा बनाया और कुबेरको कंचनपुरीमें स्थापित किया ॥१-७॥

इस अवसर पर और भी जिसने जो समझ हो सका उन्हें एक-एक मंडल राज्य दिया गया। इस प्रकार वह, समस्त मंडलका उपभोग करने लगा।

नवीं सन्धि

[१] इस प्रकार ठाठबाटसे पाताल-लंकाका भाग करते हुए सुमालिको रत्नाश्रव नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, मानो अनुपम जिनका भरत ही उत्पन्न हुआ हो या सोलह अलंकारोंसे शोभित कामदेव ही। बहुत समय अनन्तर अपने पितासे आज्ञा लेकर, रत्नाश्रव विद्या सिद्ध करनेके लिये पुष्पवनमें गया। वहाँ वह रुद्राक्ष माला लेकर किसी महामुनिकी तरह ध्यानमें लीन हो गया। ठीक इस समय, गुणानुरक्त व्योमविन्दु नामका विद्याधर वहाँ आया। रत्नाश्रवको देखकर उसने मनमें सोचा कि ऐसा पुरुषरत्न कहाँ मिलेगा। जान पड़ता है कि गुरु वचन सच होना चाहता है। (शायद) यही वह पुष्पवन है और यही है यह मनुष्य (जिसके बारेमें गुरुजीने कहा था।) तब उसने खिले कमलके समान मुखवाली अपनी कन्या (कैकसी) से कहा—"जैसे मानसुन्दरी का पति सहस्रार था वैसे ही यह तुम्हारा पति है।" उसे वहीं छोड़कर वह विद्याधर अपने निवासगृह चला गया। रत्नाश्रवको विद्या सिद्ध हो चुकी थी। (विद्या और कैकसी) इन परमेश्वरियोंके बीच वह ऐसा शोह रहा था मानो नमदा और वाल्मीके मध्य विन्ध्याचल ही खड़ा हो ॥ १–६ ॥

[२] रत्नाश्रवने कैकसीको इस प्रकार देखा मानो इन्द्रने इन्द्राणीको देखा हो। उसके स्तन बतुल (गोल), नितम्ब सुन्दर और आँखें भीरु कमलके समान थीं। उसने कैकसीसे पूछा, "तुम किसकी लड़की हो और कहाँ रहती हो तुम्हारी सुन्दर दृष्टि सुख उत्पन्न कर रही है।" यह सुन कर कुमारी कैकसी कुछ आशंकित होकर बोली, "आप व्योमविन्दु राजाको जानते हैं मैं

इन्द्रोंकी कन्या हूँ, अभी मेरा किसीसे ब्याह नहीं हुआ है, मेरा नाम केकशी है। मैं विद्याधरी हूँ, और मेरे गुरुके आदेशसे पिताजी मुझे यहाँ लाये हैं। वह मुझे आपको विवाहमें दे चुके हैं।" यह सुनकर पुण्य श्रेष्ठ रत्नाश्रवने वहीं एक विद्याधर नगर बसाया, और अपने कुटुम्बके लोगोंको बुलाकर उसने उनसे विवाह कर लिया ॥ १–८ ॥

बहुत समय बीतने पर केकशीने रातमें कुछ सपने देखे। सवेरे उसने राजाको सपने बताये उसने कहा "मैंने देखा है कि हाथीका गण्डस्थल पकड़कर सिंह उसके मुँहमें घुस गया ॥ ९ ॥

[२] चन्द्र तथा सूर्य आकर मेरे आँचलमें छिपट गये। यह सुनकर अष्टांग निमित्तोंका ज्ञाता उसका पति रत्नाश्रव मुसकरा उठा। वह बोला "धन्य! तुम्हारे तीन पुत्र होंगे। उनमेंसे पहला पुत्र युद्धमें भयंकर, जगका कण्टक, आधे भरत क्षेत्रका अधिपति और इन्द्रको डरानेवाला चक्रवर्ती होगा। यह जानकर रानीका परितोष किसी भी तरह नहीं समा सका मानो उसे स्वर्गका ही सुख मिला हो। यथा समय, उसके अतुलबलशाली रावणका जन्म हुआ। उसकी भुजाएँ सर्पकी तरह लम्बी और नितम्ब विशाल वक्षःस्थल था। वह ऐसा लगता था मानो स्वर्गसे देवता ही आ गया हो। उसके बाद क्रमशः भानुकर्ण और चन्द्रनखा जन्मे। उसके बाद गुणागार विभीषणका जन्म हुआ। रावण (क्रीड़ामें मग्न था)। कभी वह हाथीके दाँत उखाड़ता और कभी अपने हाथसे उसके मुँहमें पत्ते खिलाता। ऐसे ही खेलोंमें रमता हुआ वह ऐसा जान पड़ता था मानो काल ही शिशुका रूप धारण करके घूम रहा हो। तब एक दिन खेलते-खेलते वह उस भण्डारमें घुस गया जहाँ तोय-दवाहनका हार रखा हुआ था। उस हारमें मणियोंसे जड़े हुए

नौ मुख थे। वो ऐसे लगते थे मानो नवग्रह ही कल्पित करके रख दिये हों। फनफनाता विषैला नागराज उसकी रक्षा कर रहा था। कोई साधारण आदमी यदि उस हारको हाथ लगाता तो नाग एकदम क्रुद्ध और दुर्विष हो उठता था। किन्तु रावणके हाथमें वह हार इस तरह आ लगा जिस तरह सामना होते ही मित्र अपने सुमित्रसे आ मिलता है। जब उसने वह हार पहना तो उसमें उसके एक मुखके नौ मुख प्रतिबिम्बित हो उठे। वो ऐसे जान पड़ते थे जैसे नवग्रह ही प्रतिष्ठित कर दिये गये हों, अथवा चलते फिरते कमल हों, और या कृत्रिम स्त्री-मुख हों? जब वह बोलता तो सब मुख बोलने लगते वह हँसता तो वे भी हँसने लगते। इस प्रकार स्थिरतारक और चंचल नेत्रवाले उसके दशमुख देखकर उसका नाम दशानन रख दिया उसका यह नाम वैसे ही प्रसिद्ध हो गया जैसे सिंहका पंचानन ॥ १–६ ॥

[५] रावणके इस तरह हार पहनेपर उसके परिजनोंने हर्ष बधावा किया। रत्नाश्रव और कैकशी दौड़कर आये, वे आनन्दसे फूले नहीं समा रहे थे। सुनते ही श्रुतरव आया और किष्किन्ध तथा पत्नी सहित सूयरव भी। आभरणोंसे सहित उसके दस मुँह और दस ग्रीवाओंको देखकर सबने यही सोचा कि यह कोई साधारण मनुष्य नहीं है। निश्चय ही यह चक्रवर्ती है। इसके पास विशाल साम्राज्य है और युद्धमें चामर तथा राक्षसोंकी बहुत बड़ी शक्ति है। इन्द्रका क्षय इसीके निकट है। यम वरुण और कुबेर आदि राजाओंकी इसके सम्मुख जय नहीं होगी। कई दिनोंके बाद, नवीन वर्षामें मेघबिन्दुओंकी तरह गरजता हुआ वैश्रवण आकाशमार्गसे जा रहा था। तब रावणने उसे देखकर—अपनी माँसे लेख-लाकमें, पूछा कि यह कौन है? ॥ १–८ ॥

[६]

त णिसुणेंवि मउलिय-वयणियएँ । वज्जरिउ स-गग्गर-वयणियएँ ॥१॥
'कण्णसिंग कणेरि पुरहों तणिय । पडिहारि चवेवि महु तणिय ॥२॥
धीसामसु णियाहउ जणणु । एँहु भाइ तुहारउ चइसवणु ॥३॥
वइरिहिं मिलेवि मुह मलिण किय । मायरि व कमागय कइ-सिय ॥४॥
पुणरवि उत्तरेंवि वेमि तिय । कइपर्णु माणेवउं राय-सिय ॥५॥
रहुणन्दण हुआसोपयणेंण । णिम्मविय अणमि णिरीसएँण ॥६॥
'वइसवणहों केरी कमण सिय । इरवणहों लोकण्णहे वि किय ॥७॥
पेक्खेसहि दिवसहिं थोवएँहिं । मारेंहि जमारिस-वेयएँहिं ॥८॥

घत्ता

जम-धणय-कुबेर-पुरन्दरेंहिं रवि-वरुण-पवण-सिहि-ससहरेंहिं ।
मज्झविउ रहुपइ-कन्दावणहों करें सेव करेवी रावणहों ॥९॥

[७]

पुणरवि दिणें आउच्छेंवि जणणु । गय तिण्णि वि भीसणु भीम-वणु ॥१॥
जहिं कलस-सहासइं डाल्लइं । जहिं सीह-पयइं रुहिरोल्लइं ॥२॥
जहिं भीसासन्तें हिं अजयरेंहिं । लोहन्ति वाल सडु तरुवरेंहिं ॥३॥
जहिं समाहव्वइं णिप्पयइं । अच्छेज्ज परम माय-पयइं ॥४॥
तहिं तेहएँ भीसणें भीम-वणें । थिय णियमें ज्झाणु धरेवि मणें ॥५॥
ता ज्झइअरेंहिं पसिद्धि गय । आमेल्ल सव्व कामद रूप ॥६॥
सा णिरिंहिं पहरेंहिं वि पासु महुण । सं गाहाकिहुय गय दइव ॥७॥
पुणु मयह सोलह-अक्खरिय । जय (?)-कोडि-सहास-सुद्धरिय ॥८॥

घत्ता

ते मायर पविमल-काम-मय दहवयण-विहीसण-भाणुअय ।
वरें सिद्ध कलस-सुमहरिए किंह जिण-मासिए तिण्णि वि बोध किय ॥९॥

[६] यह सुनकर, मलिन दृष्टि माँने गद्गद स्वरमें उससे कहा—"इसकी माँ कौशाकी मेरी बड़ी बहन है और पिता विश्रवा यक्ष विद्याधर है, अतः यह तुम्हारा (मौसेरा) भाई हुआ। पर शत्रुओंसे मिलकर इसने अपना मुख काला कर लिया है। परम्परासे प्राप्त, तथा माँके समान लंका नगरी भी इसने छीन ली है। पता नहीं वह इससे कब कौनकी तरह छीनी जायगी और कब मैं राज्यश्रीका सुख मानूँगी।" इसपर आँखें लाल करके विभीषणने कहा 'माँ ! वैश्रवण की क्या भी है। भला रावणसे बढ़कर किसी की भी हो सकती है। देखना माँ, कुछ ही दिनोंमें यम, स्कन्द कुबेर, वरुण रवि, पवन, अग्नि, शशि आदि मनुष्य, देव और दानवोंका रुलानेवाले रावणकी सेवा करने आयेंगे।" ॥ १-६ ॥

[७] एक दिन पितासे पूछकर, तीनों भाई विद्या सिद्ध करने किसी भीषण वनमें गये। हजारों पर्वतोंसे वह वन अत्यन्त डरावना था। उसमें सिंहके पैर रक्तसे लाल थे। वृक्षोंकी डालें साँस लेते हुए अजगरोंसे हिल-डुल रही थीं। पक्षियोंके बच्चे पेड़ोंकी डालियों पर बैठे हुए मस्तीमें झूम रहे थे। ऐसे उस भीषण वनमें विद्या की सिद्धिके लिए वे ध्यान लगाकर बैठ गये। आठ अक्षरवाली सर्वकाम रूपिणी विद्या दो ही प्रहरमें उनके पास ऐसे जम गई जैसे प्रगाढ़ आलिंगनमें आई हुई हो। तब दूसरी सोलह अक्षरवाली विद्याका उन्होंने ध्यान किया। दस हजार करोड़ जाप करनेके अनन्तर तीनों भाई अविचल ध्यानमें लीन हो गये। इतनेमें एक यक्ष-सुन्दरीने उन तीनोंको इस प्रकार देखा

[८] रावणके देखते ही यह सुन्दरीका मन कामबाणसे संविद्ध हो गया। वह उससे कहने लगी—"बुलाये जानेपर भी नहीं बोल रही हो। क्या तुम बहरे हो या तुम्हारा मुख नहीं है। क्या ध्यान कर रहे हो। अक्षसूत्रमाला फेंक दो, मेरे सौन्दर्य-जलका पान करो।" उसमुखके प्रत्ययको न पाकर सविलास क्रीड़ा करती हुई उसने कोमल कर्णावतंसका नीला कमल उसकी छातीपर मारा। खिले हुए रक्तकमलकी तरह मुखवाली किसी स्त्रीने उससे कहा, "तुम इसे सचमुचका आदमी समझती हो वस्तुतः यह किसीने लकड़ीका पुतला बना दिया है।" तब फिर उन्होंने रत्न-रसके लोभी अनावृत नामके यक्षसे आकर यह सब कहा ॥ १-८ ॥

"करधनी केयूर धारण किये, कोई तीन भर तुम्हें तिनकेके बराबर भी नहीं समझते। वनमें विद्याकी आराधना करते हुए ये ऐसे मालूम होते हैं मानो विरतरूपी भवनके आधारपर स्तम्भ ही हों ॥९॥

[९] यह सुनकर जम्बू द्वीपका स्वामी वह यक्ष आगकी लपटोंके समूहकी भाँति भभक उठा और बोला—"यह कौन ऐसा निर्लज्ज व्यक्ति है जो मुझसे बाहर होकर भी जगमें जीवित है। तब वह उस आश्रमके सम्मुख गया तो उसे रत्नाश्रवके पुत्र दिखाई दिये। उसने कहा, "अरे नये सन्यासियो क्या ध्यान कर रहे हो। किस देवकी स्तुति कर रहे हो"। जब एक भी उत्तर नहीं मिला तो उसकी क्रोधाग्नि और ही भड़क उठी। उसने घोर उपसर्ग आरम्भ कर दिया विषैले दाँतोंके अजगरों और साँपों, बड़े बड़े शार्दूल और हाथियों गज-भूत-पिशाच-राक्षसों गिरि, पवन आग और पावस आदिके अनेक रूपोंको बनाकर वह तरह तरहके आश्चर्य करने लगा ॥ १-८ ॥

दसों दिशाओंमें अँधेरा फैलाकर, रोकर गरजकर उछलकर, उसने उपसर्ग किया। पर वह वैसे ही व्यर्थ गया जैसे पहाड़की चोटीपर मेघ व्यर्थ जाते हैं॥ ९॥

[१] जब वह किसी तरह भी उनका चित्त नहीं डिगा सका तो उसी क्षण वह विद्याधर दूसरी माया ग्रहण करके बैठ गया। उसने दिखाया कि रावणके सभी बन्धुजन खिन्न मन होकर करुण विलाप कर रहे हैं। कोड़ोंके आघातसे उन्हें पीटा जा रहा है। क्षण-क्षण वे गिर उठ रहे हैं। रत्नाश्रव, कैकसी और चन्द्रनखा, सबके सब कह रहे हैं कि तुम क्या हमारी चिन्ता नहीं करते? हम तुम्हारी शरणमें हैं। हमारी रक्षा करो, शत्रु पीछे पड़कर मार रहा है। पुत्र! बचाओ, क्या तुम अपना वह पुरुषार्थ भूल गये। जिससे तुमने नौ मुखका हार कंठमें धारण किया था। अरे भानुकर्ण बहादुरी दिखाओ। मलनिर्मित पात्रके समान इसका सिर तोड़ दो। अरे विभीषण! कुछ प्रयत्न करो, बन्धमें हम पिट रहे हैं। अरे पुत्रो क्या रक्षा नहीं करोगे। हमने जो तुम्हारा लालन-पालनकर बड़ा किया, क्या वह व्यर्थ ही गया, वैसे ही जैसे पापसे धर्म व्यर्थ जाता है॥ १-९॥

[११] इतने पर भी जब कोई सहायताके लिए प्रस्तुत नहीं हुआ तो यक्षने (मायाके बलसे) उन तीनोंको मरा हुआ दिखाया। मरघटके सियार उन्हें खा रहे थे। फिर भी उनका स्थिर ध्यान नहीं डिगा। तब उसने रावणका मायावी सिर काटकर अविचल मन विभीषण और भानुकर्णके सामने डाल दिया। भाईके रक्त-रंजित सिर को देखकर वे दोनों कुछ डिग गये। प्रेमसे भरी उनकी स्थिर ज्योतिवाली आँखोंमें थोड़ेसे आँसू झलक उठे। तब यक्षने उन दोनोंके मुखकमल ताड़कर, रावणका दिखाये, मानो मृणालसे

कमल काटकर अलग कर दिये गये हों। लेकिन रावण अडिग रहा, तब देवोंने इसे साधुवाद दिया। इस तरह उसे एक हजार विद्याएँ सिद्ध हो गईं, ठीक वैसे ही जैसे तीर्थङ्करको केवलज्ञान सिद्ध हो जाता है ॥ १–६ ॥

[१२] महाकालिणी कहकहाती हुई आई। गगन संचालिनी, भानुपरिमालिनी, कालो कुमारी, वाराही, माहेश्वरी, घोर वीरासनी, योगयोगेश्वरी, सोमनी रत्न, ब्रह्माणी, इन्द्राणी, अणिमा, लघिमा, प्रज्ञप्ति, कात्यायनी, बाहुनी, उत्पातनी, स्तम्भिनी, मोहिनी, वैरि विध्वंसिनी, भुवन सक्षोभिणी, धारणी, पावनी, भूमिगिरिदारणी, कामसुख दायिनी, बन्धु वधकारिणी सर्वप्रच्छादिनी सब आकर्षणी, विजय-जय-जृम्भनी सर्वमदनाशिनी शक्ति संवाहिनी कुटिल अव लोकिनी, अग्नि-जलस्तम्भिनी, छिदनी भिदनी आसुरी, राक्षसी वारुणी वर्षिणी दारुणी, दुर्निवारा और दुर्दर्शनी ॥ १–८ ॥

गुण-समूहसे अनुरक्त होने वाली ये विद्याएँ रावणके पास आ गईं। उनसे घिरा हुआ वह ऐसा लगता था मानो तारोंसे घिरा हुआ चन्द्रमा हो ॥ ९ ॥

[१३] सर्वौषध स्तम्भिनी, मोहिनी संवर्धी आकाशगामिनी ये पाँच विद्याएँ अविचल ध्यान कुम्भकर्णके पास पहुँचीं। सिद्धार्थ, शत्रुविनिवारिणी निर्विघ्न और गगनसंचारिणी ये चार विद्याएँ विभीषण को भी प्राप्त हुईं। इसी बीच सफल मनोरथ और नाना विद्याओंसे अलंकृत शरीर रावणने स्वयंप्रभ नामका विशाल नगर बसाया। वह ऐसा लगता था मानों पृथ्वीपर स्वर्ग का खण्ड ही आ गया हो ॥ १–६ ॥

उसमें उसने सहस्रकूट नामका सुन्दर चैत्यगृह बनवाया। ऊँचे ऊँचे शिखर बनवाकर मानो वह सूर्यके बिम्बको पकड़ना चाहता था ॥ ७–८ ॥

रावणकी इस भक्ति-युक्तिको सुनकर घरके लोगोंको खूब परितोष हुआ। जल-थलकी कई राक्षस सेनाएँ भी आकर उसे प्राप्त हो गईं ॥ ६ ॥

[१४] अपनी ही सेनाको देखकर, उसने अवलोकिनी विद्यासे पूछा, "यह कौन है ?" उसने कहा 'यह तुम्हारे ही बन्धुजन हैं।' यह सुनकर, अपनी हजार विद्याओंसे घिरा वह निकल पड़ा। मानो हजार कमलोंसे सरोवर या हजार किरणोंसे सूर्य ही, घिरा हो। वह, विभीषण और कुम्भकर्णके साथ ऐसा आ रहा था मानो सूर्यमें विनका तेज मिल गया हो। उन तीनों कुमारोंके प्रस्थान करनेपर चारणोंकी वाणी व्याप्त पड़ी। रत्नाश्रव भी अपने बन्धु जनोंके साथ इस नये नगरमें रावणके भवनमें पहुँच गया। सुमालिके पुत्र रत्नाश्रवने अपने बेटे, रावणका सुन्दरमणि रत्नोंसे खचित और हजार विद्याओंसे शोभित देखकर सतोषकी सांस ली। पुलकित होकर, उसने आनन्द-स्नेहसे भरे अपने भुजपाशमें उसे भर लिया ॥ १-६ ॥

दसवीं सन्धि

नवीन नील कमलके समान नेत्र वाले रावणने छः उपवास किये और इस प्रकार उसने सुंदर कुलीन सुकलत्रकी तरह चन्द्रहास खड्ग सिद्ध किया ॥ १ ॥

[१] रावणमें दस हजार विद्याओंका निवास पहलेसे ही था, और अब दुस्सह चन्द्रहास खड्ग साधकर वह वन्दना भक्तिके लिए सुमेरु पर्वतपर गया। इतनेमें मय और मारीच उसके यहाँ आये। कुमारी मन्दोदरीको साथ लेकर ये दोनों रावणके भवनमें

प्रविष्ट हुए। वहाँ चन्द्रनखाको देखकर उन्होंने उससे पूछा—परमेश्वरी! रावण कहाँ गये हुए हैं।" यह सुनकर नेत्रोंको आनन्द देने वाली रत्नाश्रवकी पुत्री चन्द्रनखाने कहा, "अभी अभी चन्द्रहास सिद्ध करके वह सुमेरु पर्वतकी ओर गये हैं।" जब तक वह यहाँ आते हैं तब तक बैठिये। यह मानकर, वे लोग ठहर गये। सायकाल धरती काँपने लगी और सभी विद्याभाग चलायमान हो उठे॥ १-८॥

क्षणमें अंधेरा, क्षणमें प्रकाश और क्षणमें मेघवर्षा हो उठती थी। इस प्रकार विद्युत प्रकाश करता हुआ रावण मानो माहेन्द्री विद्याका प्रदर्शन कर रहा था॥ ६॥

[२] यह देखकर भयभीत मयने मंदोदरीको अभय देकर चन्द्रनखासे पूछा "यह कौनसा कुतूहल है महाप्रिये? जो रात्रिमें नये प्रेमकी तरह फैलता ही चला जा रहा है।" उसने भी उत्तर दिया "क्या तुम यह प्रताप नहीं जानते, यह कुमार रावण का प्रभाव है।" यह सुनते ही सब पुलकित हो उठे और एक दूसरेका मुँह देखने लगे। इतनेमें ही सैकड़ों अनुचरोंसे घिरा भवनके द्वारावासको देखता हुआ, रावण आ पहुँचा। उसके यह पूछनेपर कि यह कौन ठाट बाटसे ठहरा है, किसीने प्रणामपूर्वक उससे कहा, "कोई मय और मारीच नामके विद्याधर हैं? वे दोनों आपसे भेंट करने आये हुए हैं।" यह सुनकर वह जिनभवनमें पहुँचा। वहाँ उसने त्राणकर्ता जिनकी प्रदक्षिणा और वंदना की। इतनेमें सहसा मन्दोदरीने अपनी चञ्चल नीलोत्पलकी दृष्टिसे रावणको इस तरह देखा मानो किसीने दूरसे नीलकमल मालासे वक्षस्थलपर आघात पहुँचा दिया हो॥ १-६॥

[३] उसने भी अचानक उस बालाको इस प्रकार देखा मानो भ्रमरने अभिनव कुसुममाला देख ली हो। उसके पैरोंके बजते हुए नूपुर ऐसे मालूम होते थे मानो बन्दीजन मधुर शब्दों का पाठ कर रहे हैं। मेखला सहित नितम्ब ऐसे लगते थे मानो कामदेवका आस्थान-मार्ग हो। चढ़ती हुई रोमराजि ऐसी जान पड़ती थी मानो काली बालनागिन ही शोभित हो रही हो। उसका खिला हुआ मुखकमल दीख पड़ रहा था, निश्वास के आमोदसे भ्रमर उस पर आसक्त थे। सुगन्धका अनुभव करनेवाली सुन्दर नाक ऐसी दिखाई देती थी मानो नेत्रजलके लिए सेतुबन्ध ही हो, सिर के बालोंसे ढँका हुआ ललाट ऐसा जान पड़ता था मानो चन्द्रबिम्ब ही नये मेघोंमें डूब गया हो॥ १–८॥

जिस अंगपर रावणकी दृष्टि घूमती, वह वहीं ठहर जाती। दूसरी जगह जाती ही नहीं, ठीक वैसे ही जैसे रसलोलुप भ्रमर माला केतकीको नहीं छोड़ सकती॥ ९॥

[४] इस प्रकार रावणका मन लेकर मारीचने कहा—"विजयार्ध पर्वतकी विशाल दक्षिण श्रेणियोंमें देवसंगीत नामका नगर है। हम दोनों भाई मय और मारीच वहींसे विवाहके सिलसिलेमें यहाँ आये हैं। हे देव! इस योग्य नारीरत्नको ग्रहण कीजिए, उठकर इसका पाणिग्रहण कीजिए"॥ १–४॥

यही वह मुहूर्त नक्षत्र और दिन है जिसे त्रिलोकसार, कल्याणलक्ष्मी और मंगलके निवास, तथा शिवशांति, मनोरथ और सुखोंको प्रकाशित करनेवाले जिन भी जानते हैं। यह सुनकर रावण खूब सन्तुष्ट हुआ और उसने उसी समय, जयसूय धवलमंगल तथा समुज्ज्वल स्वर्णिम तोरणोंके बीच मन्दोदरीसे

विवाह कर लिया। उसके बाद आँखोंको सुख देनेवाले वरवधूने स्वयंप्रभ नगरमें प्रवेश किया मानो उत्तम राजहंस दम्पतिने ही विकसित कमलवनमें प्रवेश किया हो॥ १-९॥

[५] दृढ़ बाहुदण्डवाला महाप्रचण्ड रावण एक दिन अपनी विद्याका प्रदर्शन करता हुआ वहाँ गया जहाँ मनुष्योंके कोलाहलसे व्याप्त अञ्जरधर नामका विशाल पर्वत था। उसमें जगत्प्रसिद्ध गन्धर्ववापिका थी। कोई ६ हजार गन्धर्व-कुमारियाँ प्रतिदिन उसमें जलक्रीड़ा करने आती थीं। रावण भी अचानक वहाँ पहुँच गया। सहसा परमेश्वरी गन्धर्व-कुमारियोंने रावणको इस तरह देखा मानो समस्त महानदियोंने समुद्रको, या कुमुदिनियोंने चन्द्रमाको, या कमलिनियोंने दिवाकरको ही देखा हो। सबकी सब रत्नोंसे रचित और सब तरहके अलंकारोंसे भूषित थीं। वे कामदेवसे आहत हो उठीं और अपना कन्यात्वकुलम शील छोड़कर वे सबकी सब रावणसे बोलीं, "तुम्हें छोड़कर दूसरा हमारा पति नहीं हो सकता। हमने तुम्हारा वरण स्वयं किया है, हे नाथ पाणिग्रहण कर लो।" ॥ १-८॥

[६] इसी बीच, यह सब देखकर, व्याकुलचित्त रक्षक सैनिकोंने आकर सुन्दर गन्धर्व विद्याधरसे कहा कि "सब कुमारियाँ एक ही मनुष्यकी हो गई हैं, उसने भी चाहनेवाली उन अत्यन्त सुन्दरियोंका पाणिग्रहण कर लिया है।" यह सुनकर सुन्दर विद्याधर विरुद्ध हो उठा और वह क्रुद्ध कृतांतकी तरह दौड़ा। उसके साथ दूसरा देवसम कनकाधिप ? विद्याधर भी हो लिये। उस अगणित विद्याधर सेनाको देखकर, कुमारियोंने अपने प्रिय रावणसे कहा—"अब तुम्हें कुछ भी शरण नहीं है, हमारे कारण तुम्हारी मृत्यु निकट आ गई है।" यह सुनकर रावणने हँसकर

घत्ता

जीसोवमि विजएँ सो चवेँवि चडा विसहर-पासेहिँ ।
मिहु दूर-भमय भव-संचियएँ दुक्खिय-कम्म-सहासेंहिँ ॥८॥

[७]

णामेहेवि पुत्तेंवि करेँवि हासु । परिमेल्लिउ कम्मइँ ढ वि सहासु ॥१॥
गउ रावणु मिव पहसु पविट्ठु । स-किंकरु सयल-परियणेण दिट्ठु ॥२॥
बहु-कालें मन्दोयरिएँ जाय । इन्दइ-घणवाहण बे वि भाय ॥३॥
पुणु वि कुम्भपुरेँ कुम्भयण्णु । परिणाविउ सिय-संपय पवण्णु ॥४॥
रविणिद्दउ कहाडरि-णयणु । अगाहइ बहुसवणों तणउ देहु ॥५॥
गय पय कुमारेँ कोह हूउ । पेसिउ कम्माकट्टार-दूउ ॥६॥
दहवयणहुं पाहुडु भणिय । तेहि मि किय अब्भुत्थाणु कि पि ॥७॥
पभणिउ 'सुमालि-णाणु देवि कण्णु । पोत्तउ मिलारि हूउ कुम्भयण्णु ॥८॥

घत्ता

अमराइ-सम्पइ मि बहुसवणु दुक्करिँ समउ ण दुक्कइ ।
जम्मणु मि सयर-दुक्किण्णएँहिँ किमु तेम ण विहसम्मइ ॥९॥

[८]

पर जायं पेक्खामि विपरिकियण्णु । जे जाहिँ मिणारहेँ कुम्भयण्णु ॥१॥
पुणहेँ पासिउ दुम्मर विमाणु । पुणहेँ पासिउ अमागमणु रज्जु ॥२॥
पुणहेँ पासिउ पायाल-लङ्क । पइसेवउ उउ मि करेँवि सङ्क ॥३॥
माळि वि जमडन्तउ आसि एम । हुउ करेँवि पइँव पणहु जेम ॥४॥

कहा—"अरे पातक इन सियारोंसे क्या ?" उसने तब उरस्वप्न विद्याका ध्यान किया और नागपाशसे उस विद्याधर सेनाको वैसे ही बाँध लिया जैसे पूर्वजन्मके संचित हजारों पाप कर्म दूर भव्यको बाँध लेते हैं ॥ १–८ ॥

[७] पुन उनके द्वारा प्रार्थना करनेपर उसने उन्हें दास बनाकर छोड़ दिया और छह हजार कन्याओंसे विवाह कर लिया। अनन्तर रावण अपने नगर लौट गया। पुरजनवासियोंने इसे वैभवके साथ नगरमें प्रवेश करते हुए देखा। पुन बहुत काल बीत जानेपर मन्दोदरीके इन्द्रजीत और घनवाहन नामके दो पुत्र हुए। इधर कुम्भपुरमें कुम्भकर्णने भी श्रीसपहासे विवाह कर लिया। वह लङ्कानगरीके वैभवणवाले प्रदेशमें उत्पात मचाने लगा। प्रजा विसूरती हुई राजा वैभवणके पास पहुँची। उसने क्रुद्ध होकर रावण के पास वचनालंकार दूतको भेजा। दूत जाकर रावणके दरबारमें प्रविष्ट हुआ। उसने दूतका थोड़ा आदर सत्कार किया। दूतने तब कहा "प्रभु सुमालि, अपनी लड़की दो, और अपने पोते कुम्भकर्णको रोको। सैकड़ो अपराध होनेपर भी वैभवण तुम्हारे साथ युद्ध नहीं करना चाहता वैसे ही जैसे शबर पुलिन्दों द्वारा जलाये जाने पर भी विन्ध्याचल उनके विरुद्ध नहीं होता ॥ १–६ ॥

[८] पर इस बातको मैं आपत्तिजनक समझता हूँ यदि तुम कुम्भकर्णको नहीं रोकते। इससे तुम्हारा नाश होगा, इससे धनद का यहाँ आगमन होगा। इसके कारण आशंकासे तुम्हें फिर पाताल लङ्कामें प्रवेश करना पड़ेगा। इसी तरह मालि भी झगड़ा करता आया था, परन्तु वह उसी तरह मारा गया जिस तरह दीपकमें पड़कर शलभ मारा जाता है ॥ १–४ ॥

थान पड़ता है, उसका जो हाल हुआ वही तुम्हारा होगा। अच्छा तो यह हो कि उस कुछ कृतान्तको मुझे सौंप दो, या फिर वह, बेड़ियोंसे जकड़ा हुआ—घरमें ही रहे।" यह सुनकर निशाचर राज रोषसे भरकर बोला, "कौन धनद, और इन्द्र ?" फिर शत्रु पक्षका संहार करनेवाली अपनी भीषण चन्द्रहास तलवारकी ओर देखते हुए, उसने कहा, "पहले मैं तुम्हारा बलिविधान करता हूँ, फिर बादमें धनदका मानमर्दन करूँगा।" पर इतनेमें विभीषण सिर झुकाकर रावणसे बोला, 'इस दूतको मारनेसे शत्रुमंडलमें हमारी अपकीर्ति फैल जायगी। यह तुम्हें शोभा नहीं देता, क्या हिरनोंके झुंडसे लड़ते हुए सिंह लज्जित नहीं होता ? ॥ ५-११ ॥

[६] इसपर उसने दूतको निकाल दिया। सिंहके पंजेसे चूके हुए हिरनकी भाँति वह दूत किसी तरह बच गया। इधर रावण भी तमतमाता हुआ तैयार होकर यमकी भाँति निकल पड़ा। तब विभीषण भानुकर्ण रत्नाश्रव मय और मारीच भी निकल पड़े। और भी सहोदर माल्यवन्त इन्द्रजित, तथा शीघ्र होते हुए भी मेघवाहन भी निकल आया। तूर्य बजाकर जैसे ही इन लोगोंने प्रणाम किया वैसे ही दूतने जाकर धनदसे कहा, "सुमालिको इतना घमण्ड कि एक तो उसने बैर किया और दूसरे उसने कूच कर दिया है।" यह सुनकर, धनदने भी पूरी तैयारीके साथ, इन्द्रकी ही भाँति कूच किया। जाकर जबतक गुंज पर्वतपर पहुँचकर उसने अपना मार्चा जमाया तबतक राक्षस सेना भी वहाँ पहुँच गई। रणवाद्य बजते ही कोलाहल होने लगा। अमर और दर्प से भरी हुई दोनों ओरकी सेनाएँ आपसमें टकरा गई ॥ १-९ ॥

[७] कोई सुन्दर वीर गजघटाका आलिंगन वैसे ही कर रहा था जैसे कोई कामुक वेश्याका आलिंगन कर रहा हो। तब

उसने (गजघटाने) उसकी छातीमें धक्का दिया मानो वह विपरीत रतिमें मन दे रही थी। किसीने तलवार चलाकर हाथीका सिर धरती पर गिरा दिया। किसीने उर बाणोंसे भर दिया, वह रोमाञ्चकी तरह जान पड़ रहा था। युद्धमें किसीने किसीके ऊपर चाक छोड़ा। वह, चुगलखोरके शब्दोंकी तरह हृदयमें जाकर लग गया। इतनेमें खेद करते हुए धनदने रावणको ललकारा "तुम जो युद्ध कर रहे हो, उससे यही जान पड़ता है कि सिंहकी दाढ़ोंसे भी अधिक विकराल काल, तुम्हारे अत्यन्त समीप आ गया है।" यह सुनकर क्रुद्ध रावण, वैश्रवणसे भिड़ गया। हाथ उठाकर वह गरज उठा, मानो एक महागज दूसरेको उभाड़ रहा हो ॥ १-६ ॥

[११] मेघलीलाका प्रदर्शनकर और तीरोंका मंडप तानकर रावणने सूर्यका प्रकाश ढक दिया। उससे दिनरातका सन्देह होने लगा। रथ, अश्व गज, ध्वज, प्रतीक, छत्र, आस्थान विमान तथा राजाओंके शरीरमें लगे हुए तीर ऐसे लग रहे थे मानो किसी धनिकके पीछे चापलूस लगे हों। तब धनदने भी बाणों की वर्षासे बाणोंको वैसे ही रोक दिया जैसे महामुनि आती हुई कषायोंको रोक देते हैं। धनदने छत्र दंड गिराकर रावणके रथके सौ टुकड़े कर दिये। तब वह दूसरे रथपर चढ़कर दौड़ा और उसने ऐसा आघात किया मानो किसी पर्वतपर वज्र ही गिरा हो। उसके भिन्दपाल शस्त्रसे आहत होकर धनद ऐसे धराशायी हो गया, मानो दिनमें सूर्य ही मुरझाकर धरती पर खिसक आया हो ॥ १-८ ॥

तब वैश्रवणको उसके सामन्त उठाकर ले गये। रावणने विजय की घोषणा कर दी। इतनेमें कुम्भकर्ण आवेशमें आकर गरज उठा—"अरे पापिष्ठ तू मेरे जीवित रहते हुए कहाँ जायगा?" ॥६॥

[१७] इसके समान नीच शत्रु दूसरा नहीं, मष्ट होते हुए भी इसे मारो, जिससे हमारा सैकड़ों वर्षोका वैर निर्यातन हो जाय"। यह कहकर, त्रिशूल हाथमें लिये हुए ज्यों ही कुम्भकर्ण दौड़ा त्योंही विभीषणने छिपटकर उसे रोक लिया। उसने कहा, "कायर जन को मारनेसे क्या काम, जो आक्रमण कर रहा हो उसे मारना चाहिए। क्या निर्विष साँप भी जिन्दा न रहे। वह तो स्वयं अपने प्राण लेकर नष्ट हो रहा है।" यह सुनकर, कुम्भकर्ण मत्सर छोड़कर रुक गया। इतनेमें, सुकलत्रका तरह सुन्दर, वैभवजनका विशाल दिखाई दिया। रावण निर्शंक होकर उसपर चढ़ गया और प्रसाद पूर्वक स्वजनोंको लङ्कामें पहुँचा दिया। तथा जो-जो दुष्ट थे काठवन्धके समान होकर स्वयं उनकी खोज करने लगा॥ १-८॥

इस प्रकार अपने स्वजन बान्धवोंसे वेष्ठित होकर और उद्दण्ड पुरुषोंका दमन करते हुए वह दानवपति देशका स्वय भोग करता हुआ लीलापूर्वक इन्द्रके समान घूमने लगा॥ ९॥

•

ग्यारहवीं सन्धि

एक समय पुष्पक विमानसे आते हुए रावणने निर्मल मेघ समूहके समान मिमल और विशाल (हरिषेण द्वारा निर्मित) जिन मन्दिर देखे॥ १॥

[१] तोयदवाहन वंशके कुलभूषण रावणने सुमालि से पूछा—"चन्द्रकी तरह धवल ये क्या हैं? क्या ये जमसे निकले

हुए सफेद कमल हैं, या हिमके शिखर नष्ट होकर बिखरे हैं, या तारा समूह अपने स्थानसे छूट पड़ा है, या किसी बालकके ऊपर लम्बे दण्डपर स्थित धवल छत्र रखे हैं, या जलरहित भूमिगत सुन्दर मेघ हैं, या मानो शृङ्गार किये हुए हजारों कलहंस बसा दिये गये हैं, या कोई अपने सम्पूर्ण यशको खण्ड खण्ड करके यहाँ बिखरा गया है, या सुन्दरसुक्तियोंसे पराजित कान्तिवाला सैकड़ों चन्द्र यहाँ आकर मिल रहे हैं? प्रत्युत्तरमें तब सुमालिन कहा—"पूर्वसे पूर्व और जननेत्रोंको आनन्द देनेवाले ये विशाल भवन हरिषेणके हैं" ॥ १–६ ॥

[२] कहा जाता है कि उसे अष्टाह्निका के दिनोंमें भी निधियां और चौदह रत्नोंसे समृद्ध धरती सिद्ध हुई थी। पहले दिन, अपनी मांको महारथ यात्राके लिए व्याकुल देखकर वहाँ गया। दूसरे दिन तापस वनमें जाकर मदनावलीकी काम-पीड़ा शान्त की। तीसरे दिन सुप्रसिद्ध सिन्धु नगरमें पहुँचकर राजा हस्तिको पराजितकर उसकी कन्या ग्रहण की। चौथे दिन वेगवती का हरण कर जयचन्द्रसे उसका सम्बन्ध करा दिया। पांचवें दिन गङ्गाधर महीधरसे तुमुल युद्ध हुआ। वहां उसे चक्ररत्नकी प्राप्ति हुई। छठे दिन उसने अपनी भूमिका प्रसार किया। यहाँ उसे एक और मदनावली मिली। तब सातवें दिन आकर उसने अपनी माँका अभिनन्दन किया। और आठवें दिन विशाल जिन-पूजा निकाली। ये जिन-मन्दिर उसी हरिषेण राजाके बनवाये हैं। चन्द्र शरद सूर्य और कुन्दके समान धवल ये जिन-भवन धरतीके आभूषण-समान हैं या शाश्वत शिव-सुखोंकी तरह अविचल हैं ॥ १–६ ॥

[३] इस प्रकार हरिषेणकी कहानी सुनते हुए रावणने सम्मेद शिखरके लिए प्रस्थान किया। इसी बीच राक्षस-सेनाको समान-

भारी एक भीषण ध्वनि सुनाई दी। तब (उसका पता लगानेके लिए) रावणने हस्त-प्रहस्तको भेजा। वे दोनों दौड़कर लौट आये। आकर उन्होंने कहा, "देवदेव! जिसने यह ध्वनि की है वह एक मत्त ऐरावत हाथी है। जो गर्जन करनेमें महासमुद्र, जलकण बरसानेमें प्रलय मेघ धूल फैलानेमें नूतन पावसकाल, मदकी फुहार छोड़नेमें विशाल पर्वत, वृक्षोंको जड़से उन्मूल करनेमें प्रचण्ड पवन वेग, और सुभटोंका संहार करनेमें यम दाँतोंसे विपदय सपराय, और मदकी विविध अवस्थाओंमें कामदेव है। इन्द्र भी उस महागजके स्कन्धपर चढ़नेमें समर्थ नहीं हो सका। उसके आस पास घूमकर इन्द्र उसी प्रकार लौट गया जिस प्रकार भयहीन व्यक्ति, वेश्याके इधर-उधर चक्कर काटकर चला आता है ॥१-६॥

[४] यह साधारण देशके दशाण जङ्गलमें चैत्रमासमें उत्पन्न हुआ था। सर्वाङ्ग सुन्दर गिरिधारी और मनोहर इस हाथीका नाम भद्रहस्ति है। सात हाथ ऊँचा, नौ हाथ लम्बा दश हाथ चौड़ा और तीन हाथ विस्तृत सूँड़ है। उसके दाँत चिकने आँखें मधु की तरह पीली तथा हाथ और मुख अलसीके फूलकी तरह लाल हैं, पंच महलक्षणोंसे (मस्तक, तालु, हृदय इत्यादि) युक्त और मदान्मत्त है। वह चक्र, कुम्भ ध्वज और छत्रकी रेखाओंसे युक्त है। उसका शरीर पुलकित गंडस्थल झरता हुआ, उन्नत कंधे, पिछला भाग सूअरकी तरह बीस नख और सुगन्धित मदजल वाला है। चापवती स्थिर मांस उसका शरीर, दांत सूँड़ और पूँछ लम्बी है ॥ १-८ ॥

हस्ति-लक्षणमें जो और अनेक लक्षण कहे गये हैं उन सबका गिननेसे क्या लाभ, चार कम चौदह सौ सभी लक्षण उसमें हैं ॥६॥

[५] यह सुनकर रावण बहुत प्रसन्न हुआ। मनमें न समा सकनेसे उसका हर्ष मानो रोमांचके रूपमें फूट पड़ा। "यदि मैं उस मत्त हस्तिको वशमें न कर सका, तो अपने ही पितापर तलवार चलाऊँ।" यह कहकर, वह शीघ्र सेनासहित दौड़ गया और उस प्रदेशमें जा पहुँचा। आँखें फाड़-फाड़कर, उस हाथीको देख, रावणने अपने प्रहस्त सेनापतिसे मजाक करते हुए कहा—"मैं इसकी प्रचण्ड आकृतिको केवल, विलासिनीके रूपकी तरह मानता हूँ। हाथीका कुम्भस्थल, केवल विलासिनीका स्तन-मण्डल है, उसके मदजलके शुभ सौर केवल विलासिनियोंके लाटक हैं, उस पर मड़राते हुये भ्रमर विलासिनियोंके पक्ष्मल करा हैं॥ १-८॥

मैं जानता हूँ कि हाथीके कन्धेपर चढ़ना बहुत भयातुर होता है, फिर भी हे प्रहस्त, मेरे मनमें आने क्यों नवीन सुरतिका अनुभव जैसा हो रहा है॥ ९॥

[६] पुष्पक विमान पर बैठा हुआ वह अपने बालोंका निबन्धन मजबूत करने लगा। सूचका शब्द होते ही, मदमाता वह गज धनद और पुरन्दरके शत्रु रावणके सम्मुख ऐसा दौड़ा माना विन्ध्याचलके सम्मुख मेघसमूह दौड़ा हो। अंकुशकी चोटसे सूँड पर आहत होकर वह महागज दुर्वातसे आहत कालमेघकी तरह चक्कर पड़ा। जब तक वह बिजलीकी तरह चमचमाती सूँडसे रावणकी छातीपर चोट करता तब तक वह उसके पिछले भागपर चढ़ गया। उसने उसकी सूँडरूपी डालपर चाट की। फिर मुट्ठाुद कहकर उसके कन्धेपर आघात किया। और फिर मूँडका भाग्ति ब्रजकर गर्दमिया दी। वह उस साँप कर वैसा ही निकल गया जैसे कि पति अपनी पत्नी को। एक क्षणमें वह उसके गण्डस्थलपर जा बैठता तो दूसरे क्षणमें कन्धेपर, और फिर एक क्षणमें उसके

चारों पैरके बीचमें आ जाता। इसप्रकार उस गजके चारों ओर दिखता छिपता चमकता और घूमता हुआ वह ऐसा जान पड़ रहा था मानो आकाशमें नूतन मेघोंके आसपास विद्युत्समूह हो ।१६।

[७] हाथीको वशमें करनेकी ग्यारह तथा अन्य चालीस क्रियाओंका प्रदर्शनकर, उसने उस महागजको निश्चेष्ट बना दिया। मानो किसी धूर्तने वेश्याका घमण्ड चूर-चूर कर दिया हो, या परम जिनेन्द्रने मानो मोक्ष साध लिया हो। तब वह हाथी 'होऊ हाऊ' चिल्लाया। और भी उसने 'मऊ-मऊ' कहकर अपना पैर अर्पित किया। रावणने उसे बायें पैरके अँगूठेसे दबा दिया और कान पकड़कर वह उस महागजपर बैठ गया। प्रहारणके लिए उसने हाथमें अंकुश ले लिया। यह देखकर विमान तथा यानोंपरसे देवों ने पुष्प-वर्षा की। विभीषण कुम्भकर्ण दोनों नाच उठे। हस्त, प्रहस्त मय शुक सारण मन्त्री माल्यवंत मारीच महोदर, रत्ना-श्रव सुमालि तथा वज्रोदर भी आनंदमें नाचे। वीररसको मनसे चाहनेवाला हर्षसे भरा एक भी व्यक्ति वहाँ ऐसा नहीं था जो रावणके इस अभिनयको देखकर नाच न उठा हो ॥१-६॥

[८] उसने उसका नाम त्रिजगभूषण' रखा और वह उसे अपने शिविरमें ले गया। इतनेमें सहसा वहाँ गजकपाका अनु-रागी एक भट आया। प्रहारसे विधुर उसकी देह रक्त रञ्जित हो रही थी। प्रणाम करके उसने निवेदन किया "देव देव किष्किन्धके पुत्रने यमपर आक्रमण किया है। सव्वल, परिघि शूल हल बाण बसिमा तलवार मस्सु, भुसुंडि नाराच चक्र, भाला, गदा और मुद्गरोंके आघातसे जब-जब वह उससे भिड़ा तो उसने भी उसे भग्न कर दिया। जब वह एक दूसरेका पकड़ न सके तो यमने उसे तीरोंसे नष्ट कर दिया, किसीप्रकार केवल उसके प्राण नहीं

निकले। यह सुनते ही रावणने रणभेरी बजवा दी। चन्द्रहास अपने हाथमें लेकर, उसने विमान और सेनाके साथ कूच किया। (ससैन्य) वह ऐसा लग रहा था मानो समुद्र ही धरती लाँघकर आकाशमें उछल पड़ा हो ॥१-६॥

[९] कोपाग्निसे प्रदीप्त उसने यमनगरमें प्रवेश करते ही वहाँ भयङ्कर सात समुद्र देखे। वहाँ बार-बार महाशब्द हो रहा था। वैतरणी नदी बह रही थी। वह नदी रस मज्जा और रक्तरूपी जलसे लबालब भरी थी। उसने गर्तोंमें ठेले गये योद्धाओंके टूटे-फूटे सिर देखे। शाल्मलि वृक्षके पत्र सिरपर रखे हुए मनुष्यके जोड़े क्रन्दन कर रहे हैं। छटपटाते हुए कलपते और लोटते हुए कितने जीव देखे। कुम्भीपाक नरकमें पड़े हुए अगणित जन विविध दुःख पा रहे थे। रावणने उन सबको अभय दान देकर उन्हें मुक्त कर दिया। यमके अनुचरोंको उसने धक्का मारकर भगा दिया। तब अनुचरोंने जाकर यमको खबर दी—"हे देव, वैतरणी नष्ट हो गई है और सातों नरक भी। असिपत्र-वन भी ध्वस्त प्राय है, कितने ही बन्दी मुक्त कर दिये गये हैं ॥१-६॥

[१०] हे देव यह शत्रु मदोन्मत्त गजसमूहके समान है। यह सुनकर यमराज क्रोध से उबल पड़ा। उसने कहा—"यह कौन है जो जीवित ही मरना चाहता है। कृतांत-मित्र शनि किसपर रुठ गया है। किसका समय निकट आ गया है, जिसने बंदी मनुष्योंके समूहको मुक्त किया है ? असिपत्र वनका जिसने संहार किया है, सातों नरकोंका जिसने ध्वंस किया है, बहती हुई वैतरणी जिसने ध्वस्त की है, उसे मैं आज अपना यमपथ अवश्य दिखाऊँगा।" यह कहकर वह सेना सहित निकल पड़ा। महिषपर आरूढ़ दण्ड हाथ में लिये, आरक्तनेत्र वह कृष्णशरीर हो रहा था। उसकी

भीषणताका कितना वर्णन किया जाय। बताओ, फिर मृत्युकी उपमा किससे दी जा सकती है ॥१-८॥

यम यमशासन यमकरण, यमपुर और यमदण्ड कहलाने लगे। इनमेंसे एक ही त्रिभुवनका प्रलय करनेमें समर्थ है, फिर युद्धमें इन पाँचोंको कौन झेल सकता है ॥९॥

[११] जब भयभीषण यमकरण दिखाई दिया तो उसे सहन न करता हुआ विभीषण दौड़ा। तब उसे हटाते हुए, रावणने स्वयं कृतान्तको ललकारा—"अरे-अरे मानव दौड़ आओ, क्यों अपना विनाश करते हो। बार बार जो तुमने यमका नाम प्रकट किया। हे पाप निष्करुण, तेरा, इन्द्र शशि, अग्नि धनद और वरुण, इन सबका मैं कृत कृतान्त हूँ। ठहर ठहर, पापात्मा कहाँ जाता है।" यह सुनकर यमने शत्रु-संहारक और भयंकर अपना दण्ड उसे मारा। वह धकधकाता हुआ आकाशमें दौड़ा। आते हुए उसको रावणने क्षुरपेसे काट दिया और उसके सौ-सौ टुकड़े करके ऐसे गिरा दिया, मानो यमका मान ही नष्ट करके गिरा दिया हो ॥१-८॥

तब यमने शीघ्र ही धनुष लेकर, धमकीले सर्पोंका जाल छोड़ा। उसका भी रावणने वैसे ही निवारण कर दिया जैसे दामाद दुष्ट ससुरालका त्याग कर देता है ॥९॥

[१२] धनदको हटानेवाले रत्नाश्रवके पुत्र रावणका सैन्य-भेदन करते समय दृष्टि और मुट्ठीका संधान नहीं जान पड़ता था। केवल तीरोंकी पाँत छोड़ रही थी। यानसे यान, घोड़ेसे घोड़े, गजसे गज छत्रसे छत्र ध्वजासे ध्वजा, रथसे रथ, भटसे भट, मुकुटसे मुकुट, करसे करतल चरणसे चरण सिरसे सिरतल, धरसे धर टकराने लगे। बाणोंकी मारसे सेना छिन्न

हो उठी। हथियारों और रथके बिना यम भी नष्टप्राय हो गया। हरिणकी तरह वेगसे उछलकर, पल भरमें यम दक्षिण श्रेणीमें जा पहुँचा। वहाँ उसने रथनूपुरके स्वामी इन्द्र और सहस्रार से कहा "सुरपति! लो अपना यह प्रभुत्व, यमका पद किसी और को सौंप दीजिए। माल्लि-सुमालिके पौत्र रावणने केवल मुझे मृत्युके दरान नहीं कराये, हे सुरराज! आपकी आज्ञासे धनदने तपश्चरण ले लिया है ॥१-६॥

[१३] यमके इन अशोभन शब्दोंको सुनकर इन्द्रने सन्नद्ध होकर कूच किया। तब उसका मंत्री बृहस्पति आगे आकर बोला, "जो प्रभु होता है उसे सब बातका विचार करना चाहिए। तुम अज्ञानीकी तरह दौड़े जा रहे हो। वह लंकाका अभ्यागत राजा है। माल्लिके मरनेपर तुमने भी परकुलपुत्री की तरह लंका नगरी का जीभर उपभोग किया। पहले तुम्हें उसपर प्रहार करना चाहिए। पर इस प्रकार हड़बड़ीमें जाना ठीक नहीं। इसलिए आप शीघ्र-तेज यमगणको सुरसंगीत नगर कुछ समयके लिए दे दें जिसका कि यम और मारीचने उपभोग किया है।" यह कहकर उसने उसे रोक दिया। तब रावणने भी सुग्रीवको यमपुरी और सूर्यरज को किष्किंधा नगरी देकर लंका नगरीके लिए प्रस्थान किया। उसका सुन्दर विमान आकाशमें ऐसा जा लगा मानो दोपहर बादलका वश ही लम्बी कालपरम्परासे बँध गया हो ॥१-६॥

[१४] जीपण समुद्रके ऊपर से जाते हुए, दशानन पुष्पकविमानकी कान्तिसे भ्रांत रावणने सुमालिसे पूछा, और उसने उत्तर दिया— क्या यह समतल है? नहीं नहीं यह रत्नाकर है। क्या यह तम है, या तमालपत्रोंकी पंक्ति है? नहीं नहीं, यह इन्द्रनीलमणियोंकी कांति है। क्या यह लोटेकी कवार है? नहीं नहीं, पवन-प्रेरित

मरकत मणि हैं। क्या ये महीतल पर सूरज की किरणें पड़ रही हैं? नहीं नहीं, ये सूर्यकान्त मणिरत्न हैं। क्या यह अत्यन्त आर्द्र गजघटा है, नहीं नहीं ये जलनिधिकी तरंगें हैं। क्या ये महीधर हिल-डुल रहे हैं? नहीं नहीं पानीमें जल-जन्तु घूम रहे हैं। इस प्रकार बातें करते करते वे लंकापुरी पहुँच गये। जो लंका त्रिकूट शिखर पर बसी हुई थी। ब्राह्मणों, भाट और तूर्य का शब्द सुनकर सभी प्रसन्नतापूर्वक बाहर आ गये। रावणने तब "सुख रहो बढ़ो जय हो" आदि शब्दोंके बीच नगरमें प्रवेश किया। इसके अनन्तर राज्यपट्ट बाँधकर उसका अभिषेक हुआ। अब वह, स्वर्गमें इन्द्रकी तरह, अपने राज्यका भोग करने लगा ॥१-११॥

•

पारहवीं सधि

एक दिन अपने दरबारमें बैठे-बैठे विशालनयन रावणने पूछा—"बताओ मनुष्य और विद्याधरोंमें अब कौन मेरा शत्रु है" ॥१॥

[१] यह सुनकर किसीने दोनों हाथ माथेसे लगाकर कहा—"हे परमेश्वर! चन्द्रोदर नामका एक बहुत ही दुष्ट शत्रु है, वह अत्यन्त दुर्जेय है। वह इन्द्रकी आज्ञा मानता है और पाताल लंकामें रहता है।" इसपर दूसरे व्यक्तिने उसे झिड़कते हुए कहा—"इन्द्र और चन्द्रोदर क्या चीज हैं, दशरथ के पुत्र नल और नील, बहुत ही प्रबल सुने जाते हैं।" किसी एक ने कहा—"यदि पास में बैठे लोग मुझ पर आघात न करें, तो मैं कहना चाहता हूँ कि किष्किन्धापुर-नरेश सूधरज के पुत्र बालिमें मैंने जैसा वेग देखा, वैसा तीनों लोकोंमें किसी भी व्यक्तिमें नहीं देखा। उसके बाहु हाथीके

सूँड़के समान प्रचण्ड हैं। वह अपने अरुण रथको छोड़कर, घोड़ोंको थाकितकर औरोंके पढ़क मपनेक पहले ही, मेरुकी प्रदक्षिणा और जिनकी वदना कर अपने घर शीघ्र आता है ॥१-६॥

[२] उसमें जितनी शक्ति है उतनी पुरन्दर, कुबेर, वरुण और नराधरमें से भी किसीमें नहीं है। समरमें आकर वह, सुमेर पर्वत को भी टाल सकता है दूसरे नराधिप उसके आगे तिनकेके बराबर हैं। विशुद्धमति उसने किसी समय, कैलाश पर्वतपर आकर, यह व्रत ले लिया है कि जिनका छोड़कर किसी और को नमन नहीं करूँगा। उसका पिता सूर्यरव इस आशंकासे कि मेरा किसी भी पावतर रावणसे युद्ध न हो जाय, दीक्षा लेकर तप करने चला गया।" तब किसी एकने कहा—"यह बात ठीक नहीं, भैया, बानरवंश हमसे लड़ेगा? श्रीकण्ठके समयसे सदा अन्य और उपकारों के कारण उनमें (वानरोंसे) हमारी मित्रता है अथवा, चाहे वे भयंकर हों या सुमेरु? रक्तकमलकी तरह नेत्रवाले रावण की समरभूमिमें कोई भी योद्धा सम्मुख नहीं आयेगा" ॥१-६॥

[३] इतने में बालिकी शल्य मनमें रखकर रावणने बातका प्रसंग बदल दिया। एक दिन वह तनूदरा नामकी सुरबालाका अपहरण करनेके लिए गया। उसकी अनुपस्थितिमें कुम्भभूषण खर और दूषण रावणकी बहन चन्द्रनखाको हरकर ले गये। अपने भाई सूर्यरवका मरण देखकर राक्षसशरणसे पाताल-लंकाका उद्धार चन्द्रोदयन किया था। इन्होंने चन्द्रोदरको भी मार गिराया जो जिस स्थान पर था उसे वहीं गिरा दिया। जो भी उसके पास पहुँचा वहीं मारा गया। रथ, अश्व, गज और नर-बीरोंसे प्रबल राक्षससेना उसका पीछा कर रही थी परन्तु हार न मिलनेसे वह प्रबरा नहीं कर सकी और अपने नगर वापस आ गई ॥१-८॥

अपनी नई पत्नीको लेकर, सन्तुष्ट मन जब रावण लौटकर आया तो उसे अपना घर एकदम उदास और असोभन दीख पड़ा ॥६॥

[४] इतनेमें ही किसीने आकर उसे बताया कि खर और दूषण चन्द्रनखाका हर ले गये हैं। यह सुनते ही उसकी आँखें लाल हो गईं और तुरन्त वह उनका पीछा करने चल पड़ा। किन्तु उसकी पत्नी मन्दोदरीने उसे इस तरह रोक दिया मानो यमुनाने गंगाके प्रवाहको रोक दिया हो। "परमेश्वर! सोचो कैसी अपनी बहन वैसी ही पराई कन्या नहीं होती? फिर आप अकेले हैं, और वे खड्गधारी चौदह हजार भयंकर विद्याधर हैं। यदि वे आपकी आज्ञा मान भी लें तो भी लड़कीको घरमें रखनेसे क्या काम! इसलिए युद्धसे विरत हो मंत्रियोंको भेजकर उसका विवाह कर दें।" यह सुनकर उसने यम और मारीचको वहाँ भेजा। वे तुरन्त चल पड़े। खरने चन्द्रनखासे विवाह कर लिया। खर राज्य गद्दी पर बैठा। अनुराधा व्रतका अनुष्ठान करती हुई वनमें रहने लगी। वहीं उसके विराधित नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१-६

[५] इसके बाद भी यमका संताप पहुँचाने वाले रावणके मनमें बालिका खटका बना था। उसने महामति दूतको सुग्रीवके भाई बालिके पास भेजा। वह सम्मुख जाकर बालिसे बोला— "मुझे यह कहनेके लिए रावणने भेजा है कि हम लोग राजोंका १६ पीढ़ियोंसे निरन्तर मित्रताके सूत्रमें बँधे चले आ रहे हैं। बहुत पहले कोई कार्तिधवल नामका राजा हुआ है जो श्रीकण्ठके लिए अपना सिर तक देनेके तत्पर हो गया था। नववीं पीढ़ीमें राजा अमरप्रभु हुआ उसने पताकाओंपर वानरसमूहके चिह्न अंकित कराये। दसवां राजा श्रीसंपन्न कपिकेतन हुआ। ग्यारहवाँ

राजा प्रविचल हुआ। बारहवाँ नयनानन्दकर, तेरहवाँ खेचरानंद चौदहवाँ गिरिकिंकिरवल, पन्द्रहवाँ अजयनदन और सोलहवाँ उग्र किरण, जो दक्षिणश्रेणीके वियागमें तप करने चला गया था। सत्रहवाँ राजा किष्किंध हुआ। बताओ उसके पुत्र सुकेशाने कौन सी भलाई नहीं की। अठारहवाँ राजा सूर्यरज हुआ उसने यमको मन्नकर वहाँ प्रवेश किया। अब इस समय उन्नीसवें तुम हो, इसलिए अहंकार छोड़कर अपने राज्यका भोग करो। आओ चलकर रावणसे भेंट करो (उसका मुख देखो) और उसे प्रणाम करो जिससे अपने प्रबल चतुरंगबलको लेकर वह इन्द्रपर अभियान कर सके ॥१–१४॥

[६] दूतने नमस्कारके साथ जो रावणका नाम लिया उससे बालि केवल पराङ्मुख होकर रह गया। उसने उसके शब्दोंपर वैसे ही ध्यान नहीं दिया जैसे कुलवधू परपुरुषके शब्दों पर ध्यान नहीं देती। इसी बीचमें, रावणका दूत अत्यन्त विद्रूप हो उठा। शिष्टताको ताकमें रखकर वह बोला, "जिस किसीको उसकी भी माननी होगी, तुम इस नगरसे निकल जाओ नहीं तो सबेरे रावणसे लड़ो।" यह सुनकर बालिका मंत्री सिंहविलम्बित क्रुद्ध हो उठा। उसने दूतको डाटते हुए कहा—"अरे क्या तुमने उस बालिदेवका नाम नहीं सुना, जिसने मधु और महोदरको बरतोंमें मिला दिया। जो आधे ही पलमें धरतीको कपा सकता है और चारों समुद्रोंका घुमा सकता है। युद्धमें जिसके महास्त्रासे तीनों लोक चलचलित हो गये, उस विलक्षण बालिके आगे रावण क्या चीज है" ॥१–६॥

[७] तब दूत, इन कटुवचनोंसे आहत होकर अमर्षसे भरा रावणके पास गया। वह बोला, "बहुत कहनेसे क्या, हे देव, बालिके मंत्रीने यह कहा है कि वह तुम्हें तिनकेके बराबर

तं वयणु सुणेप्पिणु दससिरेंण । वुच्चइ रयणासव एव सिरेंण ॥३॥
'जइ रण-मुहेँ माणु न भञ्जमि तहों । तो ढुक्कु पाय सुक्कसुहडहों ॥४॥
आरुसेंवि पइसइ पमइ पहु । जं कहों वि विरुअउ कूर-गहु ॥५॥
थिउ पुप्फविमाणें मणोहरएँ । जं सिद्ध सिवायएँ सुन्दरएँ ॥६॥
करें णिम्मलु चन्दहासु धरिउ । जं जम-जीहग्गु वलि विप्फुरिउ ॥७॥
णीसरिएँ पुर-परमेसरेण । णीसरिय वीर णिसिसम्भरेण ॥८॥

घत्ता

'जमहुँ पक्ख-मलेंण गिरु भिण्णु रेण म मरउ धरणि धराइय' ।
पुच्छिय-कारणेंण गयणग्गेंण वोल्लइ सुहड पराइय ॥७॥

[८]

पणरें वि समर-सुओहणिहिँ । चउदहहिँ णरिन्द-अखोहणिहिँ ॥१॥
सण्णोहेंवि वालि णीसरिउ किह । मज्झण्ह-दिवायरु तवइ जिह ॥२॥
पणवेप्पिणु जिणु वि चउक्क-बलु । थिउ अहिमाण-खम्भेंहिँ धीर-मणु ॥३॥
विरइउ वारावणु रणेँ अचलु । पडिकूलें णिविडु पायाल-वलु ॥४॥
पुणु पच्छएँ हिलिहिलिन्त स-मय । खर-खुरेंहिँ खणन्त खोणि तुरय ॥५॥
पुणु सारङ्ग-सिहर-सण्णिह सयड । पुणु मय-विहलङ्घल हत्थि-हड ॥६॥
पुणु णरवइ वर-करवाल-कर । आसण्ण सुहड तो रणभिवर ॥७॥
थिर समरें भिडन्ति भिडन्ति जइ । थिय अन्तरें मन्ति सु विउल-मइ ॥८॥

घत्ता

'वालि-पसाहणहों सु-मल-मयहों एउ काईँ ण गवेसहों ।
जिमेँ सए अप्पणउ पुणु केण सहुँ पच्चएँ रज्जु करेसहों ॥८॥

भी नहीं समझता।' ये शब्द सुनकर रावणने समुद्रकी तरह गरजते हुए कहा, "मैं रणके सम्मुख अवश्य ही उसके मानका दमन न करूँ, तो अपने पिता रत्नाश्रवके पैर छूने से रहा।" प्रतिज्ञा करके वह चल पड़ा। (वह ऐसा लगता) मानो कोई दुष्ट ग्रह ही कुपित हो उठा हो। सुन्दर पुष्पक विमानमें वह वैसे ही जा बैठा जैसे सुंदर शिखालयमें सिद्ध जा बैठे हों? उसके हाथमें चन्द्रहास तलवार ऐसी चमक रही थी मानो मेघरहित बिजली ही हो। नगर-परमेश्वर रावणके निकलते ही पलभरमें सभी योधा निकल पड़े॥ १–८॥

वे सब योधा आकाश मार्गसे गये, शायद इस विचारसे कि कहीं हमारे पदभारसे धरती ध्वस्त न हो जाय॥ ९॥

[८] यहाँ भी समर में दुर्जेय बालि, चौदह नरेन्द्र और अक्षौहिणी सेनाओंके साथ संनद्ध होकर मर्यादाहीन समुद्रकी भाँति निकल पड़ा। अतुलबली, नल और नील भी प्रणाम करके अभिन्न सेनामें आ मिले। बालिने अटल युद्ध रचना की। पहले पैदल सेना रक्खी उसके पीछे सघन हींसते हुए और खुरोंसे धरती खोदते हुए अश्व थे। उसके बाद शैल-शिखरकी तरह विशाल रथ और तब मदविह्वल गज-सेना थी। फिर, हाथमें तलवार लेकर राजा निशाचर रावणके पास पहुँचा। युद्धमें वे दोनों भिड़ने ही वाले थे कि विपुलमति नामक मंत्रीने बीचमें पड़कर कहा, "युद्धातुर आप दोनों (बालि और रावण) को यह सोचना चाहिए कि स्वजनोंके क्षय हो जानेपर राज्य किस पर होगा॥ १–९॥

[६] प्रेमके जिस महावृक्षको कीर्तिधवल और श्रीकण्ठने आरोपित किया, जिसे किष्किन्ध और सुकेशाने आगे बढ़ाया, उसे नष्ट न करो। यदि आपन आमेशके भारको शान्त करनेमें आप असमर्थ हैं तो आपसमें द्वन्द्व-युद्ध कर लें। वानोंमें जो जीत जाय, उसकी जय हो।" यह सुनकर वालि बोला, "लंकानरेश, यह सुन्दर कह रहे हैं। युद्धमें चाहे तुम्हारा विनाश हो या मेरा उसमें जैसे श्रुवा (वालिकी पत्नी) विधवा होगी वैसे ही मन्दोदरी। अब बहुतसे सैनिकोंके संहार और अपने ही बन्धुओंकी हत्यासे क्या। जो प्रहार करो यदि बल हो तो मैं भी देखूँ कि तुम्हारा कितना बल है।" यह सुनते ही सैकड़ों युद्धोंमें अविचल रावणने उसपर आक्रमण कर दिया। उसने सर्पिणी विद्या छोड़ी। वह साँपोंके फनोंसे फुफकारती हुई आई, तब वालिने उस विद्याकी नाशक, और अत्यन्त भयानक गरुड़-विद्याका प्रयोग किया। उससे वह वैसे ही पराजित हो गई जैसे कुलपुत्रीकी सक्रियों-प्रति सक्रियोंसे पुत्रकी पराजित हो जाती है॥ १–१०॥

[१०] तब रावणने गरुड़-विद्याको पराजित करनेवाली नारायणी विद्या छोड़ी वह गदा, शंख चक्र सारंग और चार हाथ धारण कर गरुड़ासन पर जाने लगी। इस पर सूरजके पुत्र वालिने माहेश्वरी विद्याका प्रयोग किया। कराल कंकाल वह, हाथमें त्रिशूल सिर पर साँप चन्द्रमा और गंगा धारण किये हुई दौड़ी। उसके ऊपर रावण और क्या छोड़ता? महाबली वालिने रथसहित उसे पकड़कर और युद्धमें सौ बार घुमाकर हथेली पर उसे धारण किया मानो हाथीकी सूँड़ने अपनी कमल उठा लिया हो, या बाहुबलिने भरत को उठा लिया हो। इसपर देवोंने दुन्दुभि

बजाई और वानरसेना कोलाहल करने लगी। इस प्रकार लंका-नरेशका मान मर्दनकर अपने छोटे भाई सुग्रीवके मस्तकपर राजपट्ट बाँधकर अभिनन्दन पूर्वक उससे कहा—"अब तुम रावणके अधीन रहकर सुखका भोग करना।" ॥ १–६ ॥

[११] मेरा सिर वैसे ही दुर्दमनीय है, जैसे सर्वोत्तम मोक्ष शिखर। त्रिलोकपति जिनकी वंदना करके यह, अब और किसी साधारण जनके आगे नहीं झुक सकता। अत: मेरी धरतीका तुम उपभोग करो और वानर तथा राक्षस समूहका रिश्वमो और जो तुमने, पिताके कारण यमको जीतकर मेरा उपकार किया है, उसका मैंने बदला चुका दिया (प्रत्युपकार कर दिया)। अब तुम स्वाधीन होकर राज्यश्रीका उपभोग कर सकते हो यह कहकर वह गगनचन्द्र मुनिके पास चला गया। वहाँ दीक्षा ले और तल्लीन हो वह तपस्यामें रत हो गया। तत्काल ही उसे ऋद्धि उत्पन्न हो गई। दिन-दिन इसी प्रकार इन्द्रिय रूपी शत्रुओंको जीतते हुए उसने कैलाश पर्वतकी ओर विहार किया॥ १–८ ॥

अंतमें पाँच महाव्रतोंको धारण करनेवाले महाऋद्धि, अग्रभाग शिखरपर स्थित आतापनी शिलापर बैठकर शाश्वत तपकी साधना करने लगे॥ ६ ॥

[१२] इधर सुग्रीवने अपनी बहिन श्रीप्रभा रावणको ब्याह दी। उसे लेकर रावण लंका चला गया। नल और नीलने किष्कपुरके लिए प्रस्थान किया सुधा महादेवीके पुत्र शशिकरणको सुग्रीव अपने साथ राज्यपर नियुक्त कर दिया। इसी समय, विजयार्धकी उत्तर श्रेणिके राजा ज्वलनसिंहका अपने सुतारा नामकी लड़की गुरुके आदेशसे सुग्रीवको ब्याह दी। वैसे इसके पहले ही वह साहसगतिको मँगनीमें दी जा चुकी थी। वह भी

उससे विवाह कर अपने नगर लौट आया। सहस्रगति विरहकी इस ज्वालाको सहन नहीं कर सका, उसे एक क्षण वेदनाकी कसमसाहट होने लगी। न उसे ठंड अच्छी लगती और न गर्मी। वह पश्चिम होकर वनमें विद्या सिद्ध करनेके लिए चला गया। सुग्रीवको भी दो रत्नोंके समान कल्याण जग और अंगद नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए और वह स्वयं सुखपूर्वक राज्यभोग करने लगा॥११॥

●

तेरहवीं संधि

परन्तु जब कभी भट्टारक बालिका विचार मनमें आता रावण रोषसे भर उठता। "मेरे जिन्दा रहनेसे क्या यदि मैं (रावण) शत्रुको न मसल सका।" एक समय वह विद्याधरकुमारी रत्नावलीसे विवाह कर नित्यालोक नगरसे लौट रहा था। अचानक उसका विमान आकाशमें अवरुद्ध हो गया। जैसे पापकर्मके वशसे दान, हाथसे मेघजाल, वर्षासे कायरका कलरव अमित दापोंसे कुटुम्बका धन, मच्छसे महाकमल, सुमेरु पर्वतसे पवनका वेग और दानके प्रभावसे भीतिवचन जाते हैं, वैसे ही भट्टारक बालिके प्रभावसे रावणका विमान रुक गया। उसकी किंकिणियाँ ऐसे निराक्रम हो उठीं मानो सुरति समाप्त होने पर कामिनी मूक हो उठी हो। छोटी-छोटी घण्टियोंका रव उसी तरह शांत हो गया मानो मेढकोंके लिए ग्रीष्मकाल आ गया हो। वे भरभर आपसमें अपने अग धरतीका कम्प बढ़ने लगा। ठेलनेपर भी विमान आगे नहीं बढ़ रहा था। वह बालि महामुनिके ऊपर वैसे ही नहीं पहुँच सक रहा था जैसे नवविवाहिता पत्नी अपने सयाने कामुक पतिके पास नहीं जाती॥१-२॥

[२] तब रावणने सब दिशाओंमें दृष्टिपात किया। सब ओर देखने पर भी केवल लाल-लाल आकाशके सिवाय उसे कुछ भी दृष्टिगत नहीं हुआ। (अन्तमें) हैरान होकर उसने मारीचसे पूछा, "कहो, चपल काल आज किस पर कुपित हुआ है ? कौन साँपके मुँहको मुग्ध कर रहा है ? किसने अपने सिरके ऊपर वज्रपात किया ? सिंहके मुखके सम्मुख होकर कौन निकलना चाहता है ? आगकी जलती लपटोंमें कौन प्रवेश करना चाहता है ? कौन कृतान्तकी दाढ़के भीतर बैठना चाहता है ? इस पर मारीचने उत्तरमें कहा, 'हे देव ! जैसे चंदनके वृक्षपर साँप रहता है, वैसे ही लम्बी लम्बी स्थिर बाहुवाला एक महाऋषि कैलाश पर्वतपर रहता है। वह मरुकी तरह अकंप समुद्रकी तरह गम्भीर, धरतीकी तरह समर्थ, मोहशून्य और मध्याह्न सूर्यकी तरह उग्रतेज है। उसकी तपश्शक्तिके प्रभावसे आपके विमानका वेग प्रतिहत हो गया है। अतः हे देव हृदयकी तरह टूक-टूक होनेके पहले ही आप इस विमानको फौरन उतार लें।" अपने मामाके ये वचन सुनकर रावणका मुख नीचा हो गया, मानो आकाशकी शोभा रूपी लक्ष्मीका यौवनभार ही गलकर गिर गया हो ॥१-१०॥

[३] उतरकर रावणने कैलाश पर्वतपर एक महामुनिको तपस्यामें लीन देखा। वह पर्वत गरजते हुए मत्त हाथियोंके ऊँचे सिरोंकी टक्करसे व्याप्त था। कठिन मणि-चट्टानोंसे धरती उछलती और काँप-सी रही थी। प्रदीप्त सूर्यकान्त मणियोंकी ज्वालासे वह चमक रहा था। चन्द्रकान्त मणियोंसे निर्झर बहा रहे थे मरकत मणियोंमें मयूरोंका भ्रम उत्पन्न हो रहा था। नीलम मणियोंसे चारों ओर अँधेरा हो रहा था। समूचा पर्वत, पद्मराग मणियोंके

किरण-जालसे भरा था। उसका उपत्यका गजमदकी धाराओंसे स्नात-सी थी। शिखर पेड़से गिरे फूलोंसे भर हुए थे। भौंरे मकरन्द-सुधापानके लिए उतावले हो रहे थे। साँपोंसे डसे गये हाथी दीर्घ श्वास छोड़ रहे थे। साँसोंके साथ ही, मोतियोंके समान स्वच्छ जलकण गिर रहे थे। रावणने उस महामुनिसे कहा, "मित्र! मुनि होकर भी तुम कषाय और क्रोधकी आगमें जल रहे हो, यदि आज भी तुम्हारी मेरे साथ युद्ध करनेकी इच्छा है तो ऋषि होकर भी मेरा विमान क्यों रोका? तुमने पराभवका जो ऋण मुझे दिया था कालान्तरमें उसे अब चुका रहा हूँ। पत्थरकी तरह कैलाश पर्वतको ही उखाड़कर समुद्रमें फेंक दूँगा" ॥१-९॥

[४] यह सोचकर मानो मालिके अभिशापसे पतित हुआ सा वह महिदारिणी विद्याके प्रभावसे कैलाशके उस भागको भेदकर उसमें घुस गया। हजार विद्याओंका चिंतनकर उसने पर्वतको उसे उखाड़ लिया मानो दुष्ट पुत्रने सुप्रसिद्ध प्रशंसाप्राप्त और सिद्ध अपना कुटुम्ब ही उखाड़ डाला है। अथवा दुष्कृत भारसे नमित और विशिष्ट देवोंवाला जिनका उच्छेद कर दिया हो। अथवा धरतीके उदरसे नाभिनालकी तरह व्याल ही निकल आया हो। या सर्पोंसे व्याप्त पर्वतको धरतीने ही छोड़ दिया हो या मानो बिलबिलाते हुए सर्पोंका समूह हो। अथवा धरतीके विनाशका हरविशेष हो। अत्यन्त गहरा वह गड्ढा ऐसा लगता था मानो पातालका उदर ही विदीर्ण कर दिया गया हो। कैलाशके गिरते ही चारों समुद्र चलायमान हो उठे। भयंकर शेषनागका मुख भी उचक पड़ा। मानो समुद्ररूपी आरत आनन्द लेकर जो जल नष्ट कर दिया था, धरतीने उसी तरह उस जलको बलपूर्वक खाकर धरतीने मानो फिरसे रख दिया ॥१-९॥

[५] ऐरावत हाथीकी सूँडके समान हाथकी अगुलीपर उस कैलाश पर्वतका उठाते ही, भग्नसर्पोंकी विषज्वालाएँ गुफाओंसे निकलने लगीं। कहीं चट्टानें परस्पर टकरा रही थीं, कहीं पहाड़ोंके अग्रिम भागमें खलबली मच रही थी। कहीं हाथी, सूँड ऊँची किये ऐसे निकल रहे थे, मानो पहाड़ोंने अपने ही हाथ उठा लिये हों। कहीं टूटी हुई मरकतमालाकी तरह, तोते उड़ते हुए दिखाई दे रहे थे। कहीं भौंरोंकी कतारें उड़ रही थीं मानो कैलाश पर्वतकी भौंहें चढ़ रही हों। गुफाओंसे निकले हुए अजगर ऐसे लगते थे मानो कैलाश पर्वत ही हजार मुखोंसे बोल रहा हो। कहीं टूट हुए हारकी तरह गिरिवरकी जलधारा लहरा पड़ी। कहीं सैकड़ों बगुले उड़ रहे थे मानो कैलाशकी हड्डियाँ ही बरसरा गई हों। कहीं अमिलिन रक्तकणोंकी तरह विद्रुम (मूँगा) चमक रहे थे ॥१-६॥

ठीक भी है यह। क्योंकि जो दूसरोंके हाथसे अपने स्थानसे हटा दिया जाता है, निश्चय ही, व्यवसाय रहित वह कौन-सी आपत्ति नहीं उठाता ॥१०॥

[६] इतनेमें पातालजोकमें चमकते हुए मणियोंसे सहित धरणेन्द्रका आसन कंपायमान हुआ। अवधिज्ञानसे सब वृत्तान्त जानकर, सपराज वहाँ पहुँचे जहाँ रावण कैलाश पर्वतको उठाये हुए खड़ा था। वहाँ उसे टूटी हुई मणिमय चट्टानोंके पत्थर ऐसे मालूम हुए मानो गिरिरूपी शिशुका कटिसूत्र ही टूट गया हो। वनचरोंके समूहोंका मान चूर-चूर हो चुका था। वहाँपर केवल महामुनि बालि अविचल तथा सूक्ष्मभावसे ध्यानमें लीन उपसर्गमें बैठे थे। विद्याओंके अधिपति वह ऋद्धियाँ प्राप्त कर चुके थे। कोटि-कोटि स्वर्ण और तृण, शत्रु और पण्डितमें, उनका भाव सम

था। आते ही धरणेन्द्रने उनको प्रदक्षिणा और वंदना की। मणियोंसे चमकती हुई उसकी फणावलि ऐसी सोह रही थी मानो महामुनि (वालि) के सम्मुख दीपमाला जल रही हो। नागराजके नमन करते ही कैलाश पर्वत नीचे धसने लगा। रावणके मुखसे रक्तकी धारा बह निकली वह कछुएकी भाँति ढेर हो गया ॥१-१०॥

[७] सर्पराजके चांपने और चपेटने पर रावण जोरसे चिल्ला उठा, उससे दसों दिशाएँ भयातुर हो उठीं। उस चीख रावको सुनते ही ऐरावतके कुम्भस्थलके समान स्तनोंवाली रावणकी रानियाँ, केयूर हार नूपुर कंकणवाले अपने दोनों करोंको खनखना कर और करधनी हिलाकर जिनके मुखकमलपर भौंरे मँडरा रहे थे तथा विभ्रम और विलाससे जिनकी भृकुटियाँ कुटिल हो रही थीं वे हा हा शब्द करने लगीं। यथा— 'हा दशमुख! हा श्रीनिवास, हा दशवदन! हा दशानन! हा दशास्य! हा दशग्रीव! हा दश सिर! हा दशसिर! हा देवतारूपी हरिणों के लिए सिंह के समान!' मन्दोदरीने कहा कि 'हे उदार भट्टारक वालि! जिसमें संक्लेशका जीवन न आवे ऐसी हमें भर्ताकी भीख दो।' इस प्रकार करुण क्रन्दनको सुनकर, धरणेन्द्रने पहाड़ वैसे ही उठा लिया जैसे सधा और रोहिणीके उत्तरमें पहुँचा मंगल मेघोंको उठा लेता है ॥१-९॥

[८] आहत होकर रावण कैलाशके तलभागसे निकल आया मानो सिंहके तीव्र प्रहारसे महागज ही बचकर आया हो, या मानो अयाल खींचकर तथा नख उखाड़कर मृगेन्द्र ही अपनी गुफा छोड़कर आया हो। या सिर हाथ पाँव समेटकर कछुआ ही पाताल लोकसे निकला हो या कर्कश वृष्टिके कारण भग्नफण-

समुद्रवाला सप हो गरुडके मुखसे निकल आया हो, या दूषित, तेजहीन चन्द्र ही राहुके मुखसे निकल आया हो। रावण भावापिनी शिलापर गुणोंसे युक्त ध्यानस्थ बालि महामुनिके निकट पहुँचा। परिक्रमा देकर उसने उनकी स्तुति की और फिर गद्गद स्वरमें अपनी ही निन्दा करता हुआ बोला, "मेरे समान अज्ञानी दुनियामें दूसरा नहीं, जो मैं सिंहके साथ खिलवाड़ करना चाहता हूँ। भला, मेरे समान दूसरा मदमात्य कौन हो सकता है, जो मैंने गुरुके ऊपर भी महा उपसर्ग किया। हे देव, आपने त्रिलोक स्वामी जिनको छोड़कर और किसीको अपना सिरकमल नहीं झुकाया, सचमुच आपने सम्यक्त्वरूपी महाद्रुमका फल पा लिया ॥१-१०॥

[६] इस धर्मोंके आश्रय-निकेतन महामुनि बालिकी इस तरह स्तुतिकर, रावण भरतद्वारा निर्मित जिन-मन्दिरोंके दर्शन करनेके लिए गया। वहाँ पहुँचकर कैलाश पर्वतको कँपानेवाले रावणने जिनकी पूजा की। उसकी वह पूजा वनस्पतिकी तरह फल-फूलोंसे समृद्ध थी महाटवीकी तरह, सावय (श्रापद और श्रावकों) से घिरी हुई थी विलासिनीकी तरह, अभिनव उल्लास वाली थी। दुष्ट कुट्टनीकी तरह नरोंसे दग्ध और कम्पित, समुद्रके बीचकी धरतीकी तरह बहुत दीप (दिया और द्वीप) वाली, नारायणकी बुद्धिकी तरह बलि (राजा बलि और पूजाकी सामग्री) का प्रेरित करनेवाली गजघटाकी तरह घण्टारवसे मुखरित, सौपक फनकी तरह मणि और रत्नोंसे समुज्ज्वल, बरयाके बालोंकी तरह स्नानक सहित पारिजातपुष्पकी तरह गंधसे उत्कट और कुसुमित थी। जिनेन्द्रकी पूजा करनेके अनन्तर उसने गान प्रारम्भ किया। उसमें मूर्छना क्रम, कप, ग्रिग्राम आदि सभी अंग थे। पहुज

ऋषभ, गांधारवाही, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद स्वरमें उसने सुन्दर संगीत प्रारम्भ किया। मधुर स्थिर, श्रुतिविशिष्ट और अनवर्तीकरणमें समय अपने हाथसे शत्रुको रुलानेवाले रावणने सुन्दर गन्धर्व गान किया ॥१-१०॥

[१०] उसका वह गान सुन्दर स्त्रीकी तरह अलंकार और सुन्दर स्वरोंसे युक्त विदग्ध और सुहावना था। अथवा सुरतिसन्त्र की तरह आरोही, अवरोही स्थायी और संचारी भावकी गतियोंसे सहित था। नववधूके भालकी तरह तिलकसे सुन्दर, मेघरहित आकाशकी भाँति मदतार (तारा और ताल), सन्नद्ध सेनापतिकी तरह तान छनेवाला सजे हुए धनुषकी तरह प्रसन्न बाणवाला उसके गीतको सुनकर, नागराजने अपनी अमाप विजय नामकी शक्ति दे दी। तरह दिन तक ऋषभको वन्दना करनके बाद रावण अपने घर चला आया। इसी समय महामुनि बालिको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया बाहुबलि ही की तरह उनका शरीर भी पवित्र हो गया और भी उन्हें धवल छत्र भामंडल और कमलासन आदि प्रकट हुए। बहुत समय पश्चात् उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया। परन्तु इधर रावण सुरासुरको भी डरानेवाला इन्द्रके प्रति विद्वेषसे भर उठा। उसने कहा कि जिसने रणरूपी सागरमें घुसकर मालिका सिरकमल तोड़ा है मैं उस हसरूपी इन्द्रके दोनों पंख उखाड़कर फेंक दूँगा ॥१-११॥

[११] यह विचारकर उसने रणभेरी बजवाकर कूच कर दिया। वही रावण जिसने यम धनद बुध और कैलाश पर्वतको धरा दिया था। रावणके प्रस्थान करते ही राक्षस भी ऐसे निकल पड़े माना अंकुशहीन गजेन्द्र ही निकल पड़े हों। अभिमानी व अपने-अपने विमानोंपर आरूढ़ थ, प्रहार करनेमें निपुण हाथवाले उन

समुह मउ णिविड गय-मड भरइ(?) । णन्दीसर-दीवु व सुर पवइ ॥७॥
पायालम्बइ पायम्तएण । दहगीवें वहइ वहन्तएण ॥८॥
पलक्खिउ अप्पणु आयासएण (?) ॥९॥
वुच्चइ 'खर-दूसण केवु ताव । जउ जाइ णिहुण परिमिहु पाव' ॥१०॥
तं वयणु सुणेप्पिणु मामएण । कहाविउ दुम्मणिउ मएण ॥११॥
'सहुँ सायरबुद्धिं मिर कवण कालि । जइ आइय तो तुम्हहुँ वि हाणि ॥१२॥
जइ चहिमि-सहोयर-विरम्मँ जाहुँ । आसन्नँ वि किज्जइ काइँ ताहुँ' ॥१३॥

घत्ता

तं वयणु सुणेवि दहवयणेण मच्छरु मणेँ परिसेसियउ ।
चूडामणि-माउड-हत्थउ दूयउ कोसउ पेसियउ ॥११॥

[१२]

दुवई

आइय तेसु ते वि पिय-वयणेंहिं बोल्लाविय दसाणणो ।
गउ किक्किन्ध-णयरु सुग्गीउ वि मिलिउ स-मन्ति-साहणो ॥१॥

साहिउ अरि-अक्खोहणि-सहासु । पत्थिउ सहु वरवर-मकासु ॥२॥
रह-तुरय-गइन्दहुँ णाहिँ छेउ । कम्पइ पयाणउ पवण-वेउ ॥३॥
पिउ अमिरास-वेडि-महाविसालें । रेवा-विम्म-गिरिहिं अन्तरालें ॥४॥
अत्थवणहों दुक्कु पयङ्गु जाम । आढत्तु पासु विसरणइय (?) ताम ॥५॥
अरि-समर-थम्भ सीमन्त-थाइ । णक्खत्त कुसुम संहर सभाइ ॥६॥
णिम्मिविय चन्दाहिव गण्डवास । मम्मण मेलइ कण्णायवस ॥७॥
आहुकणग भसहर तिमिर-तार । जोण्हा पसाहिय हार भार ॥८॥
जं णम्मवि दिट्ठि दिवायरासु । णिसि-वहु णर्हाण णिसायरासु ॥९॥

भयङ्कर निशाचरोंके सम्मुख निबिड़ गजघटा ऐसी उमड़ पड़ी मानो देवोंने ही नन्दिशिखरद्वीपको प्रस्थान किया हो। आगकी लपटोंकी तरह लहकता हुआ तापसे प्रदीप्त रावण पाताललङ्कामें जाकर बोला—"खल, दुष्ट और पिशुन खरदूषणसे बदला लेता हूँ।" यह सुनकर मामा मयने लङ्काधिपति रावणको समझाया और कहा, "बहनोईसे वैर करनेमें क्या लाभ?" उसके मरनेसे तुम्हारी ही हानि है, शीघ्र तुम बहनके पतिके घर जाओ। उससे रूठनेमें कोई लाभ नहीं।" यह वचन सुनकर रावणने मत्सर छोड़ दिया। चूड़ामणिके उपहारके साथ उसने इन्द्रजीतको उसे बुलाने भेजा॥१-११॥

[१२] खर-दूषण—दोनोंने आकर मधुर शब्दोंमें रावणका स्वागत किया। सुग्रीव भी मंत्रियों और सेनाको लेकर अपने नगर किष्किंधपुर चला गया। रावणके पास उत्तम योगोंकी एक हजार अक्षौहिणी सेना और इतने ही रात्रि थे। रथ अश्व और गजोंका तो अन्त ही नहीं था। पवन-वेगकी तरह वह आकाशमें उड़ती आ रही थी। वह, रेवा और विन्ध्याचलके अन्तरालमें एक विशाल तटपर ठहर गया। ठीक इसी समय सूर्यास्त हुआ मानो सूरज रातरूपी अन्धकारके आश्रयमें जाना चाह रहा हो। परन्तु निशारूपी वधू उसको मौत चुराकर चंद्रमाके आश्रमकी खोजमें चल दी। चमकते हुए तारे मानो उसके वस्त्र थे और दिशाएँ हाथ। नक्षत्रके पुष्पोंसे उसकी वेणी गुथी हुई थी उसका कपालतल हरिणकासे मण्डित था। शुक्र और बृहस्पति उसके कर्णफूल थे। अन्धकार उसका आँखोंका अञ्जन था और शशधर तिलक। चाँदनी की परम्परा ही उसका हार भार थी॥१-८॥

वे दोनों (निशा और चन्द्र) दुःशील स्वभावके थे। कहीं सूर्य न देख ले मानो इसीसे दोनों, सुरतिका आनन्द लेकर, सशंक-सा रहे थे ॥१०॥

इस तरह धनञ्जयके आश्रित स्वयम्भू कविकृत पउमचरिउमें विद्याधर उद्धार नामक तेरह सन्धिवाला पर्व समाप्त हुआ।

॥ प्रथम पर्व समाप्त ॥

चौदहवीं सन्धि

दूसरे दिन विमल प्रभातमें प्रयाण करते ही उन्हें उदयगिरि पर उगता हुआ सूर्य दीख पड़ा। वह मानो यह खोज-सा रहा था कि रात मुझे छोड़कर चन्द्रमाके साथ कहाँ चली गई ॥१॥

[१] लाल-लाल सूर्य-बिम्ब ऐसा जान पड़ता था मानो प्रवेश करते वसन्तने जगरूपी घरमें, कोमल किरणोंके दलसे ढका हुआ, सुप्रभातरूपी दधि भरा सुन्दर मंगल-कलश ही रख दिया है। वसन्तने फाल्गुनके दुष्टदूत पाले (हिम) को भगा दिया। उसने केवल विरही जनोंका किसी तरह मारा भर नहीं था। उसने वनस्पति रूपी प्रजाको नष्ट कर दिया था। फल-ऋद्धिका अहंकार चूर-चूर हो गया था। पहाड़ोंके समूह धूम-धूसरित हो रहे थे, चक्र भ्रम आने से वनरूपी नगरोंका वह बहुत ही संताप कर रहा था। उसने नदियोंके प्रवाहको अवरुद्ध कर दिया था, और नदी मध और जलचरोंका तहस-नहस कर डाला था। यंत्रोंसे उसने इक्षुवनको खूब पीड़ित किया प्रपामण्डपोंका भी पतन खूब मनाया था। उसके राज्यमें वह केवल पलाशकी वैभव-वृद्धि कर रहा था। वसन्त राजाने पहले उस फाल्गुन माहका मुँह काला कर दिया। धीरे-धीरे अब वसन्त राजाका प्रवेश हुआ। कमल उसका मुख था कुमुद नेत्र केतकी पराग सिर शेखर-सिरमुकुट, पल्लव करतल और पुष्प स्तबक उन्नत नख थे ॥१-८॥

[१] राजा वसन्तने डालों और तोरणोंसे सजे द्वार वाले वसन्तश्री के घरमें प्रवेश किया। कमलोंके वासगृहोंमें शब्दरूपी नूपुर था। मधुकरियोंका अन्तःपुर उसमें बसा हुआ था। उद्यानोंमें चम्पकरूपी कामिनी थी। लतागृहके स्थानोंमें शुकरूपी सामन्त थे। सरोवरोंमें कमलोंके छत्र-दण्ड थे। पहाड़ोंके शिखरोंपर मयूरका नृत्य (साहुल्ल) था। आम्रवृक्षोंमें कुसुम और मञ्जरीकी पताकाएँ थीं। केशर-वृक्षोंमें दवनाकवारूपी भाण्डार-रक्षक थे। शाखाओंमें भ्रमररूपी माली थे। मकरंदमें मधुकररूपी मत्त पात्र थे। स्वरोंके आवासमें सुन्दर ताल था। अभिनव पत्तोंके आसन-गृहोंमें अभयमोक्षक थे। इस तरह गजराज कामदेवसे आन्दोलित विरहीको जलाता हुआ वसन्त आ पहुँचा। आते हुए वसन्तकी इस तरहकी शोभा देखकर मधु, मधुरस और सुरास मत्त भोली-भाली नवदा नर्मदारूपी बाला ऐसी मचल उठी, मानो कामदेवकी रति ही मचल उठी हो ॥१-९॥

[२] समुद्रको जाती हुई उसने तुरन्त अपनी साजसज्जा बना ली। कल-कल करती चलती धाराएँ उसके नूपुरोंकी झंकार थीं। कान्तिवाले किनारे उसका आंचल थी। उछलता-कलकलवाला जल उसकी करधनीकी ध्वनिको व्यक्त कर रहा था। जो बढ़िया आवर्त उठ रहे थे वही उसके शरीरकी त्रिवलि-तरंगके समान थे। जो शोभित शरीर जलहाथियोंके कुंभ-स्थल थे वही उसके भव मुक्त स्तन थे। हिलता डुलता फेनसमूह ही हारके रूपमें शोभित हो रहा था। जलचरोंके मुखसे लगा हुआ पानी ही उसका ताम्बूल था। मदमाते हाथियोंके मदजलसे मटमैला पानी ही आँखोंका काजल था। ऊपर नीचे आने वाली तरंगें ही बाहुओंका चित्र राग थी। उसकी आश्रित भ्रमरमाला ही केशकलाप थी ॥१-११॥

घत्ता

मग्गें वम्मिएँ मुहु दरसन्तिएँ माहेसर-कइ-पईवहुँ ।
मोक्खुप्पाइउ ण सउ माइउ तहुँ सहसकिरण-वइरीवहुँ ॥११॥

[४]

सा वसन्तु सा रेवा तं जलु । सो दाहिण-मारुउ सिय-सीयलु ॥१॥
ताइँ असोय-णाय-चूय-वणाइँ । महुअरि-महुर-सराइँ वण-भवणाइँ ॥२॥
ते सुभगाय ताउ कीरोलिउ । ताउ कुसुम-मञ्जरि-रिञ्छोलिउ ॥३॥
ते पत्तल सो कोइल-कलयलु । सो केयइ-केसर-रय-परिमलु ॥४॥
ताउ चवलाउ महिल उक्कण्ठउ । दवणा-मञ्जरिउ णव-कण्ठिउ ॥५॥
ते मन्दोला तं सुरुहीयणु । पेक्खेंवि सहसकिरणु हरिसिय-मणु ॥६॥
सहुँ अन्तेउरेण गउ तेत्तहें । णम्मय पवर महाणइ जेत्तहें ॥७॥
दूरें थिउ आरक्खिय-णिय-बलु । जलु जन्तिऍहिँ णिरुद्धउ णिम्मलु ॥८॥

घत्ता

पविउल-दरिसिउ सुरवइहिँ सरिसउ माहेसरउर-परमेसरु ।
अहिणवमन्दरें माणस-सरवरें णं पइट्ठु सुरिन्दु स-अच्छरु ॥९॥

[५]

सहसकिरणु सहसत्ति णिएँवि । जाउ णाइँ महि-वहु अवलोएँवि ॥१॥
णिग्गउ मउडु अणुम्मिलाइउ । रवि व पच्चासन्नु सोहिउ ॥२॥
णिद्दु णियत्तु णयणु उम्मण्णहु । णं कन्दप्पु पमाउ पय-मग्गहु ॥३॥
पभणइ सहसरासि 'अम्ह इयणमें । कुसुमें रमहें ण्हाहें सहुसग्गें ॥४॥
तं णिसुणेंवि ममरस विलासिणि । कुसुम उवराउ महुएविउ ॥५॥
सप्परि-धवल-णियम परिट्ठिउ । णं रयणुप्पल-सण्ड समुट्ठिउ ॥६॥
णं केयइ-आरामु मणोहरु । चम्पय-सूइ कणयद्दा केसरु ॥७॥

इस प्रकार मुँह दिखाकर, बीचमें आती हुई उस रेवाको देखकर माहेश्वर और लंकापति दोनों अधिपतियोंको मोह और प्यार उत्पन्न हो गया ॥१२॥

[४] वह वसन्त वह रेवा वह पानी और वही मन्द शीतल दक्षिण-पवन, वे, अशोक, नाग और आम्रके वन। वे मधुकरियोंसे मधुर और सरस मुखरित लतागृह, व हिलते-डुलते झंकारते शुकसमूह, कुसुम मञ्जरियोंकी वह कतार। ये किसलय, कोयलका वह कलकल। केतकी पुष्पका वह रस और परिमल। नई जूहीका वह चटकना वह नई दवना मञ्जरी वे झूले, वह युवतीजन यह सब देखकर माहेश्वर अधिपति सहस्र-किरणका मन प्रसन्न हो उठा। अन्तःपुरके साथ वह पहुँचा जहाँ नर्मदाका प्रवाह अत्यन्त वेगशाल था। उसने यन्त्रोंसे नदीके स्वच्छ पानीको रुकवा दिया। रक्षकों और सेनाको दूर ही छोड़ दिया ॥१-८॥

इस तरह माहेश्वर पुर-परमेश्वर वह, सुन्दरियोंके साथ पानीके भीतर घुसा। मानो इन्द्र ही अप्सराओंके साथ मानसरोवरमें घुसा हो ॥६॥

[५] सहस्रकिरण जलमें डूबा और वरवधूसे मिलकर तुरन्त ही ऊपर निकल आया उसका अधडूबा मुकुट अधउगा सूरजकी तरह मालूम हो रहा था। मानो मुख और वक्षःस्थल क्रमसे अधचन्द्र कमल और आकाशमण्डलकी तरह दिखाई दिये। इतनेमें सहस्रकिरणने कहा "लो हुआ खड़ा रखा नहाना, पिया" यह सुनते ही महादेवी तिरछी निगाहसे देखकर सिर पैरसे डूब गई फिर उसकी दोनों हथेलियाँ धीरे-धीरे उसे ऊपर निकलीं मानो रक्तकमलोंका समूह ही ऊपर उठ रहा हो, या सुन्दर केतकीका उपवन हो। नरसुखी और कई मानो केशर

महुयर सर-सरोय मालीणा । कामिणि-मिहुणहिं मणें वि ण खीणा ॥९॥

घत्ता

सलिल-तरन्तउँ पमीभन्तउँ सुर-कामउँ केइ पचाइय ।
णावइँ सरसइँ किन(र?)वामरसइँ करयइँ मन्ति उप्पाइय ॥१॥

[६]

अवरोप्पर जल-कील करन्तहुँ । घण-पाणालि पहर मेल्लन्तहुँ ॥१॥
कहि मि चन्द-कुन्दुज्जल-तारेंहिँ । पवहिउ जलु तुरन्तेंहिँ हारेंहिँ ॥२॥
कहि मि रसिउ णेउरेंहिँ रसन्तेंहिँ । कहि मि कुविउ कुम्मवेंहिँ कुरन्तेंहिँ ॥३॥
कहि मि सरस-तम्बोलारत्तउ । कहि मि बउल-कायम्बरि-मत्तउ ॥४॥
कहि मि घुसिण कप्पूरेंहिँ वासिउ । कहि मि सुरहि मिगमय-वामीसिउ ॥५॥
कहि मि विविह-मणि-रयणुज्जलियउ । कहि मि बोल-कज्जल-संवलियउ ॥६॥
कहि मि बउल-कुसुम पिञ्जरियउ । कहि मि मयण-चन्दण-रस-भरियउ ॥७॥
कहि मि जक्खकद्दमेंण करम्बिउ । कहि मि भमर-रिञ्छोलिहि चुम्बिउ ॥८॥

घत्ता

विदुम-मरगय इन्दणील-सय चामियर-हार-संघाऍहिँ ।
णं जल-कुञ्जउ णावइ णहयलु सुरधणु-घण-विज्जु-वलायहिँ ॥९॥

[७]

का वि अणन्ति केण वि सहुँ राएँ । पहणइ कोमल-कुवलय-घाएँ ॥१॥
का वि मुहउ पिहूएँ सुविसालएँ । का वि उवरुएँ मणिमय-मालएँ ॥२॥
का वि सुयन्धेंहिँ पारिजाय-कुसुमेंहिँ । का वि सु-रयणभरेंहिँ चउरङ्गेंहिँ ॥३॥
का वि मुत्त-पन्तीहिँ पइम्निएँहिँ । का वि रयण-मणि-भरणम्भिमिएहिँ ॥४॥
का वि विलग्गेहिँ उम्मरियाहिँ । का वि सुरहि-चम्पय-मञ्जरियाहिँ ॥५॥
कहें वि गुज्झु जलें अइ-मिलन्तउ । ण मयरहर-मिहुणु साहिलन्तउ ॥६॥

रख ये या मानो मधुकरके स्वर-भारसे भामित, भ्रमरी रूपी कामिनी लीन हो गई हो ॥१-८॥

पानीमें तैरती हुई और दौड़ती हुई किसीके उन्मीलित मुख कमलको देखकर, राजाको यह भ्रम हो गया कि यह सरस मुख है या रक्तकमल ॥ ६ ॥

[६] एक दूसरेपर जलकी बौछार फेंकते हुए वे जलक्रीड़ा करने लगे। कहींपर पानी, चन्द्र और कुंद पुष्पकी तरह स्वच्छ और शुभ्र, टूटे हुए हारोंसे सफेद हो गया था। कहीं, मुकुत नूपुरों से मुकुत हो उठा। कहीं स्फुरित कुण्डलोंसे चमक रहा था, कहीं सरसपानोंसे लाल हो उठा तो कहीं बकुल और मदिरासे मत्त। कहीं फलिह और कपूरसे सुवासित, तो कहीं सुरभित कस्तूरीसे मिश्रित था। कहीं विविध मणि-रत्नोंसे उज्ज्वल तो कहीं घुले हुए काजलसे मिश्रित था। कहीं बहुत केशरसे पीला सा कहीं मलय चन्दनरससे भरित हो रहा था। कहीं सुमेधित चूर्णसे संचित था तो कहीं भ्रमरमालासे चुम्बित हो रहा था। विद्रुम मरकत, इन्द्रनील, स्वर्ण और हीरोंके समूहसे रंगबिरंगा तथा उज्ज्वल यह पानी ऐसा लगता था मानो इन्द्र-धनुष मेघ, बिजली और बगुलोंसे चित्र-विचित्र आकाशतल हो ॥१-६॥

[७] कोई कोमल कमलसे प्रहार करती हुई राजाके साथ क्रीड़ा कर रही थी कोई मुग्ध विशाल दृष्टिसे, कोई नवीनतम मालती मालासे कोई सुगन्धित पाटल पुष्पसे, कोई पूगफल और पत्तेसे। कोई आम पत्तों और पट्टणियोंसे, कोई रत्नमणियों की मालाओंसे, कोई बचे हुए मलयलेपसे और कोई दवना मञ्जरीसे प्रहार कर रही थी। किसीका जलमें छिपा हुआ आधा निकला गहना ऐसा लग रहा था मानो कामदेवका मुकुट ही सोह रहा

कहेँ वि कसण रोमावलि दिट्ठी । काम-वेल्लि णं णाहेँहि पइट्ठी ॥७॥
कहेँ वि पओहरि कसणु महोरसु । णाइँ अणङ्गहोँ केरउ तोरणु ॥८॥

घत्ता

कहेँ वि स-कडियरेँ दिट्ठइँ णहरइँ थण-सिहरोवरि सु-पहुत्तइँ ।
वेगेण पलम्बहोँ मयण-तुरङ्गहोँ णं पायइँ खुडु खुडु खुत्तइँ ॥९॥

[८]

त जल-कील णिएवि पहाणहुँ । जाम चोज्ज सहसकेँ णिम्माणहुँ ॥१॥
पमणइ एक्कु हरिस-संपण्णउ । 'तिहुअणेँ सहसकिरणु पर धण्णउ ॥२॥
जुवइ-सहासु जासु स-वियारउ । विब्भम हाव भाव-संचारउ ॥३॥
पक्खि-पसु व णियवर-कर-णक्खउ । कुसुम-वसु व ससमर तण्णिक्खउ(?) ॥४॥
कालु जाइ जसु मयण-वियारेँ । सासिमि पडिमलसासारेँ ॥५॥
अच्छउ सुरउ जेण जगु मवउ । जल-कीलएँ वि विण्णु पजत्तउ' ॥६॥
त णिसुणेँवि अवरेक्कु पवोल्लिउ । 'सहसकिरणु केवल सविओल्लिउ ॥७॥
एत्थु पयासु मणोहर-मन्तउ । जो जुवइहिँ गुम्मन्तु वि पत्तउ ॥८॥

घत्ता

जेण जलन्तरेँ सलिलब्भन्तरेँ गयणिंसु-वारण-संचारएँ ।
सरवसु पुप्फत माणेँवि सुकउ अन्तउर एक्कएँ वासएँ ॥९॥

[९]

तावेँ वि जल-कील करेप्पिणु । सुन्दर विवस-णेह विरएप्पिणु ॥१॥
उप्परि जिणवर पडिम चडावेँ वि । विविह-विहाण-विहउ दावेँवि ॥२॥
दुद्ध-खीर-सिसिरेँहिँ अहिसिंचेँवि । णाणाविह-मणि-रयणेहिँ अच्चेँवि ॥३॥
णाणाविहहिँ विलेवण-भेयहिँ । दीव धूव-बलि पुप्फ-णिवेयहिँ ॥४॥
पुण करेँ वि थिर थायइ जावेँहिँ । अञ्जियएहिँ जसु मेल्लिउ तावेँहिँ ॥५॥
पर-कलतु संकेयहोँ दुक्कउ । णाइँ णियडहिँ माणेँवि मुक्कउ ॥६॥

दिया हो। घाटों तटोंको पेलता, और जिनवरकी पूज्यप्रतिमाको ढँकता हुआ, वह पानी बढ़ने लगा। तब हड़बड़ाकर रावण जिन-प्रतिमाको लेकर, व्याकुलतासे किसी तरह बाहर निकला ॥१-८॥

उसने कहा 'राजाओंमें जल्दी उसे खोज लाओ जिसने यह नीचता की है, आज मैं उसे अवश्य ही यमका शासन दिखाऊँगा। बहुत कहनेसे कोई लाभ नहीं?' ॥९॥

[१०] इतनेमें उसके आदेशसे लोग पता लगाने गये। रावणने देखा कि नर्मदा नदी, खूब मधुकरोंके कुसुमसे होड़ करती हुई जा रही थी, चन्दन-रससे लिप्त, जलकी पूर्तिसे वह यौवनवतीकी तरह, जान पड़ती थी। मन्द प्रवाहसे विश्राम करती-सी उत्तम वस्त्रोंसे मंडित ऊपरके वस्त्र (दुपट्टा) से अंगको छिपाती-सी शाल्मलपुष्पका नीरस लाल हुई-सा मल्लिका कुसुमके दाँतोंसे हँसती-सी नील कमलोंके नेत्रोंसे देखती-सी, बकुल-सुगन्धी गन्धसे मदमाती-सी हाथोंसे फेनोंको नचाती मधुकरोंके मधुर स्वरमें गाती और निर्झरोंके मृदंगको बजाती-सी वह शृंगार पहने थी ॥१-८॥

स्त्रीका गमन नहीं करनेवाले परम निष्काम परम जिनेन्द्रसे स्पष्ट ही मानो नर्मदा नदी स्वयं पूजाके द्रव्यको हरणकर और उपहार लेकर अपने प्रिय समुद्रके पास जा रही थी ॥९॥

[११] जो अनुचर खोज करने गये थे वे खबर लेकर लौट आये। सुनते हुए दशाननसे उन्होंने कहा "संसारमें हम इतना ही जान पाये कि माहिष्मतिपति नरश्रेष्ठ सहस्रकिरण नामक राजाने ऐसी जलक्रीड़ा की वैसी करना शायद देवता भी नहीं जानते।" ॥१-९॥

पाइउ गयउ-वाइँ पेक्खन्तउ । जिणवर-पवर-थुइ रोवन्तउ ॥७॥
परमइ पडिम कवि मिइवन्तइ । कइ वि कइ वि बीसरिउ विवाणइ ॥८॥

घत्ता

भणइ 'णरेसरहों तुरिउ गवेसहों किउ जेण एउ विगुणत्तणु ।
किं बहु-बुत्तेण तासु विरुत्तेण दक्खवमि अज्जु जम-सासणु' ॥९॥

[१]

तो एत्थन्तरें ण्हाएप्पिणु । पत्त मत्त-गमणाऽजेव पवेसा ॥१॥
रामणेण सरि दिट्ठ वहन्ती । मुप-महुयर-गुप्पन्तेण व वन्ती (?) ॥२॥
चक्काय-रसेण व पहरु-विवियन्ती । चक्क-रिंडिएँ व्व बोल्लन्ती ॥३॥
मप्पर-गाहेण व बीसन्ती । कल्प-पडुक्वणइँ व मिलन्ती ॥४॥
बीणाडेसनइँ व पडगुणी । काकामिप-मिहाए व सुती ॥५॥
मणिय-गणेहिँ व विहसन्ती । मीलुप्पल-पयमें हिँ व मिपन्ती ॥६॥
परक-सुरा-गन्धेण व मत्ती । केणइ हत्थेंहिँ व णाचन्ती ॥७॥
महुयरि-महुर-सर व गायन्ती । कम्मम-सुरयइँ व णावन्ती ॥८॥

घत्ता

णरमिव-रामहों मिड मिण्णमहों णावसैं वि परम-विभिन्महों ।
पुण होप्पिणु पाउइ केप्पिणु गय णावइ पासु समुद्दहों ॥९॥

[११]

तहिँ अवसरें जे मिहर आइय । ते पडिवय कप्पिणु आइय ॥१॥
कहिय सुणन्नहों खन्धावारहों । 'कइ पवरउ साव संसारहों ॥२॥
माहेसरणाह णर-परमेसर । सहसकिरणु णामेण णरेसर ॥३॥
वा चक्क-कोड तेण उप्पाइय । सा णमरेपि मि रमें वि ण णाइय ॥४॥

और भी जो सुन्दर कामदेव इन्द्र, भरत, सगर चक्रवर्ती अथवा सनत्कुमार आदि सुने जाते हैं वे भी इसके एक अंशको नहीं पा सकते। उसने अपूर्व जलक्रीड़ा की है। वह धर्म और अर्थ दानोंको जानता है। काम तत्त्व तो वही समझता है, और भोग तो सुरति (पसवकोवृमिठ) का रमण करते हैं। दुनियामें मेघ रहते और तपते हुए आकाशका सूर्य शोभा नहीं पाता इसीलिए मानो वह राजा प्रिय व्यापार पूर्वक जलमें प्रविष्ट हो गया है ॥५-६॥

[१०] इतनेमें किसी दूसरेने कहा "इसने जो सुनाया यह सच है। मैंने भी यही सब देखा है।" उसका अन्तःपुर सचमुच कामपुरीके समान जान पड़ता है। उसमें सुन्दर नूपुर मुरज, प्रेक्षणक गृह हैं। वह मानो सौन्दर्य जलसे भरा सुन्दर सरोवर ही है। सिर, मुख कर और चरणरूपी कमलोंका वह महासरोवर है। स्तनरूपी रूपी तारोंसे सजा हुआ वह उत्सवका दिन स्तन रूपी हाथियोंसे साहारण-कानन, हाररूपी कल्पवृक्षोंसे गगनांगन, अधररूपी प्रवालोंसे प्रवालाकर, दन्त-पंक्ति रूपी मोतियोंसे रत्नाकर जीभ और कण्ठोंसे नन्दनवन, कानोंके आन्दोलनसे मेरु वन, नेत्ररूपी भ्रमरोंसे केसर-मुकुट और घूमती हुई भौंहोंसे नागघर सा लगता है। बहुत बार-बार कहनेसे क्या वह अन्तःपुर भयंकर कामाग्निकी तरह सम्पूर्ण हो रहा है, मानो मन रूपी धनवाले पहुवसे मनुष्योंके लिए प्रचण्ड चार ही उत्पन्न हो गया है।"॥१-४॥

[११] तब किसी एकने कहा कि मैंने निमल पानीमें तैरते हुए अत्यन्त दृश्य हैं। जो पुष्पकामकी तरह अत्यन्त सुन्दर अभिनव प्रेमकी तरह अत्यन्त सुघर अत्यन्त कृपणके हृदयकी तरह कठोर (जंजीरोंसे बँधे) सुकविके पदोंकी तरह, मिउर्सा (श्लिष्ट शब्द-न्यास, और दूसरे पक्षमें, काठकी

योनी-झाटी कठारियाँ) से रचित कुपुरुषके मनकी तरह, चंचल, कुटनीके वचनोंकी तरह कृष्ण, सज्जनके वचनोंकी तरह निपुण, भिखारीके मनकी तरह अच्छी तरह बँधे हुए, सती स्त्रीकी तरह दुर्लभ्य, डूबते हुए व्यक्तिकी तरह चेष्टारहित हैं। व यन्त्र सिर, नाक, उर, हाथ चरण, कान, नेत्र और मुखासे पानी उगलते हैं, उन्हींसे यह पानी रोककर उसने बाधमें छोड़ दिया है। इसीसे पूजाको बहाता हुआ पानी यहाँ आ पहुँचा है। यह सुनकर रावणने "पकड़ो" कहकर अपने हाथमें तलवार खींच ली। चन्द्रकिरणोंकी तरह निमल और उज्ज्वल वह तलवार ऐसी लगती थी मानो सत्पात्रको दिये हुए दानका फल ही बढ़ रहा हो ॥१–९॥

जल-क्रीड़ामें स्वयम्भूको, गोमह-कथामें चतुर्मुखको और मत्स्य-वेधनमें 'भद्र' को आज भी कविलोग नहीं पा सकते।

●

पन्द्रहवीं सन्धि

मदान्ध गंधगज जैसे सिंहपर टूट पड़ता है वैसे ही, जगको कम्पित करनेवाला रावण सहस्रकिरणपर टूट पड़ा ॥१॥

[१] उसने अपने अनुचरों तथा मारीच मय शुक, सारण इन्द्रकुमार मेघवाहन हस्त प्रहस्त विभीषण, कुम्भकर्ण खर और दूषण शशिकर सुग्रीव नाल नल तथा और दूसरे अनिर्दिष्ट बाहुवाले वीरोंने मत्सरसे मलिन होकर भयकर हथियारोंको उठा लिया। इधर सहस्रकिरण भी वनितासमूहसे घिरा हुआ अल्ली-झल्ली पानीसे निकला। इतनेमें तूय सुनाई देने लगे। अनुचरोंने आकर निवेदन किया "देव! शत्रु आक्रमण कर रहा है हथियार ले लीजिए। युद्ध निकट

आ गया है।" यह सुनते ही, धनुष हाथमें लेकर वह राक्षसोंके प्रबल समूहके सम्मुख ऐसे स्थित हो गया मानो महागजघटाके सम्मुख सिंह हो गया हो ॥१-५॥

[२] धनुष लेकर, उसे युद्धके लिए तैयार देखकर स्त्रियाँ घबराईं, तब खिन्नमन होकर उसने ढाढ़स बँधाते हुए कहा, 'डरो मत। क्या सहस्रकिरण किसी दूसरेका नाम है। तुम्हें क्या डर है, मेरा एक-एक हाथ तुम्हारी रक्षा करेगा? धरतीमण्डपमें तुम लोग उसी तरह बैठी रहो, जैसे हथिनी गिरि-गुहामें घुसकर छिपी रहती है। मैं जो हाथियोंके कुम्भस्थलोंको फाड़ूँगा उससे परिवारके लिए आमदनी हो जायगी और जो बड़े-बड़े हाथी-दाँत उखाड़ूँगा उनसे प्रजाको मूसल मिल जायँगे। जो उनके सिरोंसे मोती निकालूँगा उनसे तुम्हारे हार बन जायँगे और जो फहराती हुई पताकाओंके कपड़े फाड़ूँगा उनसे चाटी बाँधनेके सैकड़ों फीते (रिबन) बन जायँगे।" इस तरह उन्हें धीरज बँधाकर वह वीर नरवर रथपर चढ़ गया। स्त्रियोंकी करुणासे वह ऐसा लग रहा था मानो पिता सारथिका सूत ही आ पड़ा हो ॥१-६॥

[३] इसी बीच योद्धाओंने उसे रोका मानो हाथियोंके झुण्डने शरभको रोका हो। वह वीर अकेला ही था जब कि सेना अनन्त थी। फिर भी उसका मुखकमल एक दम खिला हुआ था। उसे इस तरह अकेला लड़ता देखकर देवोंने आपसमें (योद्धा पार्थोंमें) कहा 'अरे राक्षस यह बहुत बड़ी अनीति कर रहे हैं पर अकेला है और ये बहुत हैं इसपर भी। ये आकाशमें स्थित होकर पवन पहाड़ पानी और आगके अस्त्रोंसे हमला कर रहे हैं इनके समान कायर कोई भी नहीं है।" यह सुनकर राक्षस लोग बहुत ही लज्जित हुए। अपनी-अपनी विमानें छोड़कर वे

घत्ता

तं णिसुणेप्पिणु पभु करें लेप्पिणु णिसियर-पवर-समूहहों।
थिउ समुहाणणु ण पञ्चाणणु माहें महा-गय-जूहहों ॥१॥

[२]

ण कुम्भ-सम्मु थिउ लेवि चाउ। तं हरिउ असेसु वि सुभयणु ॥१॥
मम्भीसिउ राएं कुम्भ-सम्मु। 'किं अप्पहों णाई सहसकिरणु ॥२॥
एक्केक्कहों एक्केक्कउ जें कउ। परिरक्खइ जइ तो कवणु जउ ॥३॥
अप्पाहों भुव-मण्डवें पइसरेंवि। थिर करेंवि गिरि-गुह पइसरेंवि ॥४॥
का एक्कमि कुम्भि-कुम्भत्थलाइं। दीसन्ति कुसुम्भिहिं उज्जलाइं ॥५॥
का कन्तमि विसाणइं पवराइं। दीसन्ति पमहा पब्भराइं ॥६॥
का कड्ढमि करि-सिर मोत्तियाइं। दीसन्ति कुसुम हारत्तियाइं ॥७॥
का पाडमि फरहरन्त-धयाइं। दीसन्ति वेल्लि-पल्लव-सयाइं ॥८॥

घत्ता

एम भणेप्पिणु तं धीरेप्पिणु चलइ रहवरें चडियउ।
कुवलयहुं कमलोम(?) × × विणु असणिं णाइं दिवायरु पडियउ ॥९॥

[३]

एत्थन्तरें आरोडिउ मउडीहिं। ण केसरि मत्त-हत्थि-हडहिं ॥१॥
सो एक्कु अणन्तउ जइ वि बलु। पच्चुत्तउ तो वि तहों सुर-कमलु ॥२॥
जं मइउ णवहों सहसमउ। त चडिउ परोप्परु सुर-पवरु ॥३॥
'जहों जहों' भणीइ रक्खोहिं किय। एक्कु एँ बहु अप्पु वि गयणें थिय ॥४॥
पहरणइं पवण-गिरि-वारि-हवि। आएहिं सरिस कवणु जीउ न वि ॥५॥
तं णिसुणेंवि णिसियर खलियाइं। थिय मण्डवेंहिं णिज-णिवणियाइं ॥६॥

आ गया है।" यह सुनते ही, धनुष हाथमें लेकर वह राक्षसोंके प्रबल समूहके सम्मुख ऐसे स्थित हो गया मानो महागजघटाके सम्मुख सिंह आ गया हो ॥१-८॥

[२] धनुष लेकर, उसे युद्धके लिए तैयार देखकर स्त्रियाँ घबराईं, तब खिन्नमन होकर उसने ढाढ़स बँधाते हुए कहा, 'डरो मत। क्या सहस्रकिरण किसी दूसरेका नाम है। तुम्हें क्या डर है, मेरा एक-एक हाथ तुम्हारी रक्षा करेगा ? धरतीमण्डपमें तुम लोग उसी तरह बैठी रहो जैसे हथिनी गिरि-गुहामें घुसकर छिपी रहती है। मैं जो हाथियोंके कुम्भस्थलोंको फाड़ूँगा उससे परिवारके लिए भात्मली हो जायगी और जो बड़े-बड़े हाथी-दाँत उखाड़ूँगा उनसे प्रजाको मूसल मिल जायँगे। जो उनके सिरोंसे मोती निकालूँगा उनसे तुम्हारे हार बन जायँगे और जो फहराती हुई पताकाओंके कपड़े फाड़ूँगा उनसे चोटी बाँधनेके सैकड़ों फीते (रिबन) बन जायँगे।" इस तरह उन्हें धीरज बँधाकर, वह वीर नरवर रथपर चढ़ गया। स्त्रियोंकी करुणासे वह ऐसा लग रहा था मानो बिना सारथिका सूर्य ही आ पड़ा हो ॥१-६॥

[३] इसी बीच योद्धाओंने उसे रोका मानो हाथियोंके झुण्डने शरभको रोका हो। वह बार अकेला ही था जब कि सेना अनन्त थी। फिर भी उसका मुखकमल एक दम खिला हुआ था। उसे इस तरह अकेला नरवरको देखकर आपसमें (यानों-यानोंमें) कहा "अरे राक्षस यह बहुत बड़ी अनीति कर रहे हैं, पर अकेला है, और ये बहुत हैं। इसपर भी ये आकाशमें स्थित हाथ पवन पहाड़ पानी और आगके अस्त्रोंसे हमला कर रहे हैं इनके समान कायर कोई भी नहीं है।" यह सुनकर राक्षस लोग बहुत ही लज्जित हुए। अपनी-अपनी विद्याएँ छोड़कर व

जो सहसकिरणु सहसहिँ करेँहिँ । ण विराइ सहस-सहस-सरेँहिँ ॥७॥
दूरहोँ वि णिरन्तर णहरि-भउ । ण अमूलीणेँ रयणि-चउ ॥८॥

घत्ता

अणुदिण-णामहोँ किय-संथामहोँ दिट्ठि-मुट्ठि-सर-पयारहोँ ।
पासु ण ढुक्कइ तें उल्लुकइ तिमिरु जेम दिवसयरहोँ ॥९॥

[७]

अट्ठावय गिरि कम्पावणहोँ । परिहारेँ भणिउ रावणहोँ ॥१॥
'परमेसर एक्कें होन्तएँण । मइँ सयलु धरिउ पहरन्तएँण ॥२॥
एवँ रहवरु एक्कु जेँ परिभमइ । सम्वय-सहासु ण परिभमइ ॥३॥
पट्टु एक्कु एक्कु धउ हुउ जेँ कर । चउदिसहिँ णवर भिउडन्ति सर ॥४॥
कउ कहोँ वि कहोँ वि उर कप्परिउ । कहि कहोँ वि कहोँ वि सिरु उत्तरिउ' ॥५॥
तं णिसुणेँवि रयणि जेम तुट्टिउ । कहु तिजगविहूसणेँ आरुहिउ ॥६॥
गउ तेत्तहेँ जेत्तहेँ सहसकरु । कोक्किउ 'मउ पाव पहरु पहरु ॥७॥
एँ रावणु दुम्मुहु जेम थिउ । तं पारावउ जणउ किउ ॥८॥

घत्ता

एम भणन्तेंण विहसन्तेंण स-रहि महारहु चिन्धउ ।
पवण-सहासेंहिँ सर-पासेंहिँ बद्धु चउदिसु णिबद्धउ ॥९॥

[८]

माहेसरपुर-णाहु विरहु किउ । णिविसेँ मत्त-गइन्दें थिउ ॥१॥
तं अजुण-मणिहरेँ सरण गउ । उत्थरिउ स-मच्छरु वीर-भडु ॥२॥

धरतीपर आ गये। तब सहस्रकिरण अपने हजार हाथोंसे प्रहार करने लगा मानो शेष नाग ही अपने हजार फनोंसे वमन करने लगा हो। दूरसे उसने शत्रु सेनाको ऐसे रोक लिया मानो जम्बुद्वीपने समुद्रका जल रोक लिया हो। स्थानका विचारकर, तीर चढ़ाकर वह दृष्टि-मुष्टि और तीरोंसे ऐसा प्रहार कर रहा था कि शत्रुसमूह पास नहीं फटक पा रहा था, वह (युद्धमें) वैसा ही छिप गया जैसे सूर्योदयसे अन्धकार छिप जाता है॥१-६॥

[४] इतनेमें, प्रतिहारोंने कैलाश पर्वतको भी कँपानेवाले रावणसे कहा—"परमेश्वर, अकेले होकर भी उस एकने हमारी समस्त सेनाको प्रहारसे परास्त कर दिया। युद्धमें उसका एक ही रथ घूमता है, पर लगता ऐसा है मानो हजार रथ घूम रहे हों धन्य है, कि वह अकेला है, और दो ही उसके हाथ हैं, फिर भी चारों दिशाओंमें तीरोंकी बौछार हो रही है। किसीका हाथ, किसीका सर टूट-फूट गया है। किसीका हाथी तो किसीके रथ चकनाचूर हो गये हैं।" यह सुनते ही रावण समुद्रकी भाँति क्षुब्ध हो उठा। शीघ्र ही त्रिजगभूषण हाथीपर चढ़कर वह सहस्रकिरणके पास पहुँचा और ललकार कर बोला—"लो प्रहार करो और मरो मैं रावण हूँ। मुझे कौन जीत सकता है। मैंने यमराजको भी विमुख कर दिया था।" यह कहकर उसने तीरोंकी बौछारसे महार्घ्यी सहस्रकिरणको रथसहित छिन्न-भिन्न कर दिया। तब चारों ओर फैले हुए बन्दीजनोंने चारों दिशाओंमें उसका यश फैला दिया॥१-६॥

[५] तब माहेश्वर पुरपति सहस्रकिरण रथहीन होते ही आप ही पद्मके हाथीपर आ बैठा। वह ऐसा लग रहा था मानो अंजन गिरि पर्वतपर शरदके नवमेघ ही प्रतिष्ठित हों। आवेगमें

सव्वाउ सुरप्पें कप्पविउ । सङ्घारिउ सरु ण समुव्वरिउ ॥१॥
बे सव्वाबाणें मुयइ सर । तुङ्ग-पयल पविय ण वसन्ति घर ॥२॥
दससयकिरणेण सिरिसिरिसपउ । पच्चारिउ 'कहिँ वसु सिसिरपउ ॥३॥
पच्चारिय ताम अप्पणु करें । पच्चक्खें सुम्मेसमि पुणु समरें ॥४॥
त णिसुणेंवि कमेण ण बोइयउ । कुद्धउ कुम्भरहें पचोइयउ ॥५॥
आसण्णें थोर्वेवि विगय-मउ । णरवइ णियाउँ कोन्तेण हउ ॥६॥

घत्ता

जाम भयङ्करु जसिवर-बल पहरइ मच्छर-भरियउ ।
ताम दसासेण आयासेण उप्पएवि पवु धरियउ ॥९॥

[९]

थिउ णिय-णियवहों मय-विवज्जियउ । ण मत्त महागउ णियम्भियउ ॥१॥
मा मइ मि भरेसइ दहवयणु । ण भइयएँ रवि गउ अत्थवणु ॥२॥
पसरिउ अन्धारउ पमोयमउ । ण णिसिएँ चित्त ससि-परिमउ ॥३॥
ससि उग्गउ सुन्दरु सुसोहियउ । णं जग-हरें दीवउ बोहियउ ॥४॥
सुविहाणें दिवायर उग्गमिउ । णं रयणिहिँ मइयवहु भमिउ ॥५॥
ता णवर महव्वाराय-रिसिहिँ । समकरहों विणाविय-मय-णिसिहिँ ॥६॥
गय वल 'सहसकिरणु पविउ । चउविह-रिसि-सङ्घें परिवरिउ ॥८॥

घत्ता

रावणु अप्पएँ गउ (सो) तेत्तहें पत्त महावय-धारउ ।
थिउ दसासेण सेवन्तेंण जायइ णियइ महारउ ॥९॥

आकर, अपना विशाल धनुष लेकर वह उछला। सन्नद्ध होकर उसने क्षुरप्र चलाया पर रावण किसी तरह बच गया। पूरे वेगसे जब वह तीर छोड़ता तो वे ऐसे लगते मानो पराधीन होकर पक्षी ही धरतीको आ रहे हैं। सहस्रकिरण रावणको देखकर बोला, "तुमने धनुष कहाँ सीखा, जाओ-जाओ अभ्यास करो फिर बादमें आकर युद्धमें लड़ना" ॥१–६॥

यह सुन और यमकी तरह देखकर रावणने उसके हाथीपर अपना हाथी दौड़ाया। पास आकर उसने निडर होकर, सहस्र-किरणके मस्तकपर भालेकी मार की। वह भी मत्सर से भरकर, तलवारसे आघात पहुँचाना ही चाह रहा था कि रावणने उछल कर उसे पकड़ लिया ॥७–९॥

[९] वह बँधे हुए मदविगलित महागजके समान उसे अपने डेरेपर ले आया। इतनेमें इस आशंकासे कि रावण मुझे भी न पकड़ ले, सूरज भी डूब गया। कुछ अन्धकार ऐसे फैलने लगा मानो रातने स्याहीकी पोटली ही बिखेर दी हो। कुछ देर बाद चन्द्रमाका उदय हुआ मानो विश्वरूपी घरमें दीपक जल उठा हो ॥१–४॥

फिर सुन्दर प्रभातमें सूरज निकल आया मानो रातने अपना सब धन ही चुरा लिया हो। इसी बीच भवनिशाका अन्त करनेवाले जंघाचरण ऋषि शतबाहुके पास आकर किसीने यह खबर पहुँचा दी कि सहस्रकिरण पकड़ लिया गया है। तब अपने संघको लेकर वह वहाँ गये जहाँ रावण था। पाँच महाव्रतों का धारण करनेवाले उन्हें रावणने इस तरह देखा मानो राजा श्रेयांसने ऋषभजिनको ही देखा हो ॥५–८॥

[७]

गुरु वन्दिय णिग्गय णासणइँ । मणि-वेयडियइँ सुर-दंसणइँ ॥१॥
मुणि-पुङ्गव चवइ विसुद्धमइ । 'सुणेँ सहसकिरणु कहाणियइ ॥२॥
पॅहु परिमेट्ठु सामण्णु ण वि । महु तणउ अप्प-णाहेव-रवि' ॥३॥
तं णिसुणेंवि वस-कम्माणणेंण । पणवेप्पिणु वुच्चइ रावणेंण ॥४॥
'महु एण समाणु कोउ कवणु । णर पुणर्वे कारणें वाउ लहु ॥५॥
कम्म वि एउ वॅ णउ सा वि सिय । अणुहुणउ मेइणि वेस तिय' ॥६॥
तं णिसुणेंवि सहसकिरणु चवइ । 'दसमहाँ एउ कि संभवइ ॥७॥
तं मणहर सलिल-कीला करेंवि । पइँ समउ महाहवें उत्थरेंवि ॥८॥

घत्ता

एवहिँ मामएँ विण्णावएँ राय-सिरियएँ कि किज्जइ ।
वरि थिर-जसहर अजरामर सिद्धि-वहुय परिणिज्जइ' ॥९॥

[८]

तें वयणें सुणउ तिहुअण-मइ । मायेसर पवर पुराहिवइ ॥१॥
पिय जम्मणु जिणवर-वार्ने गवेंवि । परिवणु पहउ पव संजमें वि ॥२॥
विच्छण्णु समउ णिगय-भउ । रावणु वि पयालउ देवि गउ ॥३॥
परिपेसिउ सहु पइयमाहाँ । अमरच्चाहाँ वम्महाँ रामाहाँ ॥४॥
सुर-णाउ कहिउ 'दहमुहेंण जिउ । कइ सहसकिरणु तव-चरणें थिउ' ॥५॥
तं णिसुणेंवि अवइ हरिसउ । ईसीसि विसाउ पदरिसियउ ॥६॥
संगाम-महत्तेंहिँ हूमरहाँ । जिय सयल समप्पेंवि दसरहाँ ॥७॥
सहसत्ति सो वि णिरवज्जु गउ । अण्णु वि तहाँ तणउ अणरण्णु ॥८॥

घत्ता

णाम सुहेंमेंण महेंमेंण जसहर अणुहरमाणउ ।
जाणु पयाणें वि रिउ तासें वि मग्गइँ भुवणु पयाणउ ॥९॥

[७] तब गुरुकी वन्दना-भक्तिकर, रावणने उन्हें मणिरत्नोंका शुभ दर्शनीय आसन दिया। विशुद्धमति मुनिश्रेष्ठ शतबाहु बोले, "लंकानरेश, तुम सहस्रकिरणको मुक्त कर दो। यह साधारण जन नहीं, प्रत्युत चरमशरीरी है। यह मेरा पुत्र है जो भव्यजन रूपी कमलोंके लिए सूर्य है।" यह सुनकर यमसंतापक रावणने प्रणाम पूर्वक उत्तर दिया "इसपर मेरा जरा भी क्रोध नहीं। केवल जिन पूजाको लेकर हम दोनोंमें युद्ध हुआ। हे प्रभु, यह चाहें तो आज भी अपनी राज्यश्री और धरतीका उपभोग कर सकते हैं।" यह सुनकर सहस्रकिरण बोला "अरे इस सबसे क्या सम्भव है। उस जलक्रीड़ा और जमकर आपसे हुए युद्धमें जो आनन्द आया वह अब इस नीरस राज्यश्रीके उपभोगमें कहाँ? इससे अच्छा तो यह है कि मैं स्थिर सुखवाली अजर और अमरमुक्तिरूपी वधूका पाणिग्रहण करूँ" ॥१-९॥

[८] इतना कहते ही रावणने माहेश्वरपुरके अधिपति सहस्रकिरणको मुक्त कर दिया। वह भी अपने पुत्रको राज्य-गद्दीपर बैठा तथा नगर और प्रजाकी व्यवस्था करके अभय होकर, बापके पथमें ही दीक्षित हो गया। रावणने भी वहाँसे प्रस्थान किया। इसके बाद अयोध्याके मुख्य राजा अनरण्यके पास इस आशयका पत्र भेजा गया कि रावणसे, जीते जी बचकर सहस्रकिरण जिन-दीक्षा लेकर तपमें रत हो गये हैं। यह सुनकर अयोध्या-नरेश अनरण्यको बहुत प्रसन्नता हुई और थोड़ा-सा खेद भी। अन्तमें उसने भी हजारों पुत्रोंमें सुन्दर अपने पुत्र दशरथको समस्त राज्यश्री देकर अपने पुत्र अनन्तरथके साथ दीक्षा ले ली। इधर सुध्रा और रावणने यमधरके समान एक ब्राह्मण यज्ञका ध्वस्तकर शत्रुको सताकर, मगधके लिए प्रस्थान किया ॥१-९॥

[६] नारदको धीरज बँधाकर, राजा मरुको अपने अधीन बनाकर उसकी लड़कीसे रावणने विवाह कर लिया। नौ पर्व वहाँ ठहरकर वह मगधकी ओर गया। मधुपुरके राजा मधुको आशङ्कित देखकर उसे अपने वशमें कर लिया। इस राजाको चमरेन्द्र देवने, समस्त शस्त्रोंमें श्रेष्ठ, शूलायुध नामका मन्त्र दिया था। रावणने उसकी लड़कीसे भी विवाह कर लिया और अब उसने कैलाश पर्वतकी ओर कूच किया। मार्गमें उसे चन्द्रकान्त मणियोंके निर्झरोंसे भावित सुन्दर गंगा नदी दीख पड़ी। गजमद के जलसे उसके दोनों तट मटमैले हो रहे थे अश्व और गजोंके साथ सवार उसमें स्नान कर रहे थे। जिन-मन्दिरोंकी वन्दना करनेके अनन्तर, विविध निर्वाण-स्थानोंको नव वधूको दिखाते हुए वह बोला, "सिद्धवधूके मुखकमलके भ्रमर बाहुबलि यहाँ मुक्त हुए और यहीं, इस आतापिनी शिलापर भट्टारक बालि विराजमान थे जिनके भारी पदभारसे मैं कछुएके आकारका हो गया था ॥१-९ ॥

[१०] यम धनद और सहस्रकिरणका दमन करनेवाला रावण अष्टापद पर्वतपर आकर ठहरा। इसकी खबर दुर्लंघ्य नगरके राजा नलकूबरके पास पहुँची। वह इस सोचमें पड़ गया कि शत्रु सेना अत्यन्त निकट है। इन्द्र-युद्धमें भी अजेय रावण इस समय जिनकी वन्दना-भक्तिके लिए सुमेरुपर गया है। तब तक क्या उपाय करना चाहिए। यह सुनकर राजा नलकूबरके मन्त्री हरिदमनने उसे यह परामर्श दिया "शक्तिशाली मन्त्रोंको पढ़वा दो नगरके चारों ओर आशाली विद्या स्थापित करवा दो जिससे नगर अजेय और अभेद्य हो जाय, और राक्षस उसका सुराग भी न पा सकें।" यह सुनकर राजाने वैसा ही किया।

और उसने उस नगरको सतीके मनकी तरह अलङ्घ्य बना दिया। परन्तु यशके लोभी रावणके अनुचरोंने उस नगरको वैसे ही घेर लिया जैसे 'वप' को आरह माह घेरे रहते हैं॥१-८॥

[११] तदनन्तर, रावणके अनुचरोंने उन यन्त्रोंसे घबड़ाकर व्याकुलताके साथ आकर कहा "हे परम आदरणीय, यह नगर दुर्लंघ्य है, वैसे ही जैसे सिद्धपुर कुसाधुओंके लिए अलंघ्य होता है। यम-मुक्त यमकरणोंकी भाँति वहाँ सैकड़ों यंत्र लगे हुए हैं, एक योजनके आगे जो भी जायगा वह वहाँसे जीवित नहीं लौट सकता।" यह सुनकर रावण चिन्तामें पड़ गया। इसी बीच नलकूबर राजा की पत्नी उपरम्भा, रावणकी परोक्ष प्रशंसा सुनकर उसी तरह आसक्त हो उठी जिस तरह मधुकरी गंधवाससे फूल पर मुग्ध हो उठती है। वह कामकी दसवीं अवस्थामें पहुँच गई। कपूर चन्द्रमा, शीतल जलके छींटे, चन्दन और कमल, कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। विरहसे दग्ध होकर वह केवल किसी तरह प्राण नहीं छोड़ पा रही थी। यह मेरा यौवन यह वह रावण, और यह कुटुम्बकी सम्पदा सब ठीक है। उसने अपनी सहेलीसे कहा "किसी तरह उससे मिला सको तभी मेरा जीवन सफल है"॥१-६॥

[१२] यह सुनकर उसकी सहेली चित्रमाला बोली 'हला, मेरे रहते क्या सम्भव नहीं हो सकता। शीघ्र आज्ञा दो मेरे लिए यह कितना-सा काम है मैं ऐसा ही मार्ग ढूँढ़ निकालूँगी कि रावण तुम्हारे ऊपर आसक्त हो जाय।" यह सुनते ही उपरम्भाके मधुर अधरोंवाले मुखकमलपर हलकी मुसकान खिल गई। उसने तब फिर कहा "हे शशि-मुखी और हंसगति वाली सखी! यदि वह सुभग किसी तरह मुझे न चाहे, तो यह आशाली विद्या उसे देकर

यह कहना कि सेनाकी पंक्तिको तोड़ने वाला इन्द्रका सुदर्शन चक्र भी मेरे पास है।" यह सुनकर, दूती निकली और सीधी रावणके डेरेपर गई। उपरम्भाने जो कुछ कहा था वह सब ज्यों-का-त्यों बताते हुए, दूतीने सुरसतापक रावणसे कहा, "निश्चय ही हमारी स्वामिनी आपकी विरह-अग्निमें झुलस रही है" ॥१-८॥

[१३] यदि आप उपरम्भाको चाहने लगे तो जो कुछ आप साथ रहे हैं वह सब सम्भव हो जाय। आशाली विद्या, सुदर्शन चक्र और नलकूबर सभी कुछ सिद्ध हो सकता है। यह सुनकर विचक्षण-बुद्धि रावणने विभीषणका मुख देखा दूतीका स्नानके लिए विसर्जित कर दोनों भाई विचार-परामर्श करने लगे। वह बोला "ओह उसकी इतनी हिम्मत! ठीक भी है स्त्री जो कर सकता है, वह पुरुष नहीं कर सकता।" सचमुच असती स्त्री यम-नगरीकी तरह भयंकर संसारका नाश करनेवाली बिजली, विष भरे साँपका फन और आगकी प्रचण्ड ज्वाला होती है। असती स्त्री मनुष्यको बहा ले जानेवाली नदी तथा परकी बाप होती है।" तब शुभ वचनोंमें विभीषणने कहा—"यहाँ पर इस प्रसंगमें यह सब कहना ठीक नहीं जँचता। हे स्वामी सुनो इस समय इसे छोड़कर भेद पानेका दूसरा उपाय नहीं दिख रहा है" ॥१-८॥

[१४] अत यदि आप धन सुवर्णसे समृद्ध नगर तथा शत्रुपर विजय पाना चाहते हैं तो कपटसे झूठमूठ ही यह कह दीजिए कि मैं उसे चाहता हूँ। फिर पुंश्चलीसे भूठ बोलनेमें कौन-सा पाप है। किसी तरह पहले विद्या प्राप्त कर लो, फिर चाहे उसे मत छूना।" यह सुनकर रावण उस स्थानपर गया जहाँ स्नान करके दूती निकल रही थी। उसने उसे दिव्य वस्त्र रत्नोंकी

सुणइ रावणु मउ विग-सुलसु । इन्दामणु भणइ सुभसिसु ॥७॥
त णिसुर्णेवि दूर्इ णिमाइय । महुसाषासु ममर गइय ॥८॥

घत्ता

कहिउ दसासहों सुर-तासहों जं उवरम्भएँ वुत्तउ ।
'पत्थिउ राएँण तुह विरहेंण सामिणि मरइ णिरुत्तउ' ॥९॥

[१६]

उवरम्भ समिच्छहि मम्मु जइ । तो जं चिन्तहि तं संभवइ ॥१॥
आसाली सिज्झइ सुरवइ वि । सुरवरिसणु चक्कु सकुम्भर वि ॥२॥
तं णिसुणेंवि सुरहु णियसकमहों । अवलोइउ वयणु विहीसणहों ॥३॥
पइसारिय दूर्इ मन्तणएँ । थिय वे वि सहोयर मन्तणएँ ॥४॥
'कहों सामहु पमणइ पत्तु सुणवि । जं मज्झिउ मरइ तं पुरिसु ण वि ॥५॥
दुम्महिय वि भीसण समर-धुरि । दुम्महिउ वि असणि वयन्त-धरि ॥६॥
दुम्महिउ वि स विस सुप्पा-भउ । दुम्महिउ वि महुरस-महिस-भउ ॥७॥
दुम्महिउ वि गयण वाहि परहों । दुम्महिउ वि वहिणि सर्ममें घरहों' ॥८॥

घत्ता

भणइ विहीसणु सुह-दंसणु 'पत्तु पउ ण बहइ ।
सामि णिसण्णहों पर कण्णहों भेयहो अवसरु बहइ ॥९॥

[१७]

जइ कारणु णाहिँ सिवरपएँण । भवहों धण-कणय-समिद्धएँण ॥१॥
तो कज्जेण वि 'इच्छामि' भणु । दुग्गहि मसवि दोसु कवणु ॥२॥
तुहु केम वि विरह समावडइ । उवरम्भ तुम्हु पुणु मा मरउ ॥३॥
तं णिसुणेंवि गउ दुरणिउ तर्हिं । मज्झणयहों णिम्माय दूइ जहिं ॥४॥

आभासे चमकते हुए आभूषण, केयूर, हार, करधनी और कन्कसे युक्त नूपुर दिये और फिर सन्तुष्ट मनसे उससे आशाली विद्या माँगी। प्रसन्न होकर उसने भी दे दी। वह मूर्खा अपना अहित नहीं समझ सकी ॥१-८॥

तब विराम आकाशमें गरजती हुई आशाली विद्या रावण के पास ऐसे आ गई मानो शोभा ही नलकूबर राजाको छोड़कर उसके पास आ गई हो ॥६॥

[१५] दूतीके आते ही उसके भट कोलाहल करने लगे। उन्होंने गजघटाओंसे नगरको घेर लिया। सन्नद्ध होकर रावण निश्चित मनसे नलकूबरसे भिड़ गया। उसका दुर्जेय महायुद्ध होने लगा। सेनासे सेना, रथसे रथ, हाथीसे हाथी, अश्वसे अश्व, राजासे राजा, शस्त्रधारीसे शस्त्रधारी और ध्वजसे ध्वज टकरा गये तथा वैमानिकोंसे वैमानिक जुट गये। जैसे रावणने युद्धमें मयङ्कर सहस्रकिरणको पकड़ लिया था वैसे ही उस घोर युद्धमें विभीषणने नलकूबरको रथहीन कर, तत्काल पकड़ लिया। रावणको उस नगरके साथ सुदर्शन चक्र भी प्राप्त हो गया। पर उसने उपरम्भाका नहीं चाहा उसके नगरके राजा नलकूबरसे अपनी सेवाकी प्रतिज्ञा करवाई। वह भी उपरम्भाके साथ रमण करता हुआ स्वयं राज्य भोग करने लगा।

•

सोलहवीं संधि

नलकूबरके पकड़े जाने और रावणकी विजय-घोषणासे चिन्तित होकर इन्द्र अपने मन्त्रियोंसे विचार-विमर्श करने बैठा।

[१] इसनेमें उसके भेजे गुप्तचर आये। उसने उनसे पूछा—"जल्दी बताओ रावण कैसा क्या है और उसकी शक्ति कितनी है, सेना कितनी है, और प्रजा कैसी है ? उसमें कौनसे व्यसन हैं, उसे, कौनसे गुण और विनाद पसन्द हैं।" यह सुनकर रावणके गुणोंसे प्रेरित होकर गुप्तचरोंने कहना शुरू किया, "हे परमेश्वर ! युद्धमें रावण अचिन्त्य है। उत्साह, मन्त्र और प्रभु शक्तियोंमें वह बहुत बढ़ा-चढ़ा है। चारों विद्याओंमें कुशल, और ६ गुणोंका निवास है वह। वह ६ शक्तियों और ७ प्रकृतियोंका जानकार है। सात प्रकारके व्यसनोंसे रहित वह, बुद्धि, शक्ति, क्षमा, संयम और धैर्यसे परिपूर्ण है। छह प्रकारके अन्तरंग शत्रुओंका नाशक वह *अठारह प्रकारके तीर्थोंका पालन करनेवाला है।* उसके प्रशासनमें सभी लोग सम्मानित हैं। क्रोधी लोभी दरपोक अथवा अपमानित एक भी नहीं है ॥१–६॥

---

१ शक्तियाँ ३ हैं—प्रभु मन्त्र और उत्साह। विद्याएँ ४ हैं—आन्वीक्षिकी त्रयी, वार्ता और दण्डनीति। सांख्य योग और लोकायतको आन्वीक्षिकी कहते हैं। साम ऋग् और यजुर्वेद त्रयी कहलाते हैं। कृषि पशुपालन और वाणिज्य वार्ता है। गुण ६ होते हैं—संधि विग्रह यान आसन संश्रय और द्वैधीभाव। बल ६ हैं—मूलबल भृत्यबल श्रेणिबल मित्रबल, अमित्र बल और आटविकबल। प्रकृतियाँ ७ हैं—स्वामी अमात्य राष्ट्र, दुर्ग कोष सेना और सुहृद्। व्यसन ७ हैं द्यूत मद्य मांस वेश्यागमन पापर्द्धि चोरी परस्त्रीसेवन। अन्तरंग शत्रु ६ हैं—काम क्रोध लोभ मान मद और हर्ष। तीर्थ अठारह हैं—मन्त्री पुरोहित सेनापति युवराज दौवारिक, अन्तर्वंशिक प्रशास्ता, समाहर्ता संनिधाता प्रदेष्टा नायक, पौर व्यावहारिक, कर्मान्तिक, मन्त्रि-परिषद्, दण्ड दुर्गान्तपाल और आटविक।

सोलहवीं संधि

मलकूबरके पकड़े जाने और शत्रुकी विजय-घोषणासे चिन्तित होकर इन्द्र अपने मन्त्रियोंसे विचार-विमर्श करने बैठा ।

[१] इतनेमें उसके भेजे गुप्तचर आये । उसने उनसे पूछा —"जल्दी बताओ, रावण कैसा क्या है, और उसकी शक्ति कितनी है, सेना कितनी है और प्रजा कैसी है ? उसमें कौनसे व्यसन हैं, उसे कौनसे गुण और विनोद पसन्द हैं ।" यह सुनकर रावणके गुणोंसे प्रेरित होकर गुप्तचरोंने कहना शुरू किया, "हे परमेश्वर ! युद्धमें रावण अचिन्त्य है । उत्साह, मन्त्र और प्रभु शक्तिमें वह बहुत बढ़ा-चढ़ा है । चारों विद्याओंमें कुशल, और ६ गुणोंका निवास है वह । वह ६ शक्तियों और ७ प्रकृतियोंका अलंकार है । सात प्रकारके व्यसनोंसे रहित वह, बुद्धि, शक्ति क्षमा संयम और धैर्यसे परिपूर्ण है । छह प्रकारके अन्तरंग शत्रुओंका नाशक वह अठारह प्रकारके तीर्थोंका पालन करनेवाला है । उसके प्रशासनमें सभी लोग सम्मानित हैं । क्रोधी लोभी, डरपोक अथवा अपमानित एक भी नहीं है ॥१–५॥

---

१ शक्तियाँ ३ हैं—प्रभु मन्त्र और उत्साह । विद्याएँ ४ हैं—आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता और दण्डनीति । सांख्य योग और लोकायतको आन्वीक्षिकी कहते हैं । साम ऋग् और यजुर्वेद त्रयी कहलाते हैं । कृषि पशुपालन और वाणिज्य वार्ता है । गुण ६ होते हैं—संधि विग्रह यान आसन संश्रय और द्वैधीभाव । बल ६ हैं—मूलबल भृत्यबल श्रेणिबल मित्रबल, अमित्र बल और आटविकबल । प्रकृतियाँ ७ हैं—स्वामी अमात्य राष्ट्र दुर्ग कोष सेना और सुहृद् । व्यसन ७ हैं द्यूत मद्य मांस वेश्यागमन पापर्द्धि चोरी परस्त्रीसेवन । अन्तरङ्ग शत्रु ६ हैं—काम क्रोध लोभ, मान मद और हर्ष । तीर्थ अठारह हैं—मन्त्री पुरोहित सेनापति युवराज दौवारिक, अन्तर्वंशिक प्रशास्ता समाहर्ता संनिधाता प्रदेष्टा नायक पौर व्यावहारिक, कर्मान्तिक, मन्त्रि-परिषद्, दण्ड दुर्गान्तपाल और आटविक ।

[२] नीतिके बिना वह एक भी पग नहीं रखता। उसका समय अठारह विनोदोंमें बीतता है। आधे प्रहर वह प्रशासनोंकी खोज-खबर लेता और अन्तःपुरका निरीक्षण करता है। आधे प्रहर कन्दुक-क्रीड़ा और दरबार लगाता है। आधा प्रहर स्नान और देवपूजामें जाता है। आधा प्रहर भोजन कपड़े पहनना और विलेपन आदिमें जाता है। आधा प्रहर वह द्रव्यका अवलोकन करता तथा उपहार, प्रतिउपहार सम्हालता है। आधा प्रहर आये हुए लेख पढ़ता है, तथा शासनपर आदिको भी वही देखता है। आधा प्रहर स्वच्छन्द विद्याविनोद और आभ्यंतरिक मन्त्रणामें जाता है। आधे पहरमें सारे सैनिकोंका निरीक्षण, तथा रथ, अश्व गज तथा आयुधोंका अनुसन्धान करता है। आधा पहर उसका सेनापतिसे बातचीत करनेमें जाता है। इस प्रकार शत्रुमण्डलके कुपित होनेपर उसे उसके स्थानपर प्रतिबिम्ब समझो ॥१-६॥

[३] हे इन्द्र! दिनकी तरह ही उसकी रात भी आठ भागोंमें बीतती है। पहले प्रहरार्धमें वह गुप्तचरोंके साथ बैठकर बातें करता है, दूसरेमें नहा-धोकर आसन अथवा नरपतियोंसे शुभ भेंट करता है। तीसरेमें तूर्यके महाशब्दके साथ प्रसन्नमन वह, अन्तःपुरमें जाता है। चौथे और पाँचवेंमें शयन तथा चारों ओर से दृढ़ परिरक्षणमें व्यस्त रहता है। छठेमें पटहके शब्दसे उठकर शास्त्रोंका अर्थ समझता है। सातवेंमें मन्त्रियोंके साथ मन्त्रणा, और अपने राज-कामकी चिन्ता करता है। आठवेंमें प्रतिहारोंका मेजकर वैद्यसे समापन करता रसोई घरके लोगोंसे पूछता तथा नैमित्तिकों और ज्योतिषियोंसे भेंट निपटाता है ॥१-८॥

इस प्रकार वह दिन रातका पूरा समय सोलह भागोंमें बाँट कर बिताता है। युद्धके नामसे ही उसका मन दूने उत्साहसे भर जाता है ॥१ ॥

[४] दूतोंने फिर कहा, "परन्तु आपमें एक भी गुण नहीं। उत्साह-शक्ति तो आपमें सपनेमें भी नहीं। जब वह छोटा था तभी तुमने उसका नाश नहीं किया इसलिए जो नखसे काटा जा सकता था, वह अब कुठारसे काटने योग्य हो गया है। जब दशाननका केवल नाम ही हुआ था, जब उसने एक हजार विद्याएँ सिद्ध कीं। जब उसके हाथ चन्द्रहास तलवार लगी जब मन्दोदरी उसे ब्याही गई जब उसने सुरसुन्दरी कन्याको लिया, जब उसने 'त्रिजगभूषण' हाथीको पकड़ा। जब उसने युद्धमें यमको खदेड़ दिया, जब वह नलकूबरका अपहरण करने गया, और जब उसने रत्नावलीका भी पाणिग्रहण किया, तब तो तुमने उस शत्रुका हनन नहीं किया, और अब उसके लिए इतना बड़ा समारम्भ कर रहे हो।' इसपर इन्द्रने आवेगसे कहा "क्या सिंह छोटसे गजशिशुपर आक्रमण करता है? क्या समय आग सूर्य पंखको जलाती है? ॥१-२॥

[५] इतना प्रत्युत्तर देकर गजेंद्रगामी इन्द्र, अपने एकांत भवनमें पहुँचा जिससे कोई दूसरा उसका भेद न ले सके। वहाँ शुक और सारिकाओंकी भी पहुँच नहीं थी। उसमें प्रवेश करते ही सुरराज इन्द्रने कहा—"शत्रु अजेय है, अब क्या उपाय करना चाहिए क्या साम भेद या दाम या अज्ञातपरिणाम दण्ड ठीक है। कार्यका प्रारम्भ करनेके उपाय (दुर्गादिकी रक्षा इत्यादि) का क्या मन्त्र है? योग्य पुरुष (सेनापति दूतादि) और सम्पत्तिकी कैसे रक्षा जाय देशकालका ठीक विभाजन क्या हो आई हुई आपत्तियोंका सुन्दर प्रतिकार क्या हो सकता है, अपने अभीष्ट कार्यकी सिद्धि कैसे हो यही पचांग मन्त्र है। इनमें कौन सुन्दर और सच विचार वाला है।" इसपर मारदाय

बोला "जिस को आपने प्रारम्भ किया है वही ठीक है। कार्यके अन्तमें ही उसका पता लगाना चाहिए।" यह सुनकर विशालाक्षने कहा, "यह तुमने कौन-सा पक्ष सामने रखा है, इन्द्रकी तो बात दोनों को निश्शेष राज्य करता है। राजा या मन्त्रीके बिना शासनमें भी चाल नहीं चलता ॥१-१०॥

[६] तब पाराशरने कहा—"दो मन्त्री होना सुन्दर है, एक मन्त्रीसे राजकाज होना सम्भव नहीं।" इसपर नारदने अपनी राय दी, दो से भी राज्य नहीं चल सकता, वे एक दूसरेसे झगड़कर कुमन्त्र भी दे सकते हैं।" तब कौटिल्यने कहा—"इसमें क्या भ्रान्ति है। तीन या चार मंत्री ही सुन्दर होते हैं।" तब मनुने कहा,—"बारह मन्त्रियोंकी बुद्धि बहुत वजनदार होती है, एक-दो या तीन-चार मंत्रियोंसे काम नहीं होता है।" यह सुनकर बृहस्पति बोले—"यदि सोलह हों तो अत्यन्त सुन्दर"। इसपर शुक्राचार्यने कहा—"बीस मन्त्री हों तो कोई कष्ट नहीं होता।" यह सब सुनकर इन्द्रने अपनी सम्मति दी "हजार मंत्रियोंके बिना मन्त्र किसी कामका नहीं, एकसे दूसरेकी मदद होती है और बिना किसी कष्टके कार्यकी सिद्धि हो जाती है।" तब सबने जयकार पूर्वक कहा—"यदि हमारी मंत्रणा मानी जाय तो रावणके पास सुन्दर संधिका प्रस्ताव भेजना ही उचित है ॥ १-९ ॥

[७] विद्वानोंने अर्थशास्त्रमें भी यही कहा है कि सुन्दर सन्धिका होना बहुत कठिन है। क्योंकि एक तो आपने मालिक सिर काटकर फेंक दिया। दूसरे अब रावणसे मित्रता हो जाए तो इसमें आपकी हानि ही क्या है। साँप खाता है, फिर भी मयूर तो मधुरभाषी ही होता है। जो काम साम दाम भी भेदसे संभव हो, उसके लिए दंड प्रयोग करना व्यर्थ है? आखिर

हुए युद्धके कारण उससे (रावणसे) चन्द्रोदर और सुग्रीव क्रुद्ध हैं। नल और नील भी हृदयसे मग्रुद्ध हैं। सुनते हैं कि ये अत्यन्त अवलोलुप हैं। खर और दूषण भी एक तरहसे भयभीत ही हैं। क्योंकि ये चन्द्रनखाको हर ले गये थे। हे इन्द्र गजेन्द्रकी भाँति उसने सहस्रकिरणको भी अपमानित करके अपने वशमें किया था, इन उपायोंसे रावणका भेदन किया जाय और इसके लिए चित्रांगद दूतको उसके पास भेजा जाय ॥ १-८ ॥

[८] इन्द्रने मन्त्रीके वचन मान लिये। विश्वामित्रको बुलवाकर वह उसे कुछ सिखाने लगा। इसी बीच नारदजी रावणके पास आ पहुँचे। एकान्तमें ले जाकर कानमें उससे कहा 'सब स्कन्धावारकी रक्षा करो क्योंकि इन्द्रका चौबीस गुणोंसे युक्त दूत आनेवाला है। वह सुग्रीव प्रभृति विद्याधरों और राक्षसोंमें फूट उत्पन्न करेगा अतः मोटे शब्दोंमें उससे ऐसी बातें आप कीजिये जिससे सन्धि न हो। वह तुच्छ है आज आप प्रबल हैं, पीछे पड़कर उसका राज्य हड़प लें। इस समय समागमके लिए आप समर्थ हैं। यदि शंका करेंगे तो बादमें असमर्थ हो जायँगे। हे रावण मरुयज्ञके अवसरपर जो तुमने विघ्नोंसे मेरी रक्षा की थी उसी उपकारके कारण, यह परम रहस्य मैंने तुम्हें बता दिया ॥१—६॥

[६] आकाश-मार्गसे नारदके कहीं चले जानेपर रावणने सेनापतिको बुलाकर कहा —"स्कन्धावारकी इस तरह रक्षा करो कि जिससे शत्रुके गुप्तचर भीतर प्रवेश न कर सकें।" इस प्रकार उनमें बातचीत हो ही रही थी कि तब तक चित्रांग रथ पर बैठा हुआ आ पहुँचा। बहुशास्त्रज्ञ विचारशील बुद्धिमान पुर राष्ट्रका निरीक्षण करता ?" रत्नधुर्ग धन-धान्यसे पूर्ण धरतीको देखता

और उत्तरका प्रत्युत्तर सोचता हुआ, वह तुरन्त ही मारीचके भवनमें प्रविष्ट हुआ। उसने भी दूतका प्रेमके साथ आदर-सत्कार किया और फिर हाथमें हाथ लेकर उसे राजाके पास ले गया। रावणने भी आसन देकर बढ़िया पान, चूड़ामणि कड़ा, कण्ठ और हारसे उसका सत्कार किया, फिर उसके सैकड़ों गुणोंकी प्रशंसा करके पूछा "आपकी सेना कितनी है।" चित्रांगने कहा, "इनके साथ मनुष्यकी क्या समानता जो वस्तु सपने भी नहीं दिखी, वह भी उसे अलभ्य नहीं है।' ॥१-१०॥

[१०] यह सुनकर रावण बहुत सन्तुष्ट हुआ। वह बोला "अरे मैंने तो यही समझा था कि कोई कुदूत आया होगा, परन्तु आप जैसे आज्ञाकारी और यथार्थद्रष्टा हैं उससे मैं समझता हूँ कि मेरा काम बन जायगा। सचमुच ही आप जैसे पर्याप्त गुणोंसे सम्पन्न जानकारको पाकर इन्द्र धन्य है! कहिये आपको सुरराजने किसलिए भेजा है?" तब हँसकर चित्रांगदने कहा, 'प्रभु, हमारा यही सुन्दर विचार है कि दोनों सन्धि करके सुख पूर्वक रहें, और साथ ही इन्द्रकी रूपमें सबसे अच्छी, रूपवती लड़कीसे विवाहकर लंकाकी विजययात्रा करें। मनुष्यके लिए चंचल लक्ष्मीकी क्या बात? हमारे इस वचनको आप सब लोग अपने मनमें याद ले लें क्योंकि इन्द्रको युद्धमें हराना वैसे ही सम्भव नहीं हो सकता जैसे कुसिद्धका मोक्ष पाना" ॥१-८॥

[११] यह सुनकर शत्रुसंतापक रावणने चित्रांगसे कहा, "विजयार्ध श्रेणिमें जो पचास-साठ बड़े-बड़े नगर हैं, वे मुझे सौंपकर सन्धि कर ला। नहीं तो कल संग्राममें मुझसे मरो।" यह सुनकर चित्रांग हँसकर रावणसे बोला 'एक तो अकेला इन्द्र ही

'पच्छइ वि सुरवइ सयमेव रज्जु । अण्णु वि रहणेउर-णयरु दुग्गु ॥८॥
परिभमियउ परिहउ तिण्णि तासु । सरिसाउ ताउ रयणायरासु ॥९॥
संकम वि चयारि चउत्तिसासु । चउ-वारहँ एक्केक्कएँ सहासु ॥१०॥
गब्भन्तरेँ अण्णुँ सीसणाहँ । अक्खोहणि अक्खोहणि जणाहँ ॥११॥

घत्ता

जोयण-परिमाणें जो दुग्गु सो णउ भिज्जइ ।
सिरि दुग्गम-वयणुँ को वि ण पत्थु समिज्जिज्जइ ॥१२॥

[१२]

जसु पुरउ अत्थि महाउ दुग्गु । अण्णु वि समत्थु अयाल-रम्मु ॥१॥
जसु अट्ठ अमर भाउएँ गयाहँ । वारह सहसुँ सोलह मयाहँ ॥२॥
सक्किल-गहणहँ वीस अमर । रह-तुरय-महाहँ पुणु णत्थि सङ्ख ॥३॥
मुहउ पडिहारउ सुक्क-सेण्णु । जसु कीयउ मित्तएँ तणउ सण्णु ॥४॥
तइयउ सेणी-बहु दुम्मियाउ । चउयउ मित्त-बहु अणाय-पाउ ॥५॥
दुग्गउ पञ्चमउ मणिमय-सेण्णु । छट्टउ आडविउ अणाय-णाम ॥६॥
एक्केक्क पुणु सूहइँ आहि केउ । अमरा वि जाहँ ण मुणन्ति भेउ ॥७॥
हय-गय-रह-भड दुग्गहुँ सहेव । सा सुरवइ जिम्मइ समरेँ केव ॥८॥

घत्ता

दुब्बइ इरवयणेँ 'जइ त जिणावि ण अमरवणेँ ।
तो अप्पउ बलमि जालामालाउलेँ ॥९॥

[१३]

इन्दइ पमणइ 'सुर-सार-भूय । किं अज्जिणण वहवेण दूय ॥१॥
जं किउ जम-धणयहुँ विहि मि तासँ । तं सहसकिरण-णलकुब्बराहँ ॥२॥
तं तउ वि करेमइ ताउ अज्जु । लहु जाउ पुरन्दर दुग्ग-मग्गु ॥३॥
ण वयणु सुणेवि गहम्मएण । चिन्तेँ दुब्बइ अप्पणेण ॥४॥

प्त है, दूसरे उसके पास रयनूपुरका सुन्दर दुर्ग है, समुद्रके समान गम्भीर परिखाएँ उसे घेरे हैं। चारों दिशाओंमें चार परकोटे हैं। उनके चारों द्वारोंपर एक-एक हजार सेना है, गालफ पत्थरके बने यन्त्रोंपर भी अक्षौहिणी सेना तैनात है। एक योजनके भीतर जो भी पहुँच पाता है वह वैसे ही नहीं बच पाता जैसे दुर्जनके मुखसे कोई नहीं बचता ॥१-६॥

[१०] उसका ऐसा सहायक दुर्ग तो है ही, और भी दूसरे अत्यन्त वेग साधन हैं। उसके पास भद्र हाथी आठ लाख, मन्द जातिके हाथी बारह लाख, मृग हाथी सोलह लाख और सर्वोण गजेन्द्र बीस लाख हैं। फिर रथ तुरग और भटोंकी तो गिनती ही नहीं है। यह उसकी मूल मुख्य सेना है। दूसरे, उसके पास मित्रसेनाएँ हैं। तीसरे उसे दुर्निवार श्रेणियल प्राप्त है। चौथे निस्सीम मित्रबल है, पाँचवें दुर्जेय अमित्र सेना है, छठे, अगणित अटवीगामियोंकी सेना है। फिर रावण, उसकी व्यूह रचनाका तो ठिकाना ही नहीं है रचना भी उसका भेद नहीं जानते रथ गज तुरग और मनुष्योंके इस वेग युद्धमें सुरपतिको कौन जीत सकता है ?" ॥१-८॥

तब रावणने प्रत्युत्तरमें कहा—"यदि मैं युद्धमें उसको नहीं जीत सका तो मैं अपने-आपको आगकी लपटोंमें भस्म कर दूँगा।" ॥९॥

[११] तब इन्द्रजीत बोला—"युद्धमें दूत बहुत कहना व्यर्थ है। यम और धनदका जो किया और जो हाल सहस्रकिरण तथा नलकूबरका किया वही हाल तात तुम्हारा करेंगे। इसलिए तुरन्त अपना ठाँव जाकर इन्द्रको युद्धके लिए तैयार करो।" यह वचन सुनकर दूतने कहा कहा—"इस तुम्हें इन्द्रका

निमन्त्रण है, और इसी तरह, इन्द्रजीतको उसके पुत्र वैजयन्तका, भामण्डिका कुमार शशिम्बरका, जाम्बवान नल और नीलको यमराजका, दुष्ट हस्त और प्रहस्तको हरिकेशीका, विभीषण और कुम्भकर्णको सोमका। इसके अतिरिक्त शेष लोगोंका, हमारे दूसरे-दूसरे वीरोंका आमन्त्रण है।" ॥१-८॥

पारणाके लिए ही, हमने यह न्योता तुम्हें दिया है, शीघ्र तुम सब लोग भयंकर प्रहारोंका भोजन पाओगे ॥९॥

[१४] इसके बाद चित्रांग देवोंसे घिरे हुए इन्द्रके पास पहुँचा, और बोला,—"हे परमेश्वर राक्षस अजेय है, वह तुम्हारे साथ सन्धि नहीं कर सकता।" शत्रुको प्रबल समझकर इन्द्र भी तैयारीमें जुट गया। भेरी पट पटह वाद्य बज उठे। मदमाते हाथी सूँड़ोंसे सजाये जाने लगे। बलधर पहले हुए घोड़े रथमें जोत दिये गये। यशके लोभी क्रुद्ध सैनिक तैयार होने लगे। रणके भारमें समर्थ विश्वावसु और वसु, यम शशि, कुबेर, भी हाथमें हथियार लेकर तैयार थे। किंपुरुष गरुड़ गन्धर्व यक्ष किन्नर नर अमर और विद्याधर भी। जब नगरकी प्रतोलियों (गलियों) में सेना नहीं समा सकी तो वह उड़कर आकाश-तलमें जाने लगी। इन्द्र भी तैयार होकर ऐरावत हाथी पर बैठकर चला। वह ऐसा लग रहा था मानो विन्ध्यगिरि पर शरदके महामेघ ही प्रकट हुए हों ॥१-६॥

[१५] छावनीसे पाँच सौ धनुष दूर मृग मन्द भद्र और संकीर्ण हाथियोंसे घटाकी रचना कर आगे-पीछे सैनिक-समूह स्थित हो गया। सेनापति और मन्त्रियोंने व्यूहकी रचना कर दी। उसकी कक्ष (अग्रिम) पक्षमें (पार्श्व) सेनाओंमें प्रबल अश्वोंसे विक्रमाल लोकपाल रख थे। प्रत्येक गजके पास, रक्ष

कमलकी तरह आरक्तनेत्र, और ओंठ काटते हुए १५ अगरक्षक थे। पचास वस्त्रावाले पाँच-पाँच अश्व थे। प्रत्येक अश्वके पास खड्गधारी तीन-तीन योधा थे। इस तरह जितने रथके गजवरोंके थे उतने ही रथवरोंके भी थे। प्रत्येक पैदल सैनिकको चौदह भगुलियोंकी, अश्वोंको अश्वोंसे तीन हाथ की, गजोंका गजोंसे पाँच हाथकी और धनुधारियोंका छ हाथकी दूरी पर खड़ा कर दिया गया। इस तरह व्यूह रचकर उन्होंने सूर्यका भयंकर कोलाहल किया माना युद्धमें धरतीको भूषित करके स्थित रख दिया गया हो ॥१-८॥

•

सत्रहवीं सन्धि

मन्त्रणा समाप्त होने और दूतके चले जानेपर दोनों ओरकी सेनाओंका ताप उमड़ पड़ा। त्रिलोकभयंकर और इन्द्रको आतंकित करनेवाले रावणने इन्द्रपर चढ़ाई कर दी।

[१] मधारीसे सजे हाथी बख्तर पहने घोड़ोंके झुंड पताका फहराते विमान और रथ आगे बढ़ने लगे। देवों और वीर शत्रुओंको कँपानेवाली भीषण रणभेरी बज उठी। हस्त और प्रहस्तको सेनापति बनाकर रावणने कूच किया। कुम्भकर्ण विभीषण नल सुग्रीव माल गवय, मय मारीच अनुचर तथा मन्त्री दोनों पुत्र इन्द्रजीत और मेघवाहन सबके सब रणके रभसमें सनाथार होकर दौड़े। सब राग भरमें युद्धभूमिमें आ पहुँचे। रावणने भी पाँच सौ धनुषके अन्तरसे इन्द्रके विरुद्ध मति-व्यूहकी रचना की। उसको सेनापर राक्षस-सेना टूट पड़ी,

आहत पटहोंसे कलकल ध्वनि होने लगी। दोनोंमें घमासान-युद्ध हुआ। उठी हुई धूलने सूर्यको मलिन कर दिया। मनुष्य, घोड़े और हाथियोंके शरीर तथा रथ, ध्वजा और छत्र धूलसे भर उठे। निरन्तर आग बरसती हुई धूलसे दोनों दल वैसे ही मलिन हो गये जैसे कुपुत्रकी उत्पत्तिसे कुल मैला हो जाता है ॥१-९॥

[२] विभ्रम हाव भाव और भ्रूभंगसे युक्त अप्सराएँ और देवोंके विमान धूलि-धूसरित हो गये। इसी समय शस्त्रके आघातसे आगकी कराल लपटें उठीं, उनसे पालकियाँ छत्र, पताकाएँ और सैकड़ों देवविमान जलने लगे। बार-बार, रक्तकी धारा और धूल फेंककर, आग बुझाई गई। उन रक्तधाराओंसे दिशाओंके मुख ऐसे लाल हो उठे मानो आकाश कुसुम्भके रंगसे रंग गया हो, या मानो आकाशरूपी लक्ष्मीके अंगोंकी कुंकुम नभके आँगनमें बिखर गई हो। वेगशील भटोंके धक्कोंसे नाचती हुई धरती रक्तसे आरक्त हो उठी। हाथियोंके गजमोतियोंसे मिश्रित वह ऐसी जान पड़ती मानो तारोंसे भरी सन्ध्या हो। रथ वहीं गड़ गये, उनके पास पहुँचते ही सब वाहन यान और विमान जहाँके तहाँ ठहर गये। धरतीके लिए, होने वाले उस महासमरमें लाखों रक्तमें तैर रही थीं सुरबालाओंको सन्तुष्ट करनेवाले, और मत्सरसे भरे, योद्धा ऐसे लग रहे थे मानो महासमुद्रमें जलचर युद्ध कर रहे हों ॥१-१०॥

[३] तब इतनेमें मदमाते हाथियोंके वाहनोंपर आसीन रोषसे इन्द्रकी सेनाने रावणकी सेनाको चपेटा मानो प्रलय समुद्रने ही संसारको चपेट लिया हो। निशाचर अपनी राक्षसुच्छ भुजाओंसे, आवर्त-क्षुब्ध जल-बुदबुदोंकी तरह घूमने लगे।" इसी बीचमें जय प्रसन्नकीर्तिने देखा कि उसकी सेना पीछे हट रही है,

पेक्खेँवि उरयडन्तइँ तुरयइँ । मत्त-गयइँ भिज्जन्तइँ गत्तइँ ॥५॥
पेक्खेँवि कुक्कन्तइँ रह-वीढइँ । वाल विमाणइँ ममरुयगीढइँ ॥६॥
पेक्खेँवि हयवर पाडिज्जन्ता । सुहड-मडप्फर साडिज्जन्ता ॥७॥
आयामेप्पिणु रह-गय-वाहणेँ । भिडिउ पसण्णकित्ति सुर-साहणेँ ॥८॥
चामर-चिन्धु महागय-सन्दणु । काल-विहलु सहिन्दहोँ नन्दणु ॥९॥

घत्ता

सर-धणु-णाय लएँवि रह चय मल्लेँवि सुरहोँ मरणेँ पइट्ठु किह ।
कम्मेँहिँ चिप्पन्तउ आमिउ भिन्दउ कामिणि-हियउ विणट्ठु जिह ॥१०॥

[४]

सुरवर-विहुरेँहिँ अत्थरेँ वि अहिमुहेँहिँ ।
कइउ पसण्णकित्ति तिक्खेहिँ सिलिमुहेँहिँ ॥१॥

तो पुण्णन्तरेँ विउ सुम-वाणेँ । रायण-विणिपण सिरिमालेँ ॥२॥
रहवर वाहिउ सुरवर-वन्दहोँ । पवमउ भिडु महमहेँ चन्दहोँ ॥३॥
कुम्भ-विरल्लहोँ सीहारवहोँ । जमसिरि पवर-णारि सवगुरुहोँ ॥४॥
'परेँ स-कलत्तु चाउ मणिकामन । पुरउ म थाहि जाहि मयण्णाण ॥५॥
त भिसुणेँवि मोक्कलिय-मायउ । लासिउ मिगड चाउ समरत्तउ ॥६॥
मतिसारहु एम्व-पहरण-चउ । तिहुअण-जण मण-णयण-भयाउरु ॥७॥
सो वि समुच्चरन्तु वसु-सुहडु । किउ विविसहोँ पाराउड ॥८॥
ताम कुबेर चाउ अवरम्मुहु । किउ णारम्पेँहिँ सो वि परम्मुहु ॥९॥

घत्ता

सिरिमालि चउद्दह रज्जहोँ दुद्धर करेँ वि ण सक्किउ सुरवरेँहिँ ।
संताउ जणन्तउ पाय हरन्तउ धम्मु जेम कु-मुणिवरेँहिँ ॥१०॥

[५]

समरेँ णियन्तेँ समरेँ तो ससि कुबेर-राए ।
केसरि-कमय-कुम्भहा महावन्त-जाए ॥१॥

यह बाडव ज्वालामें पड़ने जा रही है। रथपीठ टूट रहे हैं, यान और विमान चकनाचूर हो रहे हैं, अश्व गिर रहे हैं, योधाओंका अहंकार चूर-चूर हो रहा है तो वह स्वयं महारथ पर बैठकर शत्रुओंसे भिड़ गया। मनुष्य अश्व और गजोंको तरजकर, पताकाओंको छिन्न-भिन्नकर, शत्रु-व्यूहमें वह वैसे ही प्रवेश कर गया जैसे कामसे आहत, कामिनीके हृदयमें प्राण लेता हुआ विरह प्रविष्ट हो जाता है ॥१-१०॥

[४] तब इन्द्रके अनुचरोंने सामने आकर, अपने तीखे बाणोंसे प्रसन्नकीर्तिको घेर लिया, तब इसी बीच, दृढ़ बाहु, रावणके चाचा भीमाङ्कने अपना रथ हाँका। देव-समूहके उस महायुद्धमें सबसे पहले वह चन्द्रसे भिड़ा। जो हाथमें कुम्भ लिये सिंहपर आरूढ़ था और विजय-लक्ष्मी रूपी उत्तम नारीका आलिंगन करने वाला था। उसने उसे ललकारते हुए कहा "अरे कलंकी कुटिल शशिमुख चन्द्र सामने खड़ा मत रह। भाग यहाँसे।" यह सुनते ही विगलित मान वह वहाँसे खिसक गया। उसके बाद भैंसेपर आरूढ़ प्रहार-दण्ड हाथमें लिये हुए, त्रिभुवनके मन और नेत्रोंके लिए भयंकर लगनेवाले यमने भी आप ही पलमें पीठ दिखा दी। तब कुबेर सामने आया पर भीमाङ्कके बाणोंसे उसे भी विमुख होना पड़ा। रणमें दुद्धर धनुधारी भीमाङ्कका बड़े-बड़े देवता भी पकड़नेमें वैसे ही असमर्थ रहे, जैसे संताप दायक, प्राण हरण करनेवाले कामको स्पष्ट मुनि पराभव नहीं कर सकते ॥१-९॥

[५] यम शशि और कुबेरके युद्धमें पीठ दिखाकर भाग चुकनेपर केसरी, कनक और अग्निरथ सामने आये। वह रावण पताकाओंसे युक्त अपना महारथ लेकर, और परम धर्मका बाणमें

रत्नकर, वे तीनों भिड़ गये। उन्होंने बाणोंसे भीमाळको ऐसे घेर लिया मानो पाराधर मेघोंने महीधरका घेर लिया हो। पर उसके द्वारा बाणोंसे बाणोंका निवारण कर देने पर वे भी पीठ दिखाकर भाग खड़े हुए। तब अकेला अमरकुमार उठा, और शत्रुकी तरह अकेला ही युद्ध-स्थलमें पहुँचा। परम जिनेन्द्रके चरण-कमलोंके भ्रमर भीमाळिने उसे भी बाणोंसे घेर लिया। अर्धचन्द्र (शस्त्रविशेष) से उसका सिर छिन्न-भिन्न कर दिया, मानो नील कमल छिन्न हो गया हो। जहाँ-जहाँ वह राक्षस जाता वहाँ कोई भी उसके सम्मुख नहीं ठहरता। रणवर्षीका की गई बलिके समान अपने पुत्रको छिन्नमस्तक देखकर जब इन्द्र कुपित होकर सन्नद्ध होने लगा तो जयन्तने अपना रथ आगे बढ़ाकर कहा "सुभट इन्द्रात्य तात! मेरे जीवित रहते हुए आपका शस्त्र लेनेकी क्या आवश्यकता?" ॥१-१०॥

[६] इन्द्रका जयकार करता हुआ तब इन्द्रपुत्र जयन्त ललकार दौड़ा 'राक्षसो ठहरो-ठहरो मेरे जीते जी तुम भागकर कहाँ जा रहे हो? जरा अपना रथ आगे बढ़ाओ। मैं तुम्हें, सांगि शामर और कणिका तीरोंके आघात प्रचुर बावल्ल भाले और बाण अर्धचन्द्र सुरपा और कुन्त पट्टिस धर्विद्ध सूल फर और मुद्गर मुद्गर सुद्ध भिन्दिपाल सब्बल हुलि, हल, मुसल भुसुंडि। हथौड़ी मसर त्रिसर्ती, परसु, द्रुघ पाश फलक, काल चक्र, वृक्ष, चट्टान और पहाड़ोंके आघात आग जल पवन बिजलियोंसे संघातवस चुनौती देता हूँ।" यह सुनकर भीमाळका हँसी आ गई। सुरपति-पुत्र जयन्तके सामने अपना रथ करते हुए उसने कहा—"विजय लक्ष्मीको शीघ्र पानेके लिए तुम्हें छोड़कर और कौन मुझे युद्धमें चुनौती दे सकता है" ॥१-६॥

इस प्रकार अपनी विशेषता बताकर, उसने तीरोंसे जयन्तकी पताका छिन्न-भिन्न कर दी, उसके टुकड़े ऐसे मालूम होते थे, मानो आकाशकी शोभा-लक्ष्मीका हार टूटकर बिखर गया हो ॥१०॥

[७] रावणके पितृव्य भीमालिने दानवसंहारक कनक तीरोंके प्रहारसे उसका महारथ चूर-चूर कर दिया। यह भी पता नहीं चला कि रथ कहाँ गया। इन्द्रपुत्र बालबाल बच गया। मूर्च्छासे विह्वलांग वह बड़े कष्टसे ऐसे उठा मानो ऊपर सूँड़ उठाये मत्तगज ही उठा हो। उसने भीषण भिन्दिपाल तीरोंसे भीमालके रथकी सौ टुकड़े कर दिये। वह भी प्रहारोंसे निष्प्राण और विधुर होकर, मूर्छित हो गया। थोड़ी देर बाद चेतना आनेपर शरीर धुनता हुआ वह फिर युद्धक्षेत्रमें ऐसे दौड़ा मानो कोई दुष्ट महामह ही आकाशमें दौड़ा हो। दोनों ही वीर, प्रबल, अजेय और दुर्द्धर थे। दोनों का भुजाएँ हाथीकी सूँड़की तरह प्रचण्ड थीं। दोनों ही आकाश-मण्डलमें घूम-से रहे थे। रावण और इन्द्रकी लीक पर दोनों ही चल रहे थे। समर्थ होकर जयन्तने वज्र और दण्डसे तैयार हो अपना गदा घुमाया। उस छातीमें चोट लगनेसे निर्जीव होकर निशाचर भीमालि जाकर रसातलमें गिरा। इन्द्रपुत्र जयन्तका विजय हुई। निशाचरों पर तो मानो धूलि-समूह ही टूट पड़ा हो ॥१-९ ॥

[८] इन्द्रपुत्र जयन्त द्वारा भीमालिका पतन होनेपर, इन्द्रजीत रथपर चढ़कर दौड़ा। वह बोला "अरे ओ दुर्विदग्ध मूर्ख मेरे बालकका वध कर अब कहाँ जा रहा है। मुझ मेरे जीवित रहते तेरे जीवित रहनेकी आशा कहाँ?" उसके वचनसे जयन्त भी अपने हाथमें धनुष ले लिया। तब दोनों लड़ाई पड़े। उन्होंने समरांगण अपने तीरोंसे मंडप-सा तान दिया। मार लगा

है। और इन्द्र अपने हाथमें वज्र लिये, देव-परिवारके साथ खड़ा है।" यह सुनकर सारथिने उत्साहित होकर हास्यध्वनिके साथ रथ हाँक दिया। कोलाहल होने लगा। रण दुंदुभि बज उठे। यम और शनिकी तरह क्रूर सुभट (सैनिक) हँसने लगे। युद्ध प्रारम्भ होते ही रण-रससे भरी हुई सेनाएँ कवच पहने हुए एक दूसरे से आ भिड़ीं। प्रचण्ड अश्वोंसे प्रचण्ड अश्व मत्त गजोंसे मत्त गज लड़ने लगे। रथ रथोंके ऊपर दौड़ पड़े और पदाति सैनिक पदाति सैनिकोंपर। हुंकार छोड़ती हुई प्रहार करती हुई सिर हाथ और नाक झुकाई हुई अनुद्विग्न दोनों सेनाएँ मिथुन-युगलकी तरह अनुरक्त होकर भिड़ गई ॥१-१०॥

[११] दो दो योधाओंमें घमासान युद्ध होने लगा। इन्द्रजीत और जयन्तमें। तथा रावण और इन्द्रमें। रत्नाश्रव और सहस्रारमें। मय और बृहस्पतिमें मारीच और कुबेरमें। यम और सुग्रीवमें, दुःसह स्वभाव अनिल और नलमें। पवन और नीलमें। चन्द्र और अंगदमें। सूर्य और अंगमें। स्वर और चित्रमें दूषण और चित्रांगमें। मृग और चमूमें। विभावसु और दम्यमें। सारण और हरिमें। हरिकेशि और महस्त्वमें। कुम्भकर्ण और ईशानेन्द्रमें। ब्रह्मा और केशरीमें। विभीषण और स्कन्दमें। घनवाहन और हरिकेशी कुमारमें। सम्पवन्त और कनकमें। जाम्बवन्त और जीमूतपुत्रमें। वज्रोदर और वज्रायुधपक्षमें तथा वानरध्वजियों और सिंहध्वजियोंमें। इस प्रकारसे उनमें अपकीर्ति संघर्ष छिड़ गया। गजोंके कुम्भस्थलोंका विदीर्ण करनेवाला, पुलकितशरीर जिस योधाने सम्मुख जा जा पहुँचा मत्सरमें भरकर भयगम्भीरा मनुष्य धनपाला यह उससे उसी तरह भिड़ जाता जिस तरह दावानल पहाड़ से ॥१-२ ॥

[१०] कोई योधा सुरवधूका मुँह देखकर आघात कर रहा था। हाथमें तलवार लिये हुए, वह सेनाके अग्रभागसे प्रहार खाकर भी हट नहीं रहा था। किसीका शेखर ही बाहर निकल पड़ा, वह ऐसा लगता था मानो शृंखलासहित मत्त गज ही हो। कुम्भस्थलको छिन्न-भिन्न करनेवाले किसी योधाका भाग मोतियोंके समूहसे चमक रहा था। कोई योधा मूसलसदृश दाँतवाले मत्त गजके सम्मुख दौड़ रहा था। कोई छिन्नमस्तक धनुर्धारी ईर्ष्यासे भरकर मुड़ता, दौड़ता और विद्ध होता हुआ दीख रहा था। किसीका वक्षस्थल तीरोंसे इतना छिन्न-भिन्न हो चुका था कि भीतर-बाहर पुंख दिखाई दे रहे थे। रक्त-रंजित कोई महान योधा ऐसा शोभित हो रहा था मानो भ्रमरसहित रक्तकमलोंका समूह हो। कोई योधा एक पैरसे अश्वपर (राजा बलिके दानप्रसंगमें) विष्णुकी तरह, दूसरा चरण नहीं रख पा रहा था। कोई मस्तकपर हाथ रखकर शत्रुसेनासे युद्धकी भीख माँग रहा था। सिर कटा, रक्तसे लथ-पथ शरीर कोई योधा ऐसा जान पड़ता था मानो सिन्दूरकी तरह लाल फाल्गुनका तरुण सूर्य हो ॥१-१ ॥

[११] कहींपर भूमिपर पड़े हुए निर्जीव गज ऐसे जान पड़ते थे मानो काली मेघघटा ही धरतीपर अवतरित हुई हो। कहीं पर सूँड सहित कुम्भस्थल पड़े थे जो मानो युद्धरूपी स्त्रीके उरोज और मूसलकी तरह दिखाई दे रहे थे। कहीं पर खड्गसे छिन्न छपपटाते हुए अश्व पड़े थे और कहीं पर फटे हुए बड़े-बड़े छत्र ऐसे पड़े थे मानो यमके भोजनके लिए बड़े-बड़े थाल हों। कहीं पर सुभटोंके सिर काट पाट हो रहे थे। जो ऐसे लगते थे मानो डंठल रहित नव कुंदपुष्पोंका समूह हो कहीं पर खंडित रथ चक्र ऐसे पड़े थे मानो कलिकालके लिए आसन हो। कहींपर

किसी सुभट योधाको देखकर शृगाली यह कह कर चल देती थी कि इसमें सिगर नहीं है। कहीं मड़ोंपर बैठे हुए गीध ऐसे लगते थे मानो योधाके (शवमें) नये सिर निकल आये हों। कहींपर गीध चोंच और पाणोंमें भेद न पाकर, मांसभक्षण करनेमें असमर्थ हो रहे थे। नरमुण्डों और कटे हुए हाथ-पैरोंके समूहसे भीषण धरा ऐसी मालूम हो रही थी कि मानो यमके लिए रसोइयोंने तरह-तरहकी रसोई बनाई हो ॥१-९॥

[१४] उस युद्धमें घूम मचानेवाले, इन्द्र और रावणने एक दूसरेको ललकारा। रावणने कहा— 'अरे-अरे समर्थ इन्द्र, हटो-हटो, मालिकी तरह तुम भी नष्ट हो जाओगे। मैं वही भुवन भयङ्कर, देवकुलके लिए कृतान्त और रणमें दुर्धर रावण हूँ।' यह सुनकर शर-जालसे आकाशको ढकता हुआ इन्द्र मुड़ा। रावणने भी ललकारकर अपने तीरोंसे उस शर-जालको काट दिया। तब शत्रुसंहारक इन्द्रने आग्नेय बाण छोड़ा। वह धक-धक करता और धुँआ छोड़ता हुआ रावणके चिह्न छत्र और पताकासे जा लगा। आगकी लपटोंमें जलती हुई रावणकी सेनाके प्राण संकटमें पड़ गये। इसपर निशाचर-प्रधान रावणने वारुणबाणसे आग्नेय बाणकी ज्वालाको शान्त कर दिया। तब वह पिशाचकी तरह मलिनवर्ण (काला) और धूमिल शरीर हो गया" ॥१-६॥

[१५] आग बुझनेपर भास्वरशरीर इन्द्रने तमका बाण छोड़ा। उससे समूचे युद्धक्षेत्रमें अन्धकार फैल गया। निशाचर सेनाको कुछ भी दिखाई नहीं देता था। उन्हें जंभाई आने लगी, अंग-अंग टूटनेसे लगे। नींद आने-सी लगी। वे बेसुध सोने लगे। सपना देखने लगे। अपने सैनिकोंको इस तरह मुकत देखकर, रावणने जलता हुआ सूर्य बाण छोड़ा। इन्द्रके मत्त राहु जब

छोड़नेपर, रावणने नागपाश और दूसरे बाण चलाये। हजारों सर्पोंके काटनेसे इन्द्रकी सेना मरने लगी। तब इन्द्रने गरुड़ अस्त्र छोड़कर विषधर-नागोंके आलका काट दिया। पक्षिकुलकी हवासे आन्दोलित धरती, ऐसी जान पड़ती थी, मानो सुन्दर कामिनी दोलेमें बैठी हो। पक्षोंकी हवासे प्रतिहत महीधर, मानो दिशाओं और समुद्र सहित धरतीको नचा रहे थे। रिपुघाती नारायण बाण छोड़कर, रावण त्रिजगभूषण हाथीपर चढ़कर वहाँ गया जहाँ इन्द्रका ऐरावत हाथी था। जाकर, वह इन्द्रसे भिड़ गया ॥१-९॥

[१६] दोनों ही हाथी समरी हुए काली देहके थे। मानो गरजते-दौड़ते हुए, समान लक्षणसे हुए मेघ हों। दोनों ही मदसे सिंचित शरीरवाले थे। दोनों ही के पर कन्धे और बड़ विशाल थे। दोनोंसे मदजलके निझर बह रहे थे। दोनों ही पर्वतकी तरह जल-कणवाले, मर्यादा निरंकुश विशाल-कुम्भस्थल और धवल दाँत वाले थे। चामरकी तरह उनके कान भ्रमर उड़ा रहे थे। उठी हुई सूँड़से दोनों भयंकर थे। दोनोंकी सुन्दर घण्टाध्वनि हो रही थी। सुन्दर कण्ठमालासे सहित वे दोनों गज घूम रहे थे। उन मदवाले महान घूमते हुए हाथियोंसे इन्द्र और रावण ऐसे मालूम होते थे मानो समारूपी भवनसे मुक्त मुग्धा धरती समुद्र और पहाड़ोंके साथ घूम रही हो ॥१-१०॥

[१७] त्रिजगभूषण हाथीने ऐरावतको निरस्त्र कर दिया। निशाचर खूब प्रसन्न हुए और वैरीसमूह विसर्जन लगा। रावण भययुक्त और बलवान था जब कि इन्द्र युद्ध। गिरा हुआ हाथी उससे मस नहीं हुआ। महावतने भी बार उसकी परिक्रमा की। गदाके प्रहारसे इन्द्र भी मूर्छित हो गया। इस कारके उस बरगने पकड़ लिया। निशाचरसेनामें तब विजयकी घोषणा हुई।

णिवडइ सुहु रयणीयर-साहणें । देवेंहिँ दुन्दुहि दिण्ण तिहुअणें ॥५॥
ताव दसाणणु पसाहण-भाए । णामिउ कन्धें वि बाहु-सहाए ॥६॥
जसु सुग्गीवें कुसुम-सीसें । मच्छरु मलेवि भणिउ एवें वीरें ॥७॥
खर-दूसणेंहिँ चित्त-विचित्तण । रवि ससि कवि जाव अजुअम ॥८॥
सुरवर-गुरु सयल णिम्मिसवें । अहउ कुमर समरें मारिच्चें ॥९॥

घत्ता

जो जसु सत्थरिउ सो तें धरिउ गेण्हेंवि पवर-वन्दि-सयइँ ।
गउ सुरवर-डामरु पुरु अलङ्कारु जिह जिणेवि महासयइँ ॥१०॥

[१८]

जइ पुरन्दरे णिए जय-सिरी-णिवासो ।
सहसारेण परिणओ पणिओ दसासो ॥१॥
'अहो जम-धणय-सक्क-कम्पावण । देहि सुपुत्त-भिक्ख महु रावण' ॥२॥
तं णिसुणेवि भणइ सुर-कम्पणु । 'तुम्ह वि अम्ह वि एउ णिवन्धणु ॥३॥
मज्झु तणउ परिपालउ पट्टणु । पट्टणु णिच्चउ करउ पहञ्जणु ॥४॥
पुप्फ पयरु घरें देउ पयासइ । सइँ गन्धव्वेंहिँ गायउ सरसइ ॥५॥
कम्प-सहासइँ हणि पयासउ । कोसु धणेसु कुबेरु णिहालउ ॥६॥
जोण्ह करेउ मियङ्कु णिरन्तरु । तावउ महयरें तवउ दिवायरु ॥७॥
अमरराउ सम्भावउ भरावउ । अण्णु वि धम्मेंहिँ धवउ देवायरु ॥८॥
तं पडिवण्णु सव्वु सहसारें । मुक्कु सक्कु कुलम्भयारें ॥९॥

घत्ता

णिय-रज्जु णिएँवि गउ पम्मुएँवि सासयपुरहों सहसणयणु ।
जय-सिरि-बहु मण्णेंवि णिउ पयलेंवि स इँ भु अ-ग्गि दहवयणु ॥१०॥

इय पउमचरिए धणञ्जयासिय-सयम्भुएव-कए ।
जम्मण रावण विजयं सत्तरहमं इमं पव्वं ॥

●

आकाशमें देवोंने दुन्दुभि बजाई। इसनेमें इन्द्रजीत जयन्तको बाँधकर ले आया। यमको दुस्सह स्वभाव सुग्रीव। अग्निको नल पवनको नील, चित्र और चित्रांगको क्रमशः सार व वृषभ रश्मि और शशिको भग और अंगद। वृहस्पतिको मय और कुबेरको मुद्धके मध्य मारीचने पकड़ लिया॥१-६॥

जिसके आगे जो पड़ता उसने उसीको पकड़ लिया। जिस प्रकार जिन मर्यादा जीतकर अमरासरपुरको जाते हैं, उसी प्रकार दशमयकर रावण भी सैकड़ों शत्रियोंका जीत-पकड़कर अपने नगरकी ओर चला गया॥१०॥

[१८] जयकर्मीके आश्रय—निकेतन रावणसे (इन्द्रके बंदी आनेपर) सहस्रारने यह प्रार्थना की—"अरे यम, धनद और इन्द्रको कँपानेवाले रावण मुझे पुत्रकी भीख दो।" यह सुनकर सूर्पणखके रावणने कहा—"मुझे भी हमारी एक शर्त माननी पड़ेगी। यम पाताल नगरकी रक्षा करें निष्क्रिय पवन हवा करे। वनस्पति मेरे घरपर पुष्पसमूह दे, सरस्वती गन्धर्वोंके साथ गान करे हवि सैकड़ों वस्त्रोंको प्रक्षालित करें कुबेर रत्नानको कुख, चन्द्रमा सदैव प्रकाश करता रहे। आकाशतलमें सूर्य धीमे धीमे तपे। इन्द्र स्नान कराये तथा मय पानी छिड़कने का काम करे। सहस्रार ये शर्तें मंजूर कर लो। तब रावणने इन्द्रको मुक्त कर दिया॥१-६॥

परन्तु इन्द्र अपना राज्य छोड़ संन्यास साधकर चला गया। रावणने भी बलात् विजयसुन्दरी रूपी बधूका अपहरणकर अपने बाहुपाशमें उसका आलिंगन किया॥१०॥

इस तरह धनंजय आश्रित स्वयम्भूदेव कृत पद्मचरितमें 'रावणविजय' नामक सत्तरहवाँ पर्व समाप्त हुआ।

●

[१८ अट्ठारहमो संधि]

एमें साहसु मउँ वि पुरन्दरहों परिअञ्चेंवि सिहरइँ मन्दरहों ।
णामइ वि पडीवउ णाम पहु तामन्तरें दिट्ठु अणन्तरु ॥

[१]

पेक्खेप्पिणु गिरि-कडय-सुमणहु । जिण वन्दण हूयम्मकिय-मणहु ॥१॥
सुरवर सम सेव करावणेण । मारिवि पणुविय रावणेण ॥२॥
'मह-भवण सुणयुम्बकिय-णाम । गउ वक्खणु सुग्गल कायँ भाम ॥३॥
तं तिहुवणें वि पमणइ समर धीरु । 'पहु वर णामेण कणत्तवीरु ॥४॥
पसरइ माणव कयरप्प-भाउ । सहसयर-सवेँ तवसि वाउ ॥५॥
उप्पण्णउ पणहों पुत्तु णाउ । गउ दीसइ देवागमु स-वाउ' ॥६॥
तं वयणु सुणेप्पिणु मिसिमिसन्तु । गउ केवइँ वेवइँ मुणिवरिन्दु ॥७॥
परिअञ्चेवि वन्देवि थुणेवि सिविणु । पयस्तु वि जणु वणु कपनु सिद्धु ॥८॥

घत्ता

महमयाइँ को वि कों वि मउदणाइँ कों वि सिणवालमयाइँ गुणमयाइँ ।
कों वि दिट्ठु सम्मत्तु अप्पवि चिउ पर रामसु पहु ण उवसमिउ ॥९॥

[२]

पम्मारहु महारिसि मणइ तेम्बु । 'भज्जुणहु कहिँ वि वइसरें वि पत्तु ॥१॥
जहें राउसुय माइम्यारें हूउ । रयणायरें रमणु ण केहि मूढ ॥२॥
अमियाणएँ अमिय ण केहि कम्म । अप्पाहि तिहुवण कहुमय वेस' ॥३॥
तं वयणु सुणेप्पिणु दससिरेण । बुच्चइ मोत्तुणमिरिय-सिरेण ॥४॥
'सक्कमि घूमकरें धम्म देमि । सक्कमि घण-कमिणमणि-रयणु कमि ॥५॥
सक्कमि गिरि-मन्दर णिद्दलेमि । सक्कमि दस दिसि-वह परमलेमि ॥६॥
सक्कमि मारुव पोट्टलें छुहेमि । सक्कमि जम-महिसें समारुहेमि ॥७॥
सक्कमि रयणायर जलु पिएमि । सक्कमि आसीविसु धरि पिएमि ॥८॥

अठारहवीं संधि

युद्धमें इन्द्रका मद चूरकर रावणने मन्दराचल पर्वतके शिखरोंकी प्रदक्षिणा की। वहाँसे लौटते हुए उसे अनन्तरथ मुनिके दर्शन हुए।

[१] सुभद्र और सुमेरु पर्वत पर जिनवन्दनाका कोलाहल हो रहा था। उसे सुनकर सैकड़ों देवोंसे सेवा करानेवाले रावणने भुवनमें विख्यातनाम और भटसंहारक अपने मामा मारीचसे पूछा, "यह किस बातका कल-कल शब्द हो रहा है।" यह सुनकर सुधीर उसने कहा "यह अनन्तवीर्य नामक मुनि हैं। दशरथके भाई अनरण्यके पुत्र। सहस्रकिरणके साथमें इन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली थी। और अब इन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ है। यानों और देवोंका यह आगमन इसीलिए हो रहा है।' यह सुनकर निशाचरराज रावण मुनिवरके निकट गया। प्रदक्षिणा और स्तुतिके अनन्तर, वह उनके सम्मुख बैठ गया। उसने देखा कि वहाँ सभी लोग कोई न कोई व्रत ले रहे हैं। कोई महाव्रत तो कोई अणुव्रत। कोई-कोई सम्यक्त्व ले चुका था। परन्तु रावणने एक भी व्रत नहीं लिया ॥१-९॥

[२] तब धर्मरथ महाऋषि बोले,—"अरे! मनुष्य होकर यहाँ इस तरह बैठे हो और दशमुख मोहान्धकारको छोड़ और इन रत्नाकरोंमेंसे रत्नको ग्रहण कर। इस अमृतायमान वस्तु अमृतको क्यों नहीं लेता! अत्यन्त निगूढ़ जो बहुत कष्टसे प्राप्त होता है।" यह सुनकर रावणने स्तुतिपूर्वक गद्गद स्वरमें कहा—"मैं आगकी ज्वालाको शान्त कर सकता हूँ नागराजके फणसे मणिको ला सकता हूँ सुमेरुपर्वतका दमन कर सकता हूँ बड़ी शिलाओंको चूर-चूर कर सकता हूँ। यममहिषपर सवारी कर सकता हूँ। सर्पराजके विषदन्तसे विष ला सकता हूँ। इन्द्रको रणमें पराजित कर

घत्ता

सच्चमि सग्गहों रणें उत्थरेंवि सच्चमि ससि-सूरहँ पह हरेंवि ।
सच्चमि महि णवणु पहु करेंवि दुक्कर मउ सच्चमि मउ मरेंवि ॥६॥

[१]

परिचिन्तेंवि सुइरु णराहिवेण । अण्णु कवि एक्कु वरु पुत्तु तेण ॥१॥
जं मइँ ण थविज्जइ णाह-णाउ । त मरमि पमुसि ण पर-ममत्तु ॥२॥
गउ एम मणोग्गिउ विमल मवइ । थिउ जणु रज्जु सुभाणु णवइ ॥३॥
एत्तहें वि महिन्दु महिन्द-णामें । दुरयरें दुन्दुहि-मणुज-णामें ॥४॥
तहों हिययवेय णामेण भज्ज । तहें दुहिय अञ्जणसुन्दरी मणोज्ज ॥५॥
तिहुयण रमणिहिँ वण्ण जिणेवि । थिय णरवइ सुहँ वण-कमलु देवि ॥६॥
णवजोव्वण जिय जहों कण्ण देमि । कइ वइइ गिरि-कइलासु णेमि ॥७॥
विज्जाहर-सयइँ मिलन्ति जामु । वर जणहों दोसइ को वि तेत्थु ॥८॥

घत्ता

गउ एम भणेंवि पहु पवणहों जिण-प्पाणिएँ महारमहों ।
आवासिउ पासें हिँ णीयलेंहिँ जं ससावणु मन्दार-तरें हिँ ॥९॥

[२]

एत्तहें वि ताम पल्हाय-राउ । सहुँ केउमइएँ रविपुरहों आउ ॥१॥
स-विमाणु स साहणु स-परिवारु । अण्णु वि तहिँ पवणञ्जय-कुमारु ॥२॥
एक्कहें पुण्णाणु कहइ । जं पवणहेँ इन्दु वहइ ॥३॥
अवर वि जे जे आसण्ण-भव्व । ते ते विज्जाहर मिलिय सव्व ॥४॥
परिहिय वसुणन्दीसराहँ । थिय णवण-पुण्ण तहोणेह-णामें ॥५॥
तिण्णेंवि दियहेँ गिरि मि णराहिवाहँ । मिलियइ परोप्परु हूय ताम ॥६॥

सकता हूँ, सूर्य और चन्द्रकी ख्याति छीन सकता हूँ, आकाश और धरतीको एक कर सकता हूँ, पर दुद्धर व्रत धारण नहीं कर सकता" ॥१-६॥

[२] फिर मनमें कुछ सोचकर रावण बोला—"शायद मैं एक व्रत ले सकता हूँ और वह यह कि जो सुन्दरी मुझे नहीं चाहेगी मैं उस स्त्रीका बलपूर्वक नहीं हरूँगा।" यह व्रत लेकर वह अपने नगर चला गया। और अचल राज्य करने लगा। इधर, महेंद्र नगरमें सब कामनाओंका अनुभव करनेवाला राजा महेन्द्र रहता था। उसे अपनी सुन्दर पत्नी मनोवेगासे अंजना नामकी पुत्री उत्पन्न हुई। एक दिन वह गेंद खेल रही थी। राजाको अचानक उसके स्तन देखकर चिन्ता हुई। वह मुँहपर हाथ रखकर सोचने लगा—"कन्या किसे दूँ। अच्छा मैं निश्चय ही कैलाश पर्वत पर जाऊँगा। वहाँ सैकड़ों विद्याधर मिलेंगे उसमें कोई न कोई वर अवश्य मिल जायगा।" यह सोचकर वह राजा जिनसे अधिष्ठित अष्टापद पर्वतपर गया। वहाँ वह बगलमें डेरा डालकर ठहर गया। वे ऐसे मालूम होते थे मानो मन्दरा चलके तटोंके निकट तारागण हों ॥१-६॥

[४] इसी बीच आदित्यपुरसे राजा प्रह्लादराज अपनी पत्नी केतुमतीके साथ वहाँ आया। वह विशाल सेना और परिवारसे युक्त था। उसके साथ ही कुमार पवनंजय भी था। उन्होंने एक जगह डेरा डाला वह ऐसा जान पड़ता था मानो जिनकी वन्दना-भक्तिके लिए इन्द्र ही आया हो। इसके अतिरिक्त और भी दूसरे आसन्न भव्य विद्याधर आकर आपसमें मिल गये। सब-प्रथम उन्होंने फाल्गुनमें नन्दीश्वर-द्वीपके त्रिलोकीनाथ जिनका अभिषेक और पूजन किया। दूसरे दिन उन दोनों राजाओंमें मित्रता-परिचय हुआ।

राजा महेन्द्रने मजाक-मजाकमें कहा "तुम्हारी लड़की, हमारा लड़का। राजन्, विवाह क्यों नहीं कर देते"। यह सुनकर राजा महेन्द्रने पक्का वचन दे दिया। सज्जन लोगोंको इससे बहुत सन्तोष हुआ। पर दुर्जन लोगोंके मुँह उतर गये। "अंजना वधू और पवनंजय वर "दोनोंका तीसरे दिन नेत्रानन्द-दायक विवाह होगा" यह घोषणाकर, वे लोग अपने-अपने घरको चले गये ॥१-१०॥

[५] परन्तु दुर्जेय दुर्निवार कामसे पीड़ित पवनंजय, आनेवाले तीसरे दिनकी प्रतीक्षा सहन नहीं कर सका। वह विरहानलके वेगसे पीड़ित हो उठा। उसका चित्त धुँआता जलता हुआ ऐसे धक-धक कर रहा था मानो मंदराचल ही भीतर-भीतर जल रहा हो। चाँदनी, चन्द्रमा, आर्द्र चन्दन, कपूर, कमल-दलोंकी कोमल सेज, दक्षिण-पवन और शीतल पानी—इन सबका उपचार भी उसे असह्य हो रहा था। वे उसे केवल आगकी चिनगारियाँ ही जान पड़ रही थीं, कामने उसके अंग-प्रत्यंगको उसी तरह चूर-चूर कर दिया था जिस तरह दुर्जनका संग सज्जनके हृदयको टूक-टूक कर देता है। ग्लानि और वेदनामें वह आहें भरता लम्बी साँस लेता काँपता और हाहाकार कर क्रन्दन करता। ओढ़ना आभरण और दूसरे-दूसरे प्रसाधन सभी उसे असुहावने लगते थे। उसे पसीना निकलने लगा। शरीर कुम्हला गया। उसकी यह हालत देखकर अन्यमनस्क होकर, उसके प्रहसित नामके मित्रने उससे पूछा, "कुमार आप दुबले क्यों हो रहे हैं ?" ॥१-९॥

[६] विरहकी आगमें कुमार पवनंजयका मुखकमल मुरझा चुका था फिर भी हँसते हुए उसने कहा—"हे नयनानन्द, सहृदय मित्र, मैं तीन दिन सहन नहीं कर सकता यदि आज मैं अपनी प्रियाके दर्शन नहीं कर पाता, तो निश्चय ही कल सुमार

तं णिसुणेंवि तुट्ठाएं पहसिएण । कमलेण व वयणें पहसिएण ॥४॥
'फणि-सिर-रयणेण वि कार्हि गण्णु । एँउ कारणु केत्तिउ जं णिसण्णु ॥५॥
किं पवणहों कवणु वि दुप्पवेसु' । गय बेण्णि वि रयणिहिं तप्पवेसु ॥६॥
थिय जाल-गवक्खएँ विट्ठ बाल । णं मयण-बाण-बहु-सोय-साल ॥७॥
मारो वि मरइ विरहेण जाएँ । को पवणेंवि सक्कइ रूवु ताएँ ॥८॥

घत्ता

तं बहु पेक्खेंवि परितोसिएण वाहणु पसंसिउ पहसिएण ।
'तउ जीविउ सहलु जयम्मि सिय बहु कमें अल्लीणइ एह तिय' ॥९॥

[७]

एत्थन्तरें वइदेही-जम्म-भाउ । अइ वोल्लेंवि चवइ वसन्तमाउ ॥१॥
'सहलउ तउ माणुस-जम्मु माएँ । भत्ताउ पहञ्जणु जम्म जाएँ' ॥२॥
त णिसुणेंवि दुम्मुह हुइ वेस । सिउ णिसुणेंवि मणइ वि मीसणेस ॥३॥
'सोहामणिया पहु परिहरेंवि । थिउ पवणु कवणु गुणु समरेंवि ॥४॥
जं अन्तरु गोपय-सायराहुँ । जं खोइयार्ह दिवायराहुँ ॥५॥
जं अन्तरु केसरि-कुञ्जराहँ । जं कुसुमाउह तित्थङ्कराहँ ॥६॥
जं अन्तरु पन्नग-महोरगाहुँ । जं अमरराय पहरण णगाहुँ ॥७॥
जं पुण्डरीय जम्बुअगाहुँ । तं विज्जुप्पहु पवणञ्जयाहुँ' ॥८॥

घत्ता

जाएहिं माणवेंहिं कुविउ णरु थिउ मीसणु अच्छव-कण्ण-कम ।
'किं वयणेंहिं बहुएँहिं वाहिरेंहिं रिउ रक्खउ विहि मि छेइमि सिरइँ' ॥९॥

[८]

जणु-मच्छरेण परिभासिरेण । करें धरिउ पहञ्जणु पहसिएण ॥१॥
'जं करि-सिर-रयणुक्खिय(?)एण । त असिणउ महवइ एत्थु केम ॥२॥

मौत दुःखी हुई समझो।" यह सुनकर परिहास करते हुए उसने कहा, "अरे सपराशके फलका भणिरत्न खाना भी तुम्हें कुछ नहीं है, फिर यह कितनी सी बात है, जिसके लिए तुम इतने दुःखी हो रहे हो। क्या पवनका भी कहीं दुष्प्रवेश हो सकता है।" वे दोनों रातका तपस्वीका वेष बनाकर, वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने खालीमेंसे झरोखेमें बैठी हुई उस बालाका देख लिया। उसे लगा मानो वह कामदेवके धनुष बाण तूणीर हो! भला जिसके विरहमें काम भी मर रहा हो उसके रूपका वर्णन कौन कर सकता है? बधूके रूपकी प्रशंसा करते हुए, प्रहसितने पवनञ्जयसे कहा "जिसके हाथ यह स्त्री लगेगी, उसीका जीवन अनन्त सुखमासे पूर्ण होगा ॥१-६॥

[७] इतनेमें, अंजनाकी सखी वसन्तमाला अष्टमीके चन्द्रकी तरह उसके भालको देखकर बोली, 'माँ तुम्हारा जन्म सफल है जो तुमने पवनञ्जय-सा पति पा लिया।" यह सुनकर दूसरी सखी दुष्ट्या दुष्प्रेशा मिश्रकेशी सिर हिलाकर बोली, "स्वामिनी विद्युत्प्रभको छोड़कर पवन कुमारमें ऐसा कौन सा गुण है। विद्युत्प्रभ और पवनञ्जयमें वही अन्तर है जो समुद्र और गोपदमें। सूर्य और जुगनूमें हाथी और सिंहमें। तीर्थङ्कर और कामभें गरुड़राज और सर्पमें। वज्र और पहाड़में। चन्द्रमा और कुमुदमें। इनकी इस बातचीतसे पवनञ्जय क्रोधसे भयंकर हो उठा। उसने तलवार खींच ली और वह बोला "क्या इन बाहरी नीरसोंके कहनेसे शत्रु रक्षित रखा जा रहा है। मैं दोनोंका सिर उड़ाये देता हूँ" ॥१-६॥

[८] तब बहुत-सी कड़ी बातें कहकर प्रहसितने पवनञ्जयको हाथसे पकड़ लिया। वह बोला "हे देव! जो तलवार गज-

मस्तकोंके रत्नोंसे उज्ज्वल हैं उसे इस तरह मैली क्यों कर रहे हैं ? कुछ तो खयाल करो, मूर्खकी तरह क्या बोलते हो।" उसे यह बड़ी कठिनाईसे अपने डेरेपर ले गया। कुमारकी वह रात उस वर्षके समान कटी, सवेरा होनेपर सूर्य अपनी हजारों किरणोंके साथ उदित हुआ। कुमारने प्रमुख राजाओंको पुकारकर और भेरी बजवा कर, प्रस्थान कर दिया। उसके जानेसे सुन्दरी एक दम उन्मत्त हो उठी। जैसे-जैसे वह एक-एक पग बढ़ाता वैसे-वैसे उस बेचारीका हृदय काँप उठता उस अवसरपर बहुतसे जानकार राजाओंने हाथ-पैर पकड़कर उसे जबरदस्ती रोक लिया। उसने भी तब अपने मनमें, यह उपाय सोच लिया कि मैं एक बार उसका हाथ पकड़कर (विवाह कर) फिर बारह वर्षके लिए छोड़ दूँगा ॥१-५॥

[६] बहुत दुःखसे उन्मन होकर किसी प्रकार कुमारने अञ्जना से विवाह कर लिया और बारह वर्षके लिए उसका त्यागकर अलग रहने लगा। सपनेमें भी वह उसके साथ न बोलता न सोता। ज्यों-ज्यों वह उसके दरवाजे तक भी नहीं आता त्यों-त्यों वह अभागिन और छीजने लगी। विरह-ज्वालासे दग्ध उसके हृदयको अश्रुधारा शान्त नहीं कर पा रही थी। घरकी भित्तियोंके सारे चित्र उसके निश्वासके धुएँसे धूमिल हो गये थे। उसके ढीले आभूषण ऐसे गिर-गिर पड़ते थे मानो उसके नेहके खण्ड-खण्ड गिर रहे हों। उसका सारा रक्त सूख चुका था। केवल चमड़ी और हड्डियाँ बची थीं ऐसा ज्ञान पड़ने लगा कि उसके प्राण रहें या न रहें। ठीक इसी अवसरपर इन्द्ररूपी मृगके लिए सिंहके समान रावणने अपने दूत दुमुख कुमारको पवनञ्जयके पास भेजा। उसने आकर कुमारसे कहा, "रणभेरी बजवाकर रथपर आरूढ़ रावणने वरुणपर 'चढ़ाई' कर दी है" ॥१-५॥

प्रहसितको बताया। उसने कहा, 'बहुत ही अच्छी बात है।" तब वे दोनों आकाश-मार्गसे ऐसे चढ़े मानो लक्ष्मीका अभिषेक करने मत्तगज ही जा रहे हों॥ १-९॥

[१३] चलकर वे दोनों भवनमें पहुँचे। पवनकुमार छिपकर एक जगह बैठ गया। और प्रहसित अन्तःपुरमें गया। प्रणाम करके उसने अपने आनेका कारण बताते हुए कहा "हे देवी! आज आप सफलमनोरथ हुईं, मैं पवनकुमारको लेकर आया हूँ।" यह सुनकर, वसन्तमाला बोली 'अरे जन्म-जन्मान्तरासे पाप संचित करने वाली अञ्जनाका इतना भारी पुण्य? वह अभागिन अधिक क्यों रोये।" उसके (वसन्तमालाके) स्तनोंके बीचका हिस्सा कुछ-कुछ आँसुओंसे गीला हो रहा था। इतनेमें स्वयं पवनकुमार ही आ पहुँचा। मीठी वाणीमें विनयालाप कर उसने उसे खूब आनन्द सुख और सौभाग्य दिया हाथमें हाथ लेकर वे दोनों पलंग पर चढ़ गये और हास-परिहासके साथ रमण करने लगे। एक दूसरेका वेगपूर्वक अपनी भुजाओंसे आलिंगन लेते हुए वियोगकी बात न जानते हुए वे दोनों एक प्राण हो गये॥ १-१०॥

इस प्रकार धनञ्जय-आश्रित स्वयम्भू कविद्वारा रचित 'पवनाञ्जय-विवाह' नामका अठारहवाँ पर्व समाप्त हुआ।

●

[१६ एगुणवीसमो संधि]

पच्छिम-पहरें पहञ्जणेंण आउच्छिय पिय पवणञ्जएँण ।
'त मणसंभरहि मिगणयणि जं मइँ अवहत्थिय मन्तएण ॥

[१]

आन्तएण आउच्छिय जं परमेसरी ।
पिय विरहजल्लियु अञ्जणसुन्दरी ॥१॥

मन मउलिअणेप्पिणु विण्णवइ । 'पवसन्तें पभ्मु ण संभवइ ॥२॥
ता उयरु काइँ देमि अण्णहों । ण वि सुणइ एउ मम्मु मणहों ॥३॥
पिसेय तेम सुपरिठवेवि । कङ्कणु अहिणाणु समप्पेवि ॥४॥
गउ णरवइ सहुँ मित्तेण तहिँ । माणससरें कुसावासु जहिँ ॥५॥
गुरुधार हूअ पच्चों वि सइ । कोक्कामेवि पमणइ केसमइ ॥६॥
'एउ काइँ कम्मु पइँ आयरिउ । णिम्मलु महिन्द-कुलु मसरिउ ॥ ॥
तुम्हार पइरि विणिवारमहो । सुणु सहुँ किय सुम्हहो भत्तारहो' ॥८॥
तं सुणेवि वसन्तमाल चवइ । 'सुविणे वि कलङ्कु ण संभवइ ॥९॥

घत्ता

इसु कङ्कणु इसु परिहणउ इसु कण्ठिरमु पवणञ्जयहों ।
जं ता का वि परिरक्ख करें परिसुगम्मुँ जेम मग्गें अयहों ॥१०॥

[२]

तं सिसुणेवि केसमइ सगुहिय अप्पुणु ।
वे वि णाउ कसवायँहिँ हयउ पुणुप्पुणु ॥१॥

पक्कि णारहो णाहिँ सुपम्मु करें । जें कवड वहावेंवि घुरइ करें ॥२॥
अण्णु वि णत्तिउ सोहम्मु कम । जें कङ्कणु देइ कुमारउ तउ ॥३॥
कडुमसम्मर पहर मभारउ । संभावउ ण वि णिरवरउ ॥४॥

उन्नीसवीं सन्धि

रातके अन्तिम प्रहरमें प्रवासपर जाते हुए, पवनञ्जयने अपनी प्रियतमा अञ्जनाको आश्वासन देते हुए कहा, "हे मृगनयनी, जो मैंने भ्रमसे तुम्हें ठुकराया उसके लिए मुझे क्षमा करो।"

[१] जाते समय पतिके ऐसा कहने पर, परमेश्वरी दुखिनी अञ्जना नीचा मुँह करके रह गई फिर उसने हाथ जोड़कर उससे विनय की 'रजस्वला होनेसे यदि मैं गर्भवती हो गई तो क्या उत्तर दूँगी, यह बात मेरे मनमें समझ नहीं पड़ रही है।' तब मनमें कुछ सोचकर कुमारने पहचानके लिए अपना कंगन उतार कर उसे दे दिया और स्वयं मित्रके साथ मानसरोवरपर अपने दूतावासमें चला गया। कुछ दिनों बाद, बहूका भारी पेट देखकर, केतुमतीने उस महासतीको बुलाकर पूछा 'तूने यह कौन-सा पाप किया, मेरे पवित्र महेन्द्र कुलको कलंकित कर दिया, दुर्जेय शत्रुओंका निवारण करनेवाले मेरे पुत्रका मुँह काला कर दिया।" यह सुनकर वसन्तमालाने कहा—'सपनेमें भी इन्होंने कलंकका काम नहीं किया। कुमार पवनञ्जयका यह कंगन परिधान और स्वप्नमाला है, (देख लो) नहीं तो लोगोंके बीच में परीक्षा करके बात साफ कर लो'॥ १-६॥

[२] यह सुनकर काँपती हुई वह उठी, तो भी उन दोनोंका वसन कोड़ोंके आघातसे बार-बार पीटा। सास बोली—"क्या बारके घरमें सोना नहीं हो सकता उसीने कड़े गढ़वाकर हाथोंमें पहना दिये और भी यह सौभाग्य कर दिया जिससे (यह मालूम हो) कि कुमार (पवनञ्जय) ने तुम्हें कड़े दिये। कटु शब्दोंके प्रहारसे भयभीत व दोनों चुप रह गईं। तब उसने एक कर

भन्को पुकारकर कहा—"शीघ्र घोड़े जोतकर, महारथमें बैठ जाओ, और इस दुष्ट कुलकलंकिनीको रथ सहित महेन्द्र नगरसे दूर कहीं छोड़ आओ। इसने मेरे शशिकी तरह स्वच्छ कुलमें दाग लगाया है। इस प्रकार छोड़ना कि जिससे हम सब इनकी खबर न पा सकें।" यह सुनकर उसने शीघ्र अपना रथ जोता, और उन दोनोंको रथमें चढ़ाकर स्वामिनीके आदेशके अनुसार वह उन्हें ले गया॥ १-९॥

नगरके बहुत दूर वनमें जाती हुई अञ्जनाको उसने छोड़ दिया। वह बोला—"माँ मुझे क्षमा करना।" और फिर दहाड़ मारकर रोते हुए भटने उसका अभिनन्दन किया॥ १०॥

[३] इस प्रकार उस क्रूरकर्मीके छोड़कर चले जाने पर सूरज भी डूब गया, मानो वह अञ्जनाके दुःखको सहन नहीं कर सका था। उस भीषण रातमें वह अत्यधी और भी भयानक हो उठी। वह खाती-सी झोंकती-सी या ऊपर गिरती-सी प्रतीत हो रही थी। सियारकी ध्वनिसे वह डराती-सी और मृगालके भयंकर शब्दोंसे रोती-सी सर्पोंके फूत्कारसे फुफकारती-सी पुकारसे पिपियाती-सी जान पड़ती थी। बड़े कष्टसे वह रात बिताने पर सबेरे प्रातःमें सूर्योदय हुआ और (किसी तरह) अञ्जना अपने पिताके नगर पहुँची। तब प्रतिहारने पहले ही दौड़ कर राजाको सूचना दी "परमेश्वर सुन्दर मुखी मृगनयना अञ्जना सुन्दरी आ रही हैं।" यह सुनकर राजाने कहा "जाओ शीघ्र ही नगर और बाजार की शोभा करो दोनों ओर मणि कांचनका बन्दनवार हो। दूसरे प्रसाधन भी चढ़िया हों। सभी मत्तगज सजवा दो और अश्वोंके समूहका कवच पहना दो। जयमंगल तूर्य बजवा दो, और सभी मेरे सम्मुख चलें"॥ १-१०॥

[४] यह आदेश देकर, उसने फिर प्रतिहारसे पूछा—"कितने घोड़े और कितने रथपर आये हैं और साथ कौन आया है ?" यह सुनकर, प्रतिहारने उत्तर दिया—'न तो उसके साथ कोई सहायक है और न सेना। मुझसे तो इतना ही कहा है कि वसंत मालाके साथ अञ्जना आई हुई है। आँसुओंसे उसका स्तनभाग भीग रहा है, वह गर्भवती और उदासमन दिखाई देती है।" यह सुनते ही राजाका मुख नीचा हो गया मानो उसके सिरपर वज्र ही टूट पड़ा हो। वह बोला—"दुःशील उसे मत आने दो, फौरन उस घरसे बाहर निकाल दो।" इस पर साधुवचन मंत्री आमन्तने कहा—"राजन्! बिना परीक्षा किये कोई भी काम नहीं करना चाहिए। सासें बहुत बुरा कर डालती हैं, वे महासतीको भी दोष लगा देती हैं। अपनी बहुओंके लिए सासें उसी प्रकार शत्रु होती हैं जैसे सुकविकी कथाके लिए दुर्जनोंकी बुद्धि या कमलिनियोंके लिए हिम मेघ ॥ १-६ ॥

[५] अनादि कालसे सास और बहुओंके विषयमें यह बात प्रसिद्ध चली आ रही है कि उनमें एक दूसरेके प्रति बैर होना स्वाभाविक है। जिस दिन उसका पति पवनञ्जय इस बातका विचार करेगा उस दिन यह बहुत बुरी बात होगी। मंत्रीके इस वचनसे प्रसन्नकीर्ति मनमें रुष्ट हो उठा। वह बोला "स्नेहहीन सीस क्या ? शत्रुको जाननेवाली अपनी कीर्तिसे क्या ? निरलंकार सुकन्यासे क्या ? लज्जाहीन लड़कीसे क्या ? अञ्जना घरमें है और पति पवनञ्जय युद्ध क्षेत्रमें। यह गर्भ कहाँसे आया।" यह सुनकर, किसी एक आदमीने धक्का देकर उसे निकाल दिया। तब जगलमें प्रवेश कर वह, अपनेको ही प्रताड़ित कर, क्रन्दन करने लगी "हे दैव मैंने ऐसा कौनसा पाप किया कि जो निधि

दिखाकर तुमने दोनों नेत्रोंका हरण कर लिया। वनमें इस प्रकार विलाप करते हुए उन्हें देखकर, वहाँ ऐसा कौन था जो द्रवित नहीं हुआ। यहाँ तक कि स्वच्छंद चरनेवाले हिरनोंने भी घास खाना छोड़ दिया॥ १–१०॥

[६] शोकसे भरी हुई अञ्जना बार-बार रोकर यही कहती—"मुझ बराबर दुखकी पात्र दुनियामें कोई नहीं। सासने तो मुझे छोड़ ही दिया था। पर हे माँ, तुम भी मुझे नहीं रख सकीं, हा, निष्ठुर पिता और भाईने भी मुझे नगरसे निकलवा दिया। श्वसुरगृह, पितृगृह तथा पति सभीने मेरे मनोरथ पूरे कर दिये।" गर्भवती वह जैसे ही पग आगे बढ़ाती वैसे ही सूलका कष्ट कर उठती। सुखहीन भूखी, प्यासी और पीड़ित वह वनकी पर्वत गुहामें गई। इसी अवसर पर वहाँ शुभमति अमृतगति नामक महामुनिको देखकर उनके पास वे दोनों पहुँचीं। वहाँ जाते ही उनका सब क्लेश दूर हो गया। वह महामुनि माना संसारके पापसे सताये हुए व्यक्तिके लिए क्षमाशील योगीकी तरह थे। मुनिके चरणोंमें प्रणामकर और अपना मुख पोंछकर, अञ्जनाने कहा—"पूर्व जन्ममें मैंने कौन-कौनसे पाप किये जिससे मुझे ऐसे दुखका अनुभव करना पड़ रहा है"॥ १–१०॥

[७] इसपर वसन्तमाला बोली, "यह तेरा नहीं बल्कि तेरे गर्भका फल है।" यह सुनकर महामुनिने कहा,—"यह इस गर्भका दोष कदापि नहीं।" यतिने फिर भाषण की—"तुम्हारा यह पुत्र रणविजयी और चरमशरीरी होगा। पूर्व जन्ममें तुमने सौतकी डाहसे, अपने ही हाथसे जिनप्रतिमाको घरके आँगनमें छिपा दिया था उसीसे तुम्हें यह दुख भोगना पड़ रहा है। अब सब सुख भी पाओगी।" यह कहकर अमृतगति वहाँसे चले गये।

इतनेमें, कृतान्त एक-सिंह, शनि, अशनि तथा यमकी तरह भयङ्कर, लम्बे पैर बढ़ाता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उसके नख गजके सिरके रक्तसे लाल थे, और अयाल भी रक्तरंजित था। उसकी दाढ़ें विकराल थीं। मुँह खुला हुआ, आँखें, रक्तकमल या मूँगे की तरह लाल। वह प्रलय-समुद्रकी तरह गरजता, और पूँछके दण्डसे सिर सुसज्जाता हुआ, दीख रहा था॥ १-१०॥

उसे देखकर अञ्जना मूर्छित होकर धरतीपर गिर पड़ी। तब विद्याबलसे आकाशमें आकर, बसन्तमालाने चिल्लाना शुरू कर दिया॥ ११॥

[८] "हे समीर, हे पवनञ्जय, अनिल, प्रभञ्जन! अञ्जना सिंहरूपी यमकी दाढ़ोंके तले है, हा दुष्ट केतुमतीन, यह सब करती की उसके दुष्ट मुँहमें आकर विचारीकी क्या हालत होगी! हे तात महेन्द्र! सिंह उसे पकड़ रहा है, हे भाई प्रसन्नकीर्ति, रक्षा करो। हे माँ क्या तुम भी नहीं बोलती। तुम्हारी लड़की मूर्छित पड़ी है, उसे उठाओ। हे देव दानव, विद्याधर, किन्नर, मनुष्य यक्ष और राक्षसो कोई भी तो मेरी सखीको बचाओ। उसे शेरने पकड़ लिया है। तब रत्नचूड़से मणिचूड़ नामका परोपकारी गणपति वहाँ आया, और उसने अष्टापदके शिशुका रूप धारणकर उस सिंहको विमुख कर दिया। बसन्तमाला आकाशसे उतरकर अञ्जनासे मिली। उसने कहा—"यहाँ अष्टापद नहीं है यह मायावी था जो अब विलीन हो गया है" ॥ १-१०॥

[९] उनकी आपसमें इस तरह की बातें हो ही रही थीं कि किसी एक विद्याधरने एक बहुत ही सुन्दर गीत गाया। उसे सुनकर वे दोनों यह जानकर बहुत संतुष्ट हुई कि कोई परोपकारी इस वनमें छिपकर रहता है जिसने गन्धर्व प्रकटकर हमें अकाल मरणसे बचाया। इस प्रकार बातचीत करती वे उसी पर्वत

गुफामें रहने लगी। चैत्रकी कृष्णाष्टमीको श्रवण नक्षत्र और रातके अंतिम प्रहरमें अञ्जनाने एक पुत्रका प्रसव किया। उस नवजात शिशुके हाथ-पैरोंमें हल कमल, वज्र मछली आदिके चिह्न थे। चक्र, अंकुश, कूर्म, शंखके चिह्नोंसे सहित वह अत्यन्त सुलक्षण शिशु था। इसी बीच एक दिन, शत्रुसेनाका संहार करनेवाला राजा प्रतिसूर्य आकाशमार्गसे जा रहा था। सूर्यके समान तेजस्वी उसने इन्हें देख लिया। उतरकर उसने पूछा—"कहाँ पैदा हुए, कहाँ बढ़े, यह किसकी बेटी है, और यह कुलपुत्र किसका है, ऐसा कौन-सा बड़ा दुःख इसे है जो यह इस तरह वनमें रो रही है" ॥१-१०॥

[१०] वसन्तमालाने प्रति-उत्तरमें सारा वृत्तान्त कह सुनाया, और उसने यह भी कहा "इस सुन्दरीका नाम अञ्जना है, यह मुग्धा जिन-प्रतिमाकी तरह शुद्ध है। रानी मनोवेगासे उत्पन्न राजा महेन्द्रकी यह पुत्री है। प्रसन्नकीर्तिकी बहन और पवनञ्जय की पत्नी है। उसके वचन सुनकर, विद्याधर आँखोंमें आँसू भरकर बोला—"माँ मैं, राजा महेन्द्रका साला हूँ और प्रसन्नकीर्ति मेरा भानजा है। हनुरुह द्वीपका राजा प्रतिसूर्य मैं तुम्हारा मामा हूँ।" यह सुनकर अञ्जना धीरज खोकर और भी खूब फूट-फूटकर रोई। वह जो पुण्यरहित हो गई थी मानो उसीसे उसे यह शोक क्षणमें मिला था। आपसमें आलिङ्गन करते हुए उन्होंने एक दूसरेको जकड़ लिया। करुण महारस मानो पीड़ित होकर ही आँसुओंकी अविरल धाराके बहाने भरभराकर बाहर निकल रहा था ॥१-१०॥

[११] बड़ी कठिनाईसे उसे ढाढ़स बँधाकर आँसू पोंछ मामा उसे अपने विमानमें बैठाकर ले गया, परन्तु अमाम्यवश आकाशसे जाती हुई ऐरावतके कुम्भस्थलकी तरह स्तनवाली

ओसरिउ बाहु भउ-पुलइयउ । णं कमलय-सिरिहें गब्भु गलिउ ॥३॥
मारुइ एवहि सिक्खविउ हणुहें । णं विज्जु-पुञ्जु अप्परि सिहरें ॥४॥
उववाएँ वि मिउ विज्जाहरेंहिं । णं जम्मणें जिणवरु सुरवरेंहिं ॥५॥
कञ्चणमें समप्पिउ ताव दिहि । णं पइट्ठु पईवउ कलु सिहि ॥६॥
सिय-पुरु पइसारेंवि परवरेंहिं । वद्धावणउ किउ पडिहिमवरें ॥७॥

घत्ता

'सुन्दरु' कोक्कें सुन्दरु भणेंवि 'सिरिसइलु' सिलायलु चुण्णु किउ ।
हणुरुह-दीवें वड्ढियउ 'हणुवन्तु' णामु तें तासु किउ ॥८॥

[१२]

एत्तहे वि पवर-वुसण मेल्लावेप्पिणु ।
वरुणहों रावणहो वि सन्धि करेप्पिणु ॥१॥

सिय-पवरु पईसइ जाव मरु । पभणेप्पणु ताम सिय-परियण-पउ ॥२॥
पेक्खेप्पिणु पुच्छिय का वि तिय । 'कहिं कञ्जणसुन्दरि ताय-पिय' ॥३॥
त णिसुणेंवि वुच्चइ वालियएँ । 'मय रम्म गन्ध-सोमालियएँ ॥४॥
किर गब्भु भणेंवि पर-णरवरहों । कञ्जमहएँ णिविय कुम्भरहों ॥५॥
त सुणेंवि मम्मीरेणु णीसरिउ । अणुमरिसेंहिं वयणेंहि परियरिउ ॥६॥
गउ जेत्थु जेत्थु ण मारुरउ । किर हरिसावेसइ सा पुरउ ॥७॥
सिय दइ ण दिट्ठ णयर तहिं मि । वसइन्तु पइज्जणु गउ कहिं मि ॥८॥
चरियत्तिय पइम्पियाइ-समम । दुम्पाउर ओहुलिय-वयण ॥९॥

घत्ता

'एम भणेप्पइ केउमइ एम्बु मणोरह माएँ गउ ।
विरह-दवाणल-दीविवउ पवणञ्जय पाणहुँ णयहों गउ' ॥१०॥

अञ्जनाके हाथसे बालक छूटकर गिर पड़ा मानो आकाशरूपी लक्ष्मीका गर्भ ही गिर गया हो। हनुमान तुरन्त धरतीपर गिरा मानो शिलातलपर बिजलियोंका पुञ्ज गिरा हो। परन्तु विद्याधरोंने उसे उसी तरह उठा लिया जिस तरह जन्मके समय जिनको देवगण उठा लेते हैं। किसीने आकर वह शिशु अञ्जनाको सौंप दिया। वह इतनी प्रसन्न थी मानो खोई हुई निधि ही लौटकर उसे मिल गई हो। अपने नगरमें ले आकर प्रतिसूर्यने उसका जन्मोत्सव मनाया। वह बालक जगमें बहुत सुन्दर था, उसने शैलोंकी चट्टानको गिरकर चूर-चूर कर दिया था। और हनुमत् द्वीपमें वह बढ़-पुसकर बड़ा हुआ था अतः उसका नाम हनुमान रख दिया गया ॥१-९॥

[१२] उधर पवनञ्जय, खर और दूषणको मुक्तकर वरुण और रावणकी संधि कराके अपने नगर वापस आ गया। परन्तु उसे अपनी पत्नीका भवन सूना दिखाई दिया। उसने किसी स्त्रीसे पूछा—"प्राणप्रिय अञ्जना सुन्दरी कहाँ है ?" उस स्त्रीने उत्तर दिया "केतुमतीने परपुरुषका गर्भ समझकर, नवीन गर्भसे सुकुमार, उसे जगलमें छुड़वा दिया।" यह सुनकर पवनञ्जय अपने समान वयके मित्रोंके साथ वहाँ गया जहाँ सासने अञ्जनाको छुड़वाया था। परन्तु जब वहाँ पर भी उसकी अभिलषित पत्नी दिखाई नहीं दी तो वह इस वियोगको सहन नहीं कर सका। वह भी कहीं चल दिया। अत्यन्त व्यथित, दुःखसे भरे मुँह नीचा किये अपने मित्र प्रहसित तथा स्वजनोंसे माँके लिए इतना वह कह गया कि केतुमतीसे कह देना कि "माँ तुम्हारा मनोरथ पूरा हो गया तुम्हारा पवनरूपी पद विरहकी आगमें जलकर राख हो गया है" ॥१-१०॥

[१६]

सुणहु सुणहु परिपत्थिव सयल वि सज्जणा ।
गय दसरह जिण-जिणहरहों दम्मण-दुम्मणा ॥१॥

पवणञ्जओ वि परिचत्त-सउ । कालगु पइसरइ विसाय-रउ ॥२॥
पुच्छइ 'जहिँ सरवर दिट्ठ धण । एत्थु पक्क-दल कोमल चरण ॥३॥
जहिँ रायहंस हंसाहिवइ । कहिँ कहि मि दिट्ठ जइ हंस-गइ ॥४॥
जहिँ दीहर-णयर मयाहिवइ । कहिँ कहि मि मिगणयणि दिट्ठ जइ ॥५॥
जहिँ कुम्भि कुम्भ-सारिच्छ-थण । केत्थहेँ वि दिट्ठ सइ सुरय-मण ॥६॥
जहिँ जहिँ असोय पल्लविय-पाणि । कहिँ गय परहुएँ परहुय-वाणि ॥७॥
जहिँ रम्म रम्म चन्दाणणिय । मिग कहि मि दिट्ठ मिग-लोयणिय ॥८॥
जहिँ सिहि कलाव-सच्छिह-चिहुर । ण सिहाविय कहि मि दिट्ठ चिहुर' ॥९॥

घत्ता

एम भमन्तें विरहें वणें सम्मोह-महागुणु दिट्ठु जिह ।
सासय-पुर-परमेसरेंण णिव्वाणें पवणु जिणेण जिह ॥१०॥

[१७]

तं णिएवि वड-पायवु अण्णु वि सरवरु ।
कामग्गेण आमेल्लु समासिउ गयवरु ॥१॥

'जं सयल-काल कयारियउ । अइ-कुसल वर-पहर णिवारियउ ॥२॥
आकास-तम्में जं बालियउ । जं सामुद्-विवरहिँ णिग्गलियउ ॥३॥
तं भयउ पमेल्लहिँ कुम्भि मइ' । तहिँ पवणञ्जउ लइउ जइ ॥४॥
जइ एउ वउ अम्हहँ तणिय । तो मइ णिच्छित्ति गइ पुच्छिय ॥५॥
जइ पइँ पुणु ण्ड ण हूय दिहि । तो एम्बु मज्झु सण्णास-विहि ॥६॥
थिउ मउणु लएवि णराहिवइ । झायन्तु णिरिक्खि जिह परम गइ ॥७॥
सप्पन्तु गइन्दु वि संचरइ । सामिय-सम्माणु ण वीसरइ ॥८॥

[१३] सभी स्वजन दुःखसे रोते-कलपते और भारी हृदयसे अपने-अपने घर लौट आये। शत्रुओंका संहार करनेवाला, विषाद मग्न पवनञ्जय भी वनमें चला गया। वह पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओंसे पूछने लगा—"अरे सरोवर! तुमने, रक्तकमल की तरह चरणोंवाली मेरी धन्या देखी। हँसनीके स्वामी हे हंसराज, तुमने यदि उस हंसगामिनीको देखा हो तो बताओ! हे विशाल-नयन मृगराज, तुमने उस नितम्बिनीको देखा हो तो बताओ? हे हाथी, यदि तुमने गज-कुम्भस्तनी शुद्ध मनवाली उसे देखा हो तो बताओ, अरे अशोक, किसलय जैसे हाथोंवाली वह कहाँ है? अरे चन्द्र! वह चन्द्रमुखी कहाँ है? अरे मृग, क्या तुमने उस मृग नयनीको देखा है, अरे मयूर तुम्हारे कलापकी तरह बालोंवाली उस विरह-विधुराको तुमने देखा है?" इस प्रकार बिलखते-घूमते हुए उसे वटका पेड़ उसी तरह दिखाई दिया जिस तरह दीक्षा लेते समय ऋषभप्रभ जिनको दिखाई दिया था॥ १-१०॥

[१४] तब उसने अपने कालमेघ नामके श्रेष्ठ हाथीसे क्षमा माँगते हुए कहा—"मैंने अंकुशके तीखे प्रहारोंसे तुम्हारे कानों को बेधा है, आलान स्तम्भ (खूँटे) से तुम्हें बाँधा। साँकल और बेड़ियोंसे तुम्हें जकड़ा। गजराज तुम यह सब क्षमा कर दो।" पवनञ्जयने यहीं प्रायश्चित्त करते हुए यह संकल्प किया "यदि मेरी पत्नी मुझे मिल गई तो मैं इस निवृत्ति (माग) को नहीं अपनाऊँगा, कदाचित् दैवयोगसे यह सम्भव नहीं हो सका तो मैं संन्यास ग्रहण कर लूँगा।" उसने मौन ले लिया और परममुनि की तरह सिद्धिके लिए ध्यानमग्न हो गया। वह गजेन्द्र भी स्वच्छन्द विहार करने लगा। परन्तु स्वामीके सम्मानको वह नहीं भूला। वह (सदैव) उसकी रक्षा करता और (एकाग्र) उसका

पडिरक्खइ पासु ण मुअइ थिउ । मय-मत्त-करि-सुहिय-कम्मु थिउ ॥९॥

घत्ता

ताम हणुवन्तें पइसिएँ ण मरिसिउ वणणिहिँ पुण्णालाणहँ ।
'पुत्त ण जाणहुँ कहिँ मि गउ मज्झउ णिग्गेएँ कम्मबसहँ ॥१०॥

[१५]

तं णिसुणेंवि सम्मच्छिय-पसरिय-वेयणा ।
पवण-जणणि मुच्छाविय थिय अच्चेयणा ॥१॥

पच्छाविय हरियन्दण-रसेंण । अप्पौविय कह वि पुण्ण-वसेंण ॥२॥
'हा पुत्त पुत्त रयणियरि मुहु । हा पुत्त पुत्त कहिँ गयउ तुहुँ ॥३॥
हा पुत्त माय मइ कमेंहिँ पडु । हा पुत्त पुत्त रहरयहिँ चडु ॥४॥
हा पुत्त पुत्त जयवर्णेहिँ भमु । हा पुत्त पुत्त मेरुयएँहिँ रमु ॥५॥
हा पुत्त पुत्त अम्बासु करँ । हा पुत्त महामइ वप्पु करँ ॥६॥
हा बहुएँ बहुएँ मइँ मच्छियएँ । तुहुँ चरिउ अपरिक्खियएँ ॥७॥
पच्छाएँ धीरिय 'सहसि मुहु । णिव्वाणेँ रायहि कायँ तुहुँ ॥८॥
हउँ अम्बे गवेसमि तुव तणउ । हुणु मेइणि-मण्डलु केत्तडउ' ॥९॥

घत्ता

एम भणेवि वराविवेंण उप्पाइ करेंवि सासवइहुँ ।
उभय-सेढि-विसिथासियहुँ पट्ठविय लेह विज्जाहरहुँ ॥१०॥

[१६]

पवणु जोइ सवेमिउ वासु पसासहो ।
बल-साल-ठइलेव-थाल-संवासहो ॥१॥

भवरोप्परु पिहि मि पर-भूसणहुँ । पायालंकरु परिमूसणहुँ ॥२॥
भवरोप्परु करइव-परियरहोँ । सुमायरहोँ णिव्विकम्मायियरहोँ ॥३॥
भवरोप्परु किम्पुरुस-रम्माहुँ । मल-वीणहुँ पमय-पहरम्महुँ ॥४॥
भवरोप्परु महिन्द-वराहियहोँ । तिक्खिय-महामहोँ परिमणहोँ ॥५॥
भवरोप्परु धवल-विमल-पुण्णहोँ । पडिसूरहोँ अन्जण माउलहोँ ॥६॥
पवणु पवणें णीड-भय । हणुवन्तहो भावरि सुप्प गय ॥ ॥
महिमिविय णीवस-चम्मलेंण । पड धाइय वर-कामिणि उज्जल ॥८॥
भामासय सुन्दरि पउम-सिय । ण सिय तुहिणाहय कमल-सिय ॥९॥

पास नहीं छोड़ता, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार पूर्वजन्म के किये गये शुभ कर्म जीवका साथ नहीं छोड़ते। इधर, घर आकर, प्रहसितने रोते-गाते विषादमिश्रित माँसे कहा—"अञ्जनाके वियोगमें पवनञ्जय न जाने कहाँ चला गया" ॥ १-१० ॥

[१५] यह सुनते ही जैसे केतुमतीके सारे शरीरमें वेदना फैल गई। वह मूर्छित होकर गिर पड़ी। हरिचन्दनका रस छिड़कने पर, वह किसी तरह पुण्यवश होशमें आई और विलाप करती हुई बोली—"हा पुत्र अपना मुँह दिखाओ हे पुत्र! तुम कहाँ चले गये! मेरे पैरोंके निकट आकर पड़ो हे पुत्र गण्डस्थलपर बैठो। गलेसे लगो बारबार लगाओ, हे पुत्र मुझमें चरणका पकड़ो। हे यह, मैंने भूलसे परीक्षा लिये बिना तुझे वनमें छोड़ दिया।" तब राजा प्रह्लादने धीरज बँधाते हुए कहा—"मुँह पोंछ डालो तुम व्यर्थ क्यों रोती हो मैं तुम्हारे बेटेकी खोज कराता हूँ। यह धरती-मण्डल है कितना-सा।" राजाने दूतोंको बुलाकर दोनों श्रेणियों (विजयार्ध) के विद्याधरोंके पास परिपत्र भेजा ॥ १-१० ॥

[१६] एक योद्धा दमन इन्द्र और त्रिशाकपदका सतान वाले रावणके पास भी भेजा और एक दूत, पाताल-लङ्काके आभूषण खर और दूषणके पास भी। एक सुग्रीवके पास और एक वानरोंके प्रधान किष्कपुरके राजा नल और माल्यके पास। एक, त्रिकूटशिखरके राजा महेन्द्रके पास और एक प्रचलित निर्मल कुल वाले, अञ्जनाके मामा प्रतिसूर्यके पास। ज्यों ही हनुमानकी माँ अञ्जनाने यह सुना और कहीं पता नहीं चला वह मूर्छित होकर गिर पड़ी। ठंडा जल सींचने और स्त्रियोंके पङ्खा झलनेपर वह मुश्किलसे किसी तरह आश्वस्त होकर उठी। यह ऐसी लग रही थी मानो हिमसे आहत कमलिनी हो। मामाने उसे धीरज बँधाते हुए

घत्ता

ताम विभीसिएँ भासिउँ 'मा भाएँ' विसूरउ करि मणहों ।
सिद्धहों सासय-सिद्धि जिह तिह पइँ इच्छमि समीरणहों ॥९॥

[१०]

पुणु पुणो वि धीरेप्पिणु जणयसुन्दरि ।
णिय-विमाणें भासइ पराजिय-केसरि ॥१॥
गउ तेत्थहें केत्तहें केक्कइ । जम्मु वि पञ्चाणण-पराजिय ॥२॥
मसर णिम्वरहँ असेसहँ । मेल्लेप्पिणु गयहँ गवेसहँ ॥३॥
त मूसरवाइ मुक्कहँ । वण-अच्छहँ व जायहों मुक्कहँ ॥४॥
पवणञ्जउ जहिं आसेंवि गउ । सो कालमेहु वणें विरहु गउ ॥५॥
रयणाउरु राणउ उम्मणु । तम्बणिय-कण्णु तम्बिर-णयणु ॥६॥
त पराणइउ करें वि अक्कु । गउ तहिं जें पईवउ जणुक-जणु ॥७॥
पमियारिउ दोहुण वसिकियउ । णव-वक्किणि-समें भमइ ण थियउ ॥८॥
णिहुरेहिं गवेसन्तेहिं वणें । कलियउ पेक्खहों कण्णा-रयणें ॥९॥
ओयारिउ विज्जाहर-सएहिं । जिह जिणवरु सुरेंहिं समागएँहिं ॥१०॥

घत्ता

मरणु कम्पि परिट्ठियउ जउ पवइ ण पावइ माम-पउ ।
ताम भणिउ मणें सम्बु सि 'कन्दमउ किण्ण विम्मविउ गउ' ॥११॥

[११]

पुणु सिक्खेउ मयणीयरेंहिं किरिउ स हत्थेंण ।
'मज्जमाएँ सुहुमएँ मरमि परमत्थेंण ॥१॥
जावण्णिरहे णिसुणमि वत्त जइ । ता जोयमि कइ पवहिम गइ' ॥२॥
त णिसुणेंवि दुघुरघ-रायएँण । वज्जरिय वत्त परिरागएँण ॥३॥
तामरस णराम सरिसाणणउ । विण्णि मि समस्तमासज्जरउ ॥४॥
जिह उभय-पुरहुँ परिपल्लियउ । जिह वणें ससियउ पवालियउ ॥५॥

कहा। "हे माँ, मनमें व्यर्थ खेद मत करो, सिद्धोंकी सिद्धिकी तरह निश्चय मैं तुम्हें पवनञ्जय दिखाऊँगा" ॥१-१ ॥

[१७] इस तरह बार-बार अञ्जना सुन्दरीको धीरज बँधाकर वह नराधिपकेशरी उसे अपने विमानमें बैठाकर ले गया। वह उस स्थानपर पहुँचा जहाँ केतुमती, प्रह्लादराज और अन्य सभी भूधर उसकी खोज-खबरमें लगे थे। अत्यन्त व्याकुल होकर वे लोग रास्ता भूलकर भूतरवा नामकी अटवीमें जा पहुँचे। वहाँ उन्हें कालमेघ हाथी दिखाई दिया। यह वही हाथी था जिसपर बैठकर पवनञ्जय गया था। उसके कान फैले और आँखें लाल हो रही थीं। मुँह और सूँड़ उठाकर वह इन लोगोंपर दौड़ा। तब बलपूर्वक उसे विमुख किया गया। और सेना उसके पीछे दौड़ी। हथिनी लगाकर उसे वशमें किया। उसे पाकर वह वैसे ही बैठ गया जैसे नई कमलिनियोंके समूहसे भ्रमर बैठ जाता है। खोज करते हुए अनुचरोंने वेल-पत्रके लता-भवनमें कुमार पवनञ्जयको देख लिया सैकड़ों विद्याधरोंने उसका वैसे ही अभिनन्दन किया जैसे अभिषेकके समय देव जिनका करते हैं। मौन लेकर वह ध्यानमें रत था न बोलता न चालता, सभीको यह भ्रान्ति हो रही थी कि यह काष्ठमय मनुष्य किसने बनाया ॥१-१ ॥

[१८] अपने हाथसे धरतीतलपर उसने यह श्लोक लिख रक्खा था। "अञ्जनाके मरनेपर मैं भी यथार्थमें मर रहा हूँ जब मैं उसके जीवित होनेकी बात सुनूँगा तभी चालूँगा, नहीं तो मेरी यही गति होगी।" यह बात सुनकर हनुरुहद्वीपके राजा प्रतिसूर्यने उसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया "कि किस प्रकार गुरुभारसे गज कमलके समान सुखवाली दोनों—वसन्तमाला और अञ्जना सुन्दरी घरसे निर्वासित हुईं। किस प्रकार उन्हें अकेले वनमें घूमना

जिह हरिवरेण गयसमु किउ । वड्डुमयण जिह गयसमिउ ॥१॥
जिह चन्दु पुणु भूसणु हुअवँ । जिह वर्दे मित्तणु पवित सिलर्दे ॥७॥
सिरिसाहुलु णाउँ हणुवन्तु जिह । मित्तणु मणोमु वि कहिउ तिह ॥८॥
त वयणु सुणेवि सगुहियउ । पडिसूरेँ णिय-णयरहोँ णियउ ॥९॥

घत्ता

मिलिउ पहञ्जणु अञ्जणहेँ वेण्णि मि णिय-णयर पइसन्ताइँ ।
हणुरुह-दीवें परिट्ठियइँ पिय रज्जु स इ सु णन्दन्ताइँ ॥१०॥

•

[२० वीसमो सन्धि]

एत्थन्तरे पावसे मह-पूरामणि जाव सुहासण-मग्गें चडइ ।
तहिँ अवसरेँ रावणु सुर-संतावणु रणउहेँ वरुणहेँ अब्भिडइ ॥

[१]

पूणागमणें कोइ संभासइ । सइँ सरहसु पसाणु सण्णज्झइ ॥१॥
परिवेढिउ रयणियर-सहासें हिँ । पेसिय सामन्त-वरउवासें हिँ ॥२॥
वर पुरुस सुर्णाप-परिसन्तुहुँ । मड-बीरहुँ मारिस्म-महिन्तहुँ ॥३॥
पहरणहीँ परिट्ठियपर-पवणहुँ । कामें वि समर-णमण-रहसवणहुँ ॥४॥
मारइ सयल-जयासारहेँ हिँ । पुरुसइ पवणञ्जय-पडिसूरें हिँ ॥५॥
'वप्प वप्प परिपालहि मेइणि । कामहि राय-कण्णि जिह कामिणि ॥६॥
अम्हें हिँ रावण-णाल करेवी । पर-बल-जय-सिरि-वहुअ हरेवी ॥७॥
तें णिसुणें वि मरि-गिरि-सोदामणि । पवणु भवेप्पिणु पभणइ पावणि ॥८॥

घत्ता

'किं तुम्हेंं विरुअण्णहों अप्पुणु तुम्हहँ मइँ हणुवन्तें दुक्करु न ।
पावण्णि वसुन्धर चन्द दिवायर किं किरणेहिँ सन्तप्पुँ ण' ॥९॥

पड़ा। किस प्रकार सिंहने उपसर्ग किया। किस प्रकार अष्टापदने उसे शान्त किया, किस प्रकार उसने पृथ्वीका आभूषण-पुत्र पाया। किस प्रकार गिरकर उसने चट्टान चूर-चूर कर दी, श्री शैलगिरिसे कैसे वह उसे अपने नगर ले गया और उसका नाम हनुमान पड़ा। यह सुनकर वह उठ बैठा। राजा प्रतिसूर्य उसे अपने नगर ले गया। पवनञ्जयका अञ्जनासे मिलाप हुआ, दोनों तब अपनी अपनी कहानी कहते हुए हनुरुहद्वीपमें रहकर राज्य-भोग करने लगे ॥१-१०॥

•

बीसवीं सन्धि

भटश्रेष्ठ हनुमान बढ़कर जैसे ही युवावस्थामें पहुँचा वैसे ही सुरसन्तापक रावणने वरुणपर पुनः चढ़ाई कर दी।

[१] दूतके वापस आते ही वह क्रुद्ध होकर स्वयं तैयार होने लगा। हजारों राक्षसोंसे घिरे हुए उसने चारों ओर दूत भेज दिये। मुख्यरूपसे उसने खर दूषण, सुग्रीव नरेश नल नील, माहेन्द्र, महेन्द्र, महाराज, पवनञ्जय और प्रतिसूर्यके पास दूत भेजे। रावण तथा वरुणका युद्ध जानकर और स्वजनोंकी विजयसे पवनञ्जय और प्रतिसूर्यने हनुमानसे कहा—"वत्स वत्स तुम इस धरतीको पालो और राजलक्ष्मीको कामिनीकी तरह मानो। हमलोग रावणके आदेश को मानकर, शत्रुसेनाको जीतकर जयश्री वधूका अपहरण करेंगे।" यह सुनकर शत्रुरूपी पर्वतके लिए बिजलीकी तरह हनुमान उनके चरणोंपर गिरकर बोला—"मुझ हनुमानके रहते हुए, आपलोगों का कुपित होकर लड़नेसे क्या ? क्या चन्द्र और सूर्य किरण-जाल के होते हुए स्वयं धरतीपर आते हैं ?" ॥१-६॥

[२]

भणइ समीरणु 'जयसिरि-कारउ । अज्जु वि पुत्त ण पेक्खिउ चारउ ॥१॥
अज्जु वि णाउ केम पइँ बुज्झहि । अज्जु वि सूर-भेउ णउ बुज्झहि' ॥२॥
तं णिसुणेवि कुविउ पवणंजउ । 'बालु कुमिम किं विसहरि ण भंजइ ॥३॥
बालु दीवु किं करि ण विहावइ । किं बालग्गि ण डहइ महावइ ॥४॥
बालवणु किं वणेँ ण सुणिज्जइ । बालु मइंदु किं ण सुणिज्जइ ॥५॥
बालु सुपक्खु काइँ ण डहइ । बाल-रविहिँ तमोहु किं थक्कइ ॥६॥
एम भणेवि पहंजणि-राणउ । लङ्कापरिहिँ दिण्णु पयाणउ ॥७॥
पडि-जणवय-जय-माइ कमलहिँ । भय-कइ-वमिर-भिण्ण णिग्घोसहिँ ॥८॥

घत्ता

हणुवन्तु स-साहणु परिओसिय-मणु पत्तु विहि कओसरेँण ।
कुल-दिवसेँ वलन्तउ किरण-फुरन्तउ तरुण-तरणि णं ससहरेँण ॥९॥

[३]

दूरहोँ दिट्ठ तइलोक-भयावणु । सिव णावेँ वि ओकारिउ रावणु ॥१॥
तेण वि सारहसेण समच्छिउ । पुच्छिउ सामिसालि आलिङ्गिउ ॥२॥
पुण्णेँहिँ दक्खोलिहिँ बहुसारिउ । बारवार पुणु सागुकारिउ ॥३॥
'धण्णउ पवणु जासु पइँ णन्दणु । भरहु जेम दुरसहहोँ णन्दणु' ॥४॥
एम कुसल-णिय मणुराआवेहिँ । अइसय कयत्थाम सम्भावेहिँ ॥५॥
ते हणुवन्त-कुमारु पगुण्णेँ वि । दसमुहोँ उप्परि गउ भाणजाँ वि ॥६॥
चम्पयर घरेँ सुह-पयाणउ । थिउ बलु सरवण्ण-रउ-समाणउ ॥७॥
कहि मि सगु-भर-तुसिय रहा । कहि मि हणुय-भड-पील पइहा ॥८॥

[२] तब पवनञ्जयने कहा—"हे पुत्र, आजतक न तो तुमने वरुणपुरीका धाम देखा और न युद्ध। आज भी तुम बच्चे हो, जाओगे कैसे? अभी तुम व्यूह रचना भी नहीं जानते।" यह सुनकर हनुमानने क्रोधमें आकर कहा—"क्या बाल हाथी वृक्षको नहीं उखाड़ सकता, क्या बाल सिंह हाथीको नहीं पछाड़ सकता क्या छोटी-सी चिनगारी महाटवीको भस्म नहीं कर देती, क्या बालचन्द्रका लोग सम्मान नहीं करते? क्या बालक योद्धाकी स्तुति नहीं की जाती क्या साँपका बच्चा किसीको नहीं डँसता? बालसूर्यके आगे क्या अन्धेरा ठहर सकता है।" यह कहकर हनुमानने लङ्का नगरीके लिए प्रस्थान कर दिया। तब चारण और विप्रोंके जयघोषके साथ, उसे दही, अक्षत जल और मङ्गल कलशोंसे विदाई दी गई ॥१-८॥

लङ्कानरेश रावणने बड़े संतोषसे हनुमानको सेना सहित आते देखा। उसे लगा मानो वह, अक्षत और किरणोंसे चमकता हुआ तरुण सूर्य ही, पूजाके चाँदके साथ हो ॥९॥

[३] उसने दूरसे ही त्रिभुवनभयङ्कर रावणको माथा झुकाकर बधाई दी। उसने भी हर्षपूर्वक आते हुए हनुमानका सर्वाङ्ग आलिङ्गन किया उसको चूमकर अपनी गोदमें बैठा लिया। बार-बार उसकी सराहना करते हुए वह बोला—"वह पवनञ्जय धन्य है जिसका तुम जैसा पुत्र है वैसे ही जैसे ऋषभका भरत था।" इस प्रकार कुशल प्रिय और मधुर संभाषण तथा कंगन और सोनेकी करधनीसे कुमार हनुमानका आदर-सत्कारकर रावण ने गरजकर वरुणपर चढ़ाई कर दी। चलकर उसने वेलंधर पर्वत पर अपना डेरा डाला। शरदके मेघपंक्तिके समान उसकी सेना इधर-उधर ठहर गई कहीं शम्बूक खर और दूषण राजा ठहरे

कहि मि कुसुम-कुसुमीयाउह । णं थिय पहेँ हिँ मत्त महागय ॥९॥

घत्ता

रेहइ गिरिसिहर-वहु वड्ढिय-कक्कसु पहेँ हिँ पवेँहि आवासियउ ।
णं दहमुह-केरउ तिहुयण-जणेरउ पुण्ण-पुञ्जु पुञ्जेँहिँ थियउ ॥१०॥

[४]

सो पुण्णन्तरेँ एँवँ णिवद्धमहोँ । खर-पुरिसेँ हिँ आणाविउ वरुणहोँ ॥१॥
'देव देव किं अच्छहि अचिन्तु । वेलन्धरेँ आवासिउ पर-बलु ॥२॥
जासुँ तणउ वणु णिसुणेप्पिणु । वरुणु कराविउ ओसारेप्पिणु ॥३॥
मणिरयणेँहिँ कप्प-चाउ जहोँ किज्जइ । 'केर दससयणयणी किज्जइ ॥४॥
जेण कमउ समरङ्गणेँ वड्ढिउ । तिजगविहूसणु वसणु चडाविउ ॥५॥
जें अहुव्वउ गिरि उद्धरियउ । माहेसर-वइ धरणइ धरियउ ॥६॥
जेण णिरत्थीकिउ जम-कुमार । ससहरु सूर कुबेर पुरन्दर ॥७॥
तेण समाणु कवणु किर आहउ । केर करन्तहुँ कवणु पराहउ ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेँ वि दुद्धरु वरुणु भयङ्करु पजलिउ कोव-हुआसणेँण ।
'अप्पणुँ खर-दूसण जिह वेण्णि वि जण तहउ करेँ मि रावणेँण' ॥९॥

[५]

एम भणेवि सुवणेँ जस-लुद्धउ । सरहसु वरुणु राउ सण्णद्धउ ॥१॥
करि-मयरासणु विप्फुरियाउहु । दारुण णागपास पहरण-करु ॥२॥
ताडिय समर-भेरि उब्भिय धय । सारि-सज्ज किय मत्त महागय ॥३॥
हय पक्खरिय पयोहिय सन्दण । णिग्गय अमरहँ केरा णन्दण ॥४॥
पुण्डरीय-राजीव पसूयर । वेलामल कल्लोल वसुन्धर ॥५॥

और कहीं हनुमान, नल और नील प्रधान ठहरे। कहीं कुमुद, सुग्रीव, अङ्ग और अङ्गद ठहरे। वहाँ ठहरे हुए वे ऐसे लगते थे मानो मदमाते हाथी ही झुण्डके झुण्ड स्थित हों। कलकल करती और नाना चक्रोंमें विभक्त रावणकी सेना ऐसी शोभ रही थी मानो उसका विजयजनक पुण्यपुञ्ज ही अनेक समूहोंमें बिखर गया हो ॥१-२॥

[४] इसी बीच चरोंने आकर रणमें कठोर अपने स्वामी वरुणसे कहा— हे देव, आप निश्चल क्यों बैठे हैं, शत्रु-सेना वेलन्धर पर्वतपर पड़ाव डाल चुकी है।' पूर्वोक्त वचन सुनकर मन्त्री नरराधिपको हटाकर और एकान्तमें ले आकर कानमें फुसफुसाकर कहा—"रावणकी अधीनता मान लीजिये, जिसने समराङ्गणमें यमराजको कुचला। त्रिजग भूषण हाथीको वशमें किया। जिसने अष्टापद (कैलाश) पर्वतको उठाया। माहेश्वरपति सहस्रकरको पछाड़ा। जिसने नलकूबर तथा चन्द्र सूर्य कुबेर और इन्द्रका भी निरस्त कर दिया, उसके साथ युद्ध कैसा ? और फिर उसकी अधीनता माननेमें अपमानकी भी कोई बात नहीं।" यह सुनकर दुर्धर धनुर्धारी वरुण क्रोधाग्निमें जल उठा। उसने कहा— 'जब मैंने खर और दूषण दोनोंको सताया था तब रावणने क्या किया था" ॥१-५॥

[५] यह कहकर दुनियामें अपने यशका कामी राजा वरुण आवेगपूर्वक तैयार होने लगा। हाथीके ऊपर मकरासनपर आरूढ़ हो, उसने हाथमें दारुण नागपाश अस्त्र ले लिया उसके आठ फलक रखे थे। युद्धकी भेरी बज उठी, पताका फहराने लगी मत्त महागजोंको अम्बारीसे सजा दिया गया। योद्धोंको कवच पहना दिये गये। वरुणके सभी पुत्र धनुर्धर पुण्डरीक, राजीव, मेघानक कमलाक्ष,

वसुन्धर, तोयावली तरङ्ग, वगळामुख, वेलन्धर सुवेल मेलामुख, सन्ध्या, गजगर्जित सन्ध्यावलि ज्वालामुख, जलौघ, ज्वालावलि और सकलकान्त निकलकर दौड़ पड़े। वे हर्षके साथ युद्ध भूमिमें जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर वे अपना मारो व्यूह बनाकर बैठ गये। यहाँ शत्रुओंने भी इतनेमें अपना चाप-व्यूह बना लिया। एक दूसरेसे चिढ़े, मत्सरसे भरी हुई, दूरसे ही कोलाहल मचाती, रामाक्षित रावण और वरुणकी दोनों सेनाएँ युद्धमें टकरा गईं॥१-१०॥

[६] अंगरक्षकों सहित तलवार उठाये, रावण और वरुणकी सेनाएँ एक दूसरे पर टूट पड़ीं। गजघटाके शरीर पसीनेसे लथपथ थे। उनके कानोंके चामरोंसे मक्खन हवा-सी आ रही थी। जब कभी इन्द्रनील मणियोंको चमासे हुई रातके कारण प्रसार रुक जाता तो सूर्यकान्त-मणियोंके दिनमणि (सूर्य) से पुनः अवसर (जानेका) मिल पाता, कोई योद्धा हाथियोंके कुम्भस्थल विदीर्ण कर रहा था, कोई तलवारसे मोतियोंके पुञ्ज बहा रहा था एक दूसरे पर तब मारें छोड़ी जा रही थीं। दसों दिशाओंमें रक्तकी धारा बह निकली। गजोंके मदजलोंकी सरितामें सैनिक भाव धान करने लगा। और धाड़ोंके कबन्धोंका नचाने लगा। इतनेमें वरुणके पुत्रोंने रावण को ऐसे घेर लिया मानो मेघोंने चन्द्रमाको घेर लिया हो। या महागज समूह सिंहको अथवा दुष्कर्मसमूहने जीवको घेर लिया हो। फिर भी भुवनभयंकर रावण अनन्त शत्रु-सेनामें अकेला ही ही घूम रहा था। वह ऐसा मालूम हो रहा था मानो मगर और ग्राह सहित पहाड़ ही नय जाते हुए समुद्र जलमें तैर रहे हों॥१-९॥

[७] तभी रावणके अनुचरोंने वरुणको घेर लिया। विधि शुक सारण मय, मारीच, हस्त प्रहस्त, राजा विभीषण महाकाम

माइन्द सुग्गीव सुसेणेंहिं । तार तरङ्ग रम्भ-विसमेणेंहिं ॥३॥
कुम्भयण्ण णल दूसण-वीरेंहिं । जम्बव-गवय-गवक्खेंहिं ओसरिएँहिं ॥४॥
वेढिउ णल-धम्मु परिसेसेंवि । तेण वि सरवर-पोरवि पेसेंवि ॥५॥
वेढिय णयहर णं जलयारेंहिं । ताम दसाणणु पवण-कुमारेंहिं ॥६॥
आयमेंवि सव्वहिं समकन्दिउ । रहु सण्णाहु महाबलु वन्दिउ ॥७॥
तं णिएवि णिय-कुल-कैयारें । साहसेण हणुवन्त-कुमारें ॥८॥

घत्ता

रणउहें पइसन्तें वइरि वहन्तें रावणु उप्पराणिवउ ।
पणियामिय-काए ण कुमारें रवि मेहेंहिं मेहाविउ ॥९॥

[८]

सयल वि सत्तु सत्तु-परिकूलें । सविहें वि विमल-सकूलें ॥१॥
केइ ण केइ णाम मय-णन्दणु । ताम पधाइउ बलु स-सन्दणु ॥२॥
'णरें धरु तुरु पाव वसु भायर । कहिं सपरहि सन्य अइवा णरें' ॥३॥
तं णिसुणेप्पिणु वलिउ भयंकरु । सीहु व सीहहों वेहाविउ ॥४॥
वित्थि कि किर मिडन्ति दसु-णारण । आणापास कवय पहरण ॥५॥
ताम दसाणणु रहवरु वाहेंवि । अन्तरें थिउ रण-भूमि पसाहेंवि ॥६॥
मोरें बहु बहु रयास णरें भामण । मइँ कुविएण ण पैय ण दाणव ॥७॥
जं जिउ जम णिवाइ-धणयालु । सहस किरण णलकुव्वर-राणु ॥८॥

घत्ता

अवरु मि पुरिसहुँ अवरु जिणहुँ तिण्णहँ आसि जाहँ जाहँ ।
परिहव-दुमइत्तहँ जणहँ णिच्चितहँ तुम्हु वि देमि ताहँ ताहँ ॥९॥

[९]

तं णिसुणेंवि अतुलिय-माहप्पें । विप्फुरिउ वणकम्तहों वप्पें ॥१॥
कहा इन दैवाइउ अमरेंहिं । सुर-कुबेर पुरन्दर अमरेंहिं ॥२॥

इन्द्रजीत, मेघवाहन, अंग अंगद, सुग्रीव, सुसेन तार, तारङ्ग, रम्भ, वृषभसेन कुम्भकर्ण, वीर खार, दूषण, जाम्बवान, नल, नील और सावीरने शस्त्र धर्म ताकमें रखकर, उसे घेर लिया। वरुणने भी वाणोंकी बौछार की। इधर वरुण कुमारोंके साथ रावण ऐसे क्रीड़ा कर रहा था मानो बैल खड्ग-धाराओंके साथ खेल रहा हो। इन सबने शान्त होकर उसे घेरकर उसके रथ, कवच तथा महाध्वज के टुकड़े टुकड़े कर दिये। यह देखकर अपने कुलका नेता हनुमान रणमुखमें आ घुसा और शत्रुको खदेड़कर उसने घिरे हुए रावणको वैसे ही मुक्त किया जैसे अमूर्त पवन मेघोंसे रविको मुक्त करता है ॥१-८॥

[८] शत्रुविरोधी हनुमान, अपनी मायामयी पूँछसे समस्त शत्रुओंको घेरकर पकड़ने वाला ही था वरुण वहाँ आ पहुँचा। आकर वह बोला "अरे खल क्षुद्र पापात्मा वानर रुक, कहाँ जाता है, पशु है या मनुष्य।" यह सुनकर कपिध्वज हनुमान भड़क उठा वैसे ही जैसे कुद्ध सिंह सिंहको देखकर भड़क उठता है। तब नागपाश और मायामयी पूँछके अस्त्रोंसे दोनों लड़ने लगा। इसनेमें रावण अपना रथ हाँककर रण-भूमिके बीचमें आकर खड़ा हो गया और वह बोला "अरे हत्यारा मानव ठहर, क्रोध आनपर मैंने देव या दानव किसीको नहीं छोड़ा। यम कुबेर सहस्रकिरण नलकूबर और इन्द्रके साथ जो किया यह सब तुम विदित है और भी मैंने दूसरे देवों और मनुष्योंको परामवके विचित्र-विचित्र फल दिये हैं वे तुम्हें भी दूँगा ॥१-६॥

[९] यह सुनकर असकाम्यके पिता अतुल माहात्म्यवाले वरुणने भर्त्सना करते हुए कहा "अरे लङ्काधिप दूसरे वीरोंने (इन्द्र कुबेर आदि देवोंने) तुम्हें अहङ्कारपर चढ़ा लिया है, मैं

वरुण हूँ, मैं तुम्हें वरुण फल ही चखाऊँगा, दावानलसे तुम्हारे वंशों मुखोंको शान्त कर दूँगा।" तब रावणने उसे खूब तिरस्कृत किया और कहा, "योद्धाओंके बीचमें बार-बार कितना गरज रहे हो सामने आ और अपनी शक्ति तौल। साधारण अस्त्रोंसे ही युद्ध कर। सम्मोहन, स्तम्भन और दहनमें समर्थ हथियारोंमें कोई भी काम नहीं आयेगा।" यह कह रावण वरुणसे ऐसे भिड़ गया मानो राहु सूर्यके सारथि अरुणसे भिड़ गया हो। तब पवनञ्जयके सार सर्वस्व हनुमानने समर्थ होकर वीरोंके लिए शिर-शूलकी तरह, अपनी लम्बी पूँछसे वरुण कुमारोंको इस प्रकार घेरकर बाँध लिया मानो कँपानेवाले पवन-समूहने त्रिभुवनके करोड़ों प्रदेशोंको घेर लिया हो ॥१-६॥

[१०] अपने पुत्रोंके इस तरह बाँधे जानेपर दीन और कातर वरुणके हाथमें अस्त्र ही नहीं आ रहा था। तब रावणने आकाशमें उछलकर उसे भी इन्द्रकी तरह पकड़ लिया। आहत जयतूर्योंकी कलकल ध्वनि होने लगी। समुद्रके शब्दकी तरह वह ध्वनि दूर-दूर तक फैल गई। कुम्भकर्ण इतनेमें अलङ्कार सहित वरुणके अन्तःपुर को पकड़कर ले आया। करधनी हार और मालाओंसे व्याकुल गलित कपूरकी धूलिसे सना भौंरोंकी झङ्कारसे मुखरित पति वियोगसे पीड़ित काजलके मैलसे मलिनमुख वह (अन्तःपुर) आँसुओंकी अविरल धारासे धरती सींच रहा था। उसे देखकर रावणने रोमाञ्चित गात्र हो कुम्भकर्णकी निन्दा की और कहा— 'कामिनी कमलवन शुक, लता-भवन मधुकर कोयल और भौंरे ये सब कामदेवके चिह्न हैं 'इनका पालन अपनी ही जगह होना चाहिए" ॥१-६॥

[११] यह सुनकर हार और नूपुरसहित अन्तःपुरको कुम्भकर्णने मुक्त कर दिया। वह भी अहङ्कारशून्य अपने भवनको

ऐसे चला गया मानो गर्वसे हथिनियोंका झुण्ड ही निकल आया हो। तब देवोंकी जयलक्ष्मीके निवासरूप रावणने वरुणको बुलाकर उसका सम्मान किया और कहा "तुम्हें मनमें खेद नहीं करना चाहिए, शरीरका नाश, ग्रहण और जय सभी वीरोंकी होती है, केवल पलायनसे लज्जित होना चाहिए, क्योंकि उससे मुँह, नाम और गोत्रको कलंक लगता है।" दसमुखके इस कथनपर वरुण उसके पैरोंपर गिरकर कहा "जिसने धनद यम और इन्द्रके छक्के छुड़ाये, सहस्रकर और नल कूबरको वशमें किया, उससे जो लड़ाई ठानता है, वह मूर्ख है, आजसे मैं तुम्हें अपना राजा मानता हूँ और मेरी एक चन्द्रमुखी, कुमुदनयनी, सत्यवती नामकी लड़की है। विद्याधर लोकके अधिपति आप उससे विवाह कर लें" ॥१-३॥

[१] तब पंडितलोचन रावणने कामलक्ष्मीके समान वरुणकी उस पुत्रीसे विवाह कर लिया। पुष्पक विमानमें बैठकर आनन्द पूर्ण जय-जय शब्दके बीच उसने प्रयाण किया। विविध विमान चल पड़े। रत्नोंके साथ नये खजाने अठारह हजार सुन्दर स्त्रियाँ, पाँच करोड़ पाँच लाख कुमार जो अक्षौहिणी कवच हजारों नरवरों की अक्षौहिणी महान पवित्र और उत्साहपूर्ण जय धावोंके बीच उसने सन्ताप-पूर्वक लंका नगरीमें प्रवेश किया। रावणने हनुमान का आदर-सत्कार किया। सुग्रीवने उसे अपनी पद्मरागा लड़की दी और खरने व्रत पालनेवाली अनंगकुसुम। नल और नीलने श्रीमाला नामकी लड़कियाँ दी। इस प्रकार अठारह हजार कुमारियोंसे ब्याहकर सबका आभार मानकर हनुमान अपने नगरको लौट गया। शम्बूक कुमार भी सूर्यहास खड्ग सिद्ध करने के लिए वनवासको चल दिया। सुग्रीव अंग और अंगद भी चल

घत्ता

सुग्गीवाइय मच्छ-बीछ वि गय वर-कुसुम वि कियत्थ-किय ।
विज्जाहर-कण्डऍ सिय जिण-कव्वें पुरउ स इ भु अन्त पिय ॥११॥

इय 'विज्जाहर कण्डं' । बीसहिँ आसासएहिँ मे सिट्ठं ।
एण्हि 'उज्झा कण्डं' । साहिज्जन्तं निसामेह ॥
धुवरायधवल इयह । अप्पमणि जत्ती सुभाणुपालेय (?) ।
नामेण सामिअम्मा । सयम्भु घरिणी महासत्ता ॥
तीए सिज्झाविणमिणं । वसहिँ आसासएहिँ पडिबद्धं ।
'सिरि विज्जाहर कण्डं' । कण्डं पिव कामएवस्स ॥

इइ पढमं विज्जाहरकण्डं समत्तं

गये। तथा कृतार्थ होकर स्वरूपस्थ थी। वे सब विद्याधराधिप स्वीकार्य करते हुए लीला-पूर्वक अपना-अपना राज्य मांगने लगे ॥१-१२॥

इस प्रकार बीस सन्धियोंसे सहित यह विद्याधर काण्ड मैंने रचा। यह विद्याधर काण्ड असाधारणरूपसे शासित है। भुवनराजकी इच्छास समझनेके पढ़नेके लिए मैंने इसकी रचना की है। स्वयम्भू की पत्नी अमृताम्बाने बीस आश्वासोंसे प्रतिबद्ध इसे लिखवाया। कामदेवके कुरङ्गके समान प्रिय यह विद्याधर काण्ड समाप्त हुआ।

ज्योतिष

२२	भारतीय ज्योतिष	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६)
२३	केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	४)
२४	करलक्खण [सामुद्रिकशास्त्र]	प्रो. प्रफुल्लकुमार मोदी	॥)

कहानियाँ

२५.	संघर्षके बाद	श्री विष्णु प्रभाकर	३)
२६	गहरे पानी पैठ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
२७	आकाशके तारे : धरतीके फूल	श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	२)
२८.	पहला कहानीकार	श्री रावी	२॥)
२९.	खेल-खिलौने	श्री राजेन्द्र यादव	२)
३०	अतीतके कम्पन	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)
३१	जिन खोजा तिन पाइयाँ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
३२	नये बादल	श्री मोहन राकेश	२॥)
३३	कुछ मोती कुछ सीप	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
३४	पापके पंख	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)

उपन्यास

३५.	मुक्तिदूत	श्री वीरेन्द्रकुमार एम. ए.	५)
३६	तीसरा नेत्र	श्री आनन्दप्रकाश जैन	२॥)
३७	रक्त-राग	श्री देवेशदास	३)

सूक्तियाँ

३८.	ज्ञानगंगा [सूक्तियाँ]	श्री नारायणप्रसाद जैन	६)
३९.	शरत्की सूक्तियाँ	श्री रामप्रकाश जैन	२)

संस्मरण, रेखाचित्र

४०	हमारे आराध्य	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
४१	संस्मरण	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
४२	रेखाचित्र	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	४)
४३	जैन जागरणके अग्रदूत	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५)